अठारह वर्ष बाद

(अठारहवीं शताब्दी के भारत का क्रान्तदर्शी राजनीतिक उपन्यास)

173

गिरिजा शंकर पाण्डेय

८१३.३
गिरि/अ

अठारह वर्ष बाद

(अठारहवीं शताब्दीके भारतका क्रान्तदर्शी राजनीतिक उपन्यास)

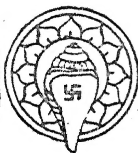
डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

— लेखक —

गिरिजाशङ्कर पाण्डेय शास्त्री

(एम० ए०, एल० एल० बी०)

प्रकाशक—



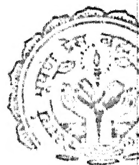
आनन्द पुस्तक भवन, वाराणसी

[मूल्य ४)

सम्वत् २०१५ वि०]

प्रकाशक—
सम्पूर्णानन्द एम० ए०
आनन्द पुस्तक भवन
पहड़िया, वाराणसी – २

प्रथम संस्करण
अक्टूबर १६५८
४)



कथावस्तुके सम्बन्धमें

ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सत्ताके विरुद्ध तथा अपनी स्वतंत्रताके उद्देश्यसे काशीमें जिन लोगोंने दूसरा संगठित प्रयास विद्रोह-रूपमें किया, उनमें अवधके पदच्युत नवाब वजीरअली तथा बनारस राज-वंशके एक सदस्य बाबू जगतसिंहके नाम अधिक प्रख्यात हैं। सामान्य पाठकोंके लिए उनका कुछ संक्षिप्त परिचय अपेक्षित है।

१२ वर्षोंतक अवधके विस्तृत राज्यपर भोग-विलासकर प्रसिद्ध नवाब आसफुद्दौला सन् १७९७ ई० में परलोक सिधारा और उसके स्थान-पर उसका बेटा वजीर अली खाँ लखनऊमें अवधके तख्तपर बैठा। सर जान शोर इस समय भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यका सर्वोच्च अधिकारी—गवर्नर जेनरल था। उसकी ओरसे एक प्रतिनिधि रेजिडेण्ट के रूपमें लखनऊमें रहा करता था। आसफुद्दौलाकी मृत्युके उपरान्त रेजीडेण्टने वजीरअलीको गद्दीपर बैठाया और कई महीनेतक कार्य चलता रहा; किन्तु अँगरेज अधिकारी अलहड़ नवयुवक वजीरअलीसे जिस लाभकी आशा कर रहे थे, उसे सफल न होते देख उन्होंने उसे पदच्युत करने की ठानी। इसके लिए एक गंभीर भूमिकाकी आवश्यकता थी। शीघ्र ही षड्यंत्र पूरा किया गया और वजीर अलीको मृत नवाब आसफुद्दौलाका नाजायज पुत्र बताया जाने लगा। इसके लिए कुछ सरदार लखनऊमें



ही मिल गये। उन लोगोंने कहा कि वजीरअली एक फराशका लड़का है जिसकी माँ स्वर्गीय नवाबकी सेवामें आनेके पूर्व ही गर्भवती हो चुकी थी। अतः इन प्रमाणोंके बलपर अँगरेज अधिकारियोंने अवध-की गद्दीकी पवित्रता बनाये रखनेके कर्त्तव्यका स्मरण कर (!) वजीरअली-को गद्दीसे उतारनेका संकल्प कर लिया। तब उसकी जगह नवाब किसे बनाया जाय? यह समस्या उतनी बड़ी न थी। आसफुद्दौलाका एक सगा भाई सआदत अली खाँ, जिसकी अवस्था उस समय लगभग ६० वर्ष थी, बनारसमें सन् १७८५ ई० से अपने परिवार सहित लखनऊसे खदेड़ा जाकर दुर्गाकुण्ड (नवाबगञ्ज) मुहल्लेमें रहा करता था। बनारसके पोलिटिकल एजेण्ट मिस्टर जार्ज फ्रेडरिक चेरीने उससे सौदा पक्का कर लिया। सआदत अलीने स्वीकार कर लिया कि यदि उसे नवाब बना दिया जायगा तो वह अपनी सेना भंग कर देगा, अपने खर्चपर ब्रिटिश सेना लखनऊमें रखेगा और अन्य व्यावसायिक तथा राजनीतिक सुविधाएँ कम्पनीको प्रदान करेगा, आदि। मीठाका मीठा, वह भी पेटभर। अन्धे-को आँखें मिलीं। दोनों पक्षकी मुरादें पूरी हुईं। चट उसी दिन बूढ़ा सआदत अली एक पालकीमें बैठाकर अंगरेज सिपाहियोंकी रक्षामें चुपचाप लखनऊ पहुँचा दिया गया और वजीर अलीको आवारा और न जाने क्या-क्या बनाकर २० जनवरी सन् १७९८ ई० को पद-च्युत कर दिया गया। इतनी कृपा महाप्रभुओंने अवश्य की कि उसे ६ लाख वार्षिक पेन्शन देनेका वचन देकर डेढ़ लाख वार्षिक सहायता दी और लखनऊसे हटाकर चाचाके बदले भतीजेको बनारस भेज दिया। पहले चाचा साहब बनारसमें मुसीबतोंके दिन काटा करते थे; भतीजा लखनऊमें गुलछर्रे उड़ाता। अब चाचा साहब बुढ़ौतीमें लखनऊमें तख्तनशीन हुए और भतीजा बनारसमें 'काशीवास' करने आया। प्रभु-सत्ता सर्वोपरि है। उसकी रस्सीपर सारा तमाशा होता है।

बनारसमें आकर वजीर अली कबीरचौरास्थित माधव स्वामी (राधा स्वामी) के उसी ऐतिहासिक बागमें ठहरा जहाँ *अठारह वर्ष पूर्व* गवर्नर जेनरल वारेन हेस्टिंग्स राजा चेतसिंहको दण्ड देनेके विचारसे आकर टिका

था। वही कोठी, वही स्थान। फिर वजीर अली १९ वर्षका अनुभवहीन उद्धत, विलासी, हठी और क्रूर नवयुवक। गदहपचीसीकी उम्र। एक तो यों ही खर-पातमें आग लग जाती है और यदि उसपर अनुकूल हवा चलने लगे तो जो अवस्था होती है, वही दशा वजीर अलीकी हुई।

चेतसिंहके बार-बार पराजित हो जाने और मराठोंसे मिल कर कोई नया प्रयास आरम्भ करनेका उद्देश्य लेकर महादाजी सिन्धियाके यहाँ ग्वालियर चले जानेके उपरान्त तत्कालीन गवर्नर जेनरल वारेन हेस्टिंग्सने राजा बलवन्त सिंहके दौहित्र (पन्ना कुँवरके पुत्र तथा चेत-सिंहके भानजे) बाबू महीपनारायण सिंहको बनारसका राजा नियुक्त किया। बनारस राज्यके ९६ परगनोंमें ९४ परगने और बनारस शहर अंग्रेजी राज्यकी अमलदारीमें मिला लिये गये और २ परगने केरा-मँगरौर तथा भदोही प्रबन्धके लिए उन्हें सौंप दिये गये। वह भी इस दशा में कि इन दोनों परगनोंपर भी महीपनारायन सिंहकी प्रभुसत्ता न रह गयी। वह केवल जमींदार रह गये! प्रभुशक्ति, प्राण-हरण तथा प्राण-दान, टकसाल आदिके सभी अधिकार उनसे ले लिये गये। बनारस राजवंशके लिए यह घोर अत्याचार और अपमानकी बात थी; किन्तु शक्ति-हीन होनेके कारण उन्हें यह शर्त स्वीकार कर लेनी पड़ी। इसके विरुद्ध वे कर भी क्या सकते थे?

दूसरी ओर राजवंशके ही कुछ सदस्य ऐसे थे जो गद्दीपर महीप-नारायण सिंहका अधिकार देखना न चाहते थे। पिताके वंशमें सगोत्र, सपिण्ड और निकटके वंशधरके जीवित रहते सम्पत्तिका कन्या-वंशमें जाना उन्हें स्वीकार्य्य न था। अतः वे इस व्यवस्थाके कट्टर विरोधी थे। ऐसे लोगोंमें बाबू शिवलाल सिंहके पुत्र कुँवर जगतसिंह प्रधान थे। उनका कहना था कि उनके पितामह बाबू दशाराम बनारस राज्यके संस्थापक बाबू मनसारामके सगे भाई, सहयोगी और प्रधान कार्यकर्त्ता थे। अतः मनसा रामके वंशमें पुत्रका अन्त हो जानेपर राजगद्दी उन्हें मिलनी चाहिये। अँगरेज अधिकारियोंने उन्हें राज्य न देकर न्याय, धर्म, तथा कानूनके विरुद्ध कार्य किया है।

अपना अधिकार प्राप्त करनेके लिए प्रथमतः जगतसिंहने कम्पनीसे लिखा-पढ़ी आरम्भ की और शान्तिपूर्वक पत्राचार करते रहे, किन्तु इससे कुछ विशेष लाभ उन्हें न हुआ। हाँ, उन्हें दो-चार गाँवोंकी जागीर अवश्य मिल गयी, परन्तु बनारसकी राजगद्दीपर बैठनेका उनका स्वप्न साकार न हो सका। फलतः असन्तोषने उनके हृदयमें स्थान बनाया और धीरे-धीरे विद्रोहका रूप धारण कर बैठा। अपनी शक्ति नगण्य होनेसे उन्हें कम्पनीकी सत्ताके मुकाबले विद्रोह करनेका साहस न होता, अतः वह चुपचाप बैठे समयकी प्रतीक्षा करते रहे। दैव-संयोगसे वज़ीर अलीके पदच्युत होकर बनारस आ जानेपर दोनोंमें भेंट हो गई और विद्रोहकी भूमिका बनने लगी। कहा भी है—'खूब गुज़रेगी जब मिल बैठेंगे दीवाने दो।'

चेतसिंहकी पराजयसे कुछ नागरिक, सामन्त और सरदार वस्तुतः दुखी थे। वे देशमें अँगरेजी राज्यकी छाया भी नहीं देखना चाहते थे। परन्तु अवसर विपरीत देखकर हृदयका क्षोभ मनमें ही दबाकर उन्होंने जबानपर ताले लगा लिये थे। अब कुछ अनुकूल परिस्थिति पाकर उनका साहस बढ़ा और वे भी जगतसिंहकी हवेलीमें जुटने लगे।

शहरमें बाँकोंकी कमी न थी। लूट-पाट करके खाना ही इनका काम था। कुछ बैरागी और साधु-फकीर भी कोपीन और गेरुएकी आड़में जवानोंको तैयार कर रहे थे। वे उन्हें शस्त्र चलाना सिखाते और ब्रिटिश राज्यकी समाप्तिके लिए प्रेरित करते। ऐसे लोगोंमें पुराणपुरी और भंगड़ भिक्षुकके नाम उल्लेख्य हैं। पुराणपुरीका वर्णन बंगाल एशियाटिक रिसर्चेजमें है और भंगड़का बनारस गजटियरमें। पुराणपुरी तो समाधिस्थ हो ब्रह्मीभूत हो गये, किन्तु भंगड़को अँगरेज सेनाके सिपाहियोंने राजघाटके निकट त्रिलोचन घाटपर बनी पत्थरकी एक मढ़ीमें रोक दिया। भंगड़ जब भीतर बन्द हो गया तब उन नर-पिशाचोंने लकड़ीके बड़े-बड़े गट्ठर लाकर दरवाजा बन्द कर दिया, जिसमें जीता-जागता तड़पकर धूएँके गुबारमें उमस जलकर भंगड़ भीतर ही जल मरा।

शिवनाथसिंह और बहादुरसिंह ब्रह्मनाल मुहल्लेके दो प्रसिद्ध तल-

वारिया थे। 'चेतसिंहका सपना' में उनका विवरण वर्णित है। विद्रोह फैलानेमें इनका भी हाथ था। ये दोनों मित्र जगतसिंहकी सेवामें रहते थे। इन लोगोंने देहात तथा शहर बनारसमें कई सिपाहियोंको मार डाला था। अन्तमें इनका घर घेर लिया गया। गलीके सभी रास्ते और नाके बन्द कर दिये गये जिससे उन्हें कोई सामान और सहायता बाहरसे न मिल सके। कई दिनों बाद जब खाद्य सामग्री समाप्त हो गयी तो दोनों मिलकर तलवारें ले खिड़कीसे कूद पड़े। कई सिपाहियोंको मारते हुए वे दोनो वहीं कट मरे। बादमें मुहल्लेवालोंने दोनोको एक ही चितापर ले जाकर जलाया और इनके घरके दरवाजेपर इनकी स्मृतिमें एक चौरी बना दी जिसकी पूजा प्रातःकाल गंगा-स्नानसे लौटनेवाले स्त्री-पुरुष किया करते हैं।

विद्रोहकी कथाके सम्बन्धमें थोड़ा और कहना आवश्यक है। बनारसमें लगभग एक वर्ष रहनेके बाद वजीर अलीको ज्ञात हुआ कि अधिकारी अब उसे कलकत्ता भेज देना चाहते हैं। वह पहलेसे ही चिढ़ा हुआ था। गवर्नर जनरल सर जान शोरने उसे ६ लाख वार्षिक पेंशन देनेका जबानी वचन दिया था, किन्तु जब कागज लिखकर आया तो उसमें डेढ़ लाख ही लिखे थे। इसपर वह उद्धत नवयुवक और भी भड़क उठा। शक्तिहीन होनेसे वह प्रतिकारमें कुछ कर तो न सका, किन्तु अँगरेज अफसरोंके विरुद्ध उसके हृदयमें जो विद्वेषाग्नि थी वह धधक धधक कर जलने लगी। कलकत्ता जानेकी बातें सुनकर अब वह पागल हो उठा।

इस बीच वजीर अलीने नगरमें अपनी प्रतिष्ठा जमानेके विचारसे खिदमतगार नियुक्त करना शुरु किया। यद्यपि ये सेवक खिदमतगार कहे जाते थे, परन्तु वास्तवमें वे सिपाही होते। वजीर अली गुप्त रीतिसे एक छोटी सेना तैयार कर रहा था। अपनी योजनाके विस्तारके लिए उसने शहरके सभी असंतुष्ट, क्षुब्ध और गुण्डे-बाँके लोगोंको बुलावाया, स्वयं मिला और उन्हें संघटित किया। वह नित्य एक सजे हुए हाथीपर दो-सौ सिपाहियोंके साथ शहरमें हवाखोरीके लिए निकलता। उसकी धाक जम गयी। जनतामें उसके प्रति सहानुभूति जाग उठी। लखनऊके सआदत अलीके प्रति रोष और वजीर अलीके प्रति सहज स्नेहकी भावना फैल गयी।

इस भावनाको चतुर्दिक फैलानेका कार्य जगतसिंह और उनके साथियों-ने किया। एक दिन अचानक शहरमें हवाखोरीके लिए निकले वजीर अलीने जगतसिंहके कनिष्ठ पुत्र लक्ष्मीनारायणसिंहको देखा और उसे पास बुलवाकर अपनी मोतियोंकी माला दे दी। साथके सिपाहीको अंगूठी उतारकर दी। घर जानेपर जगतसिंहको जब सारी घटना विदित हुई तो उन्होंने नवाबसे मिलनेका निश्चय किया। अन्तमें एक दिन जब वह वजीर अलीसे मिले तो दोनों संतप्त हृदयोंकी दलित कामना अचानक वेगसे भड़क उठी। वजीर अलीने अँगरेजोंको देशसे निकाल देनेकी कसम खायी। जगतसिंहने उनका साथ देनेका वचन दिया।

फिर तो बैठकें होने लगीं। रिश्तेदारों, परिचितों और दूर-दूरके सरदारोंके नाम पत्र-लिखे जाने लगे। ढाकाके नवाब जमान शाहके छोटे भाईने ऐन वक्तपर सहायताका वचन दिया। जगतसिंहके कुछ रिश्तेदार छपरामें रहते थे। उन्होंने लगभग २०,००० आदमी देनेको कहा। बनारसके आसपासके बाबुओंने अपने-अपने क्षेत्रोंमें शक्ति-संग्रह करना शुरू किया। इनमें भवानीशङ्करसिंह और उनके पुत्र शिवदेवसिंह प्रधान थे।

कलक्टरका ज्योतिष विद्यापर विश्वास था। वह एक ब्राह्मणसे ज्योतिष पढ़ा करता था। वहाँ वजीर अली प्रायः जाया करता था। ब्राह्मण ज्योतिषीको देख उसे भी कुछ पूछनेकी इच्छा हुई और उसने ज्योतिषीको अपनी कोठीमें बुलवाया। कोठीमें आनेपर वजीर अलीने उससे वह शुभ लग्न पूछी जिस घड़ी अँगरेज अधिकारियोंपर आक्रमण करके विद्रोह आरम्भ किया जाय। ज्योतिषीने मकर संक्रान्तिका दिन (१४ जनवरी सन् १७९९ ई० बताया। तैयारियाँ होने लगीं।

१३ जनवरीकी शामको वजीर अलीने अपने मित्रोंकी सभा की और अगले दिन विद्रोहका सूत्रपात कर देनेका निश्चय किया। उसी समय उसने एक हरकारा भेजकर पोलिटिकल एजेण्ट मिस्टर चेरीसे यह कहलवाया कि दूसरे दिन नवाब उनसे सबेरे भेंट करने आयेंगे। चेरीने भेंट स्वीकार कर ली।

रातभर वजीर अली सिपाहियोंको शस्त्र बाँटता रहा। सबेरा होते ही वह एक दल बनाकर पोलिटिकल एजेण्टके बंगले, सिकरौलकी ओर चला। उसके दलमें कुल लगभग दो-ढाई सौ जवान थे। इज्जत अली और वारिस अली उसके दो मुख्य परामर्शदाता थे जो बनारस आनेपर उसके खास मुसाहिब हो गये थे। कहा जाता है कि नवयुवक नवाबका इज्जत अलीकी सुन्दरी बहिनसे कुछ सम्बन्ध था। जो भी हो, इज्जत अली इस समय नवाबकी नाकका बाल बन रहा था।

सिकरौल पहुँचते ही चेरीने नवाबका स्वागत किया। शेष सिपाही तो उसके बंगलेके बाहर सड़कपर ही रुक गये, किन्तु तीन व्यक्ति, इज्जत अली, वारिस अली और इज्जत अलीका एक श्वसुर मुगल बेग उसके साथ भीतर गये। वहाँ जब चेरी उन्हें जलपान करानेके विचारसे अपने बंगलेके भीतरी कक्षमें ले गया तो चाय पीते समय उन्होंने अचानक चेरी तथा उसके साथियोंपर हमला कर दिया। वे सब भागने लगे, किन्तु वजीर अलीके साथियोंने उन्हें पकड़कर मार डाला।

पोलिटिकल एजेण्टको मारकर अब वे जिलेके जज तथा कलक्टर मिस्टर डेविसके बंगलेकी ओर बढ़े। डेविस पूरा काग था। वह वजीर अलीसे बहुत चिढ़ता था। उसने चेरीको हमेशा सावधान किया था और वास्तवमें डेविसके ही परामर्शपर वजीर अलीको कलकत्ता भेजा जाता था। परन्तु डेविसको कुछ मौका मिल गया। उसने अपने परिवारको ऊपर छतपर भेज दिया और आप एक भयानक भाला लेकर सीढ़ियोंपर खड़ा हो गया। वजीर अलीके साथियोंने बहुत चेष्टा की कि वे ऊपर चढ़ चलें, परन्तु भालेके कारण वे कृतकार्य न हो सके। उनमें कई मर गये। बाहर सिकरौलकी अँगरेज बस्तीमें लूट-पाट कत्ल, अग्निकाण्ड और विद्रोहके अन्य कार्योंका बाजार लग गया।

शहरमें जगतसिंहने विद्रोह शुरू किया। उस दिन दोपहरतक अनेक अँगरेज नागरिकों और अधिकारियोंका वध होता रहा; किन्तु दोपहरमें बेटाबर और कुण्डा नामक गाँवोंमें स्थित छावनियोंसे सेनाके आ जानेके कारण दोनों ओरसे युद्ध होने लगा। जेनरल अर्सकिन अँगरेजी सेनाका

प्रधान था। वह तथा उसके सहायक मेजर पिगाटने विद्रोह शान्तिके लिए अथक परिश्रम किये।

कई दिनोंकी विकट अशान्ति, हत्याकाण्ड और लूटपाटके बाद शान्ति संभव हो गयी। अँगरेज सेना तोपखाना लेकर कबीरचौरा आयी। उसने माधव (राया) स्वामीका बाग घेर लिया जिसके भीतर बनी कोठीमें वजीर अली और उसके परिवारका निवास था। कोठीकी मीनारों और खिड़कियों, की ओर तोपोंके मुँहकर दिये गये। कुछ देरतक नीचे फाटकपर उतर आकर वजीर अलीने युद्ध किया; परन्तु वह हारा। तोपोंकी मारके सम्मुख उसके बन्दूक औरे तलवारधारी सिपाही टिक न सके। अन्तमें पकड़े जानेकी आशंकासे उसने अपनी कोठीसे परिवारकी स्त्रियोंको किसी गुप्त स्थानमें भेज दिया और आप निकलकर उत्तर दिशाकी ओर चल दिया। वहाँसे वह गोरखपुर भागा जहाँसे नेपाल चला गया।

वजीर अलीके भागते ही विद्रोह पूर्णतः शान्त हो गया। अब दण्डका चक्र चला। स्वयं वजीर अलीको गिरफ्तार करनेवालेको २० हजार रुपयोंके पुरस्कारकी घोषणा की गयी। इस सम्बन्धमें हम तत्कालीन भारत सरकारके सचिव श्री बार्लो साहबके २० जनवरी सन् १७९९को कलकत्तेसे लिखे गये पत्रका कुछ अंश उद्धृत करते हैं जिसमें वजीर अलीके जिन्दा या मुर्दा, किसी भी हालतमें गिरफ्तार करा देनेपर २० हजार रुपये पुरस्कार देनेका उल्लेख है—

...I enclose for your information copies of the letters which have been written to the Resident at Lucknow and Major-General Erskin. You are authorised to publish a reward of Rs. 20,000 for the apprehension of Vazir Ali, alive or dead.

Fort William,
20 Jan., 1799.

G. H. Barlow
Secy. to the Govt. of India.

अन्य गिरफ्तार लोगोंपर मुकदमे चलाये गये। जगत सिंहको उनकी कोठीमें ही पकड़ लिया गया। भवानी शंकर और उसके पुत्र शिवदेव सिंह भी पकड़ लिये गये। सबपर राजद्रोहका अभियोग लगाया गया। इस सम्बन्धमें 'वजीर अली खाँ या बनारसका हत्याकाण्ड' नामक पुस्तकसे (जिसे तत्कालीन जज तथा कलक्टर मिस्टर डेविसके पुत्र ए. डेविसने लिखा है) कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है—

Juggat Singh and Bowanee Shanker Singh were tried along with their gang by a commission with the unusual solemnity and condemned to death. The last name was executed. But Juggat Singh's name was commuted for transportation. He was sent down the Ganges to be embarked, but when he approached the sea, he took poision and escaped the loss of caste and other degradations he expected to suffer.'...

अर्थात् जगत सिंह तथा भवानीशंकर सिंहपर उनके दलवालोंके साथ अस्वाभाविक गंभीरतापूर्वक मुकदमें चलाये गये और उन्हें प्राणदण्ड दिये गये। इनमें अन्तिम (भवानी शंकर सिंह) को फाँसी दे दी गयी, किन्तु जगतसिंहका दण्ड फाँसीके बदले आजीवन काले पानीके लिए बदल दिया गया। उन्हें गंगाजीके रास्ते भेजा गया, परन्तु जब वह समुद्र (गंगा-सागर) के पास पहुँचे तो धर्म भ्रष्ट होने, जाति जाने, तथा अन्य विपत्तियों एवं पतनसे बचनेके विचारसे उन्होंने विष पान कर लिया.... ।'

भंगड़ जीवित जला दिया गया। शिवनाथ सिंह और बहादुर सिंह अपने घरके दरवाजेपर लड़ते हुए मारे गये। शेष सभी किसी-न-किसी प्रकार मौतके घाट उतारे गये या दबा दिये गये। इस प्रकार इस विद्रोहका भी असफल अन्त हो गया।

वजीर अली जयपुरमें पकड़ा गया। तत्कालीन जयपुर-नरेशने उसे

गिरफ्तार करा दिया। वहाँ उसे लोहेके एक पिंजड़ेमें बन्द किया गया और कलकत्ता भेज दिया गया। मार्गमें जाते समय वह कुछ कालके लिए पुनः बनारस लाया गया। उस अभागेका प्रदर्शन किया गया और फिर उसे कलकत्तेके फोर्टविलियमके नरक तुल्य अन्धकारमय कारागारमें डाल दिया गया। भीषण यंत्रणाओंमें सड़-सड़कर वजीर अली असमयमें ही कंकाल हो गया। तब उसे मद्रासके वेल्लौर किलेमें भेज दिया गया जहाँ तड़प-तड़पकर उसने जीवनसे मुक्ति प्राप्त कर ली।

विद्रोह प्रायः असफल रहते हैं और उन्हें सशक्त सत्ता दबा देती है। अनुभवहीनता दुर्भाग्यकी जननी है। दुर्बलके लिए दैव भी विघातक हो जाता है। किंतु इससे उस विद्रोहका महत्त्व नहीं घट जाता। वह तो अपने स्थानपर पूर्ण महत्त्वशाली है। विदेशी सत्ताके विरुद्ध हथियार उठाकर मर जानेमें भी गौरव है और ऐसा कार्य संसारके सभी देश, सभी काल और सभी वर्गमें पवित्र और गौरवशाली माना गया है।

प्रस्तुत उपन्यासकी घटनाएँ सन् १७९९ ई० में घटित हुई हैं। इसके पूर्व सन् १७८१में चेतसिंहने अपना झण्डा उठाकर स्वातंत्र्य-बिगुल बजाया था। उस स्वरकी चेतना अभी समाप्त न हुई थी। उस युद्धके सैनिक अभी मरे न थे। अतः बनारसके वातावरणमें प्रतिशोध और विद्रोहकी वह ज्वाला धीरे-धीरे धुँधुआती ही रही। अन्तमें अठारह वर्षों बाद वह ज्वाला फूट पड़ी। 'चेतसिंहका सपना' में जिस चेतनाकी अभिव्यक्ति है, उसीका पुनर्जागरण अठारह वर्ष बाद हुआ, अतः इस अवधि और घटनापर ही उपन्यासका नामकरण आधृत है।

प्रस्तुत उपन्यास काशीसे प्रकाशित होनेवाले दैनिक 'सन्मार्ग' के साप्ताहिक विशेषाङ्कमें धारावाहिक रूपमें स्वतन्त्रता दिवस अतिरिताङ्क सन् १९५५ से प्रकाशित होना आरम्भ होकर कई महीने तक छपता रहा जिसे 'सन्मार्ग के पाठकोंने काफी सराहा था। अब यह उपन्यास पुस्तक रूपमें प्रकाशित हो रहा है जिससे यदि हमारे प्रेमी पाठक मनोरंजनके साथ यदि कुछ प्रेरणा ग्रहण कर सके तो मेरा प्रयास सफल होगा।

—गिरिजाशंकर पाण्डेय

ज्यूँ सब्ज़ा रुँदे उगते ही पैरोंके तले हम।
इस गर्दिशे अफ़लाकसे फूले न फले हम।
अरमान बहुत रखते थे हम दिलके चमनमें।
बैठे नखुशी से कभी सायेके तले हम।
हम वोह न कलम थे किसी मालीके लगाये।
नरगिसके निहालों में थे, आसफ़के पले हम।
ज़िन्दाने मुसीबतमें भला किसको बुलाएँ?
रहते हैं वज़ीरीसे हीं दिन-रात मिले हम।*

—वज़ीर अली



* प्रस्तुत कवितामें अँगरेजों द्वारा अपनी बर्बादीका वजीर अलीने उल्लेख किया है। उपर्युक्त गजल वजीर अलीके किसी प्राचीन दीवानसे प्राप्त हुई थी। 'तारीखे अदबे उर्दू' नामक काव्य-संकलन-ग्रन्थमें उक्त गजल प्रकाशित थी जहाँसे श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयने इसे अपने 'शेर ओ शायरी'में उद्धृत किया। लेखकने उक्त ग़ज़ल 'शेर ओ शायरी' से प्राप्त किया है जिसके लिए हम उसके लेखक तथा प्रकाशकके आभारी हैं।

दो कम्पनी पाँच सौ चढ़कर चपरासी आया।
गली-गली औ कूचे-कूचे नाका बँधवाया।
मिर्ज़ा पाँचू कसम खायके कुरान उठाया।
पैगम्बरको किया बीच औ' उनको समझाया।
चलो अदालत, मिलो, छोड़ दो सूबेका झगड़ा।

....

सन्मुख होकर लड़े निकलकर मुँह ना मोड़ा।
शिवनाथसिंह बहादुरसिंहका बना खूब जोड़ा।
शूर वीर जो सम्मुख आये सबसे अबल पड़े।
तनमें गोलियाँ लगी तीस जब घायल होय पड़े।
हँस बोला तब सूबेदार कि काटले गरदन दोनोंके।
उठ बैठा शिवनाथ बहादुर मारा सिपाहीके।

('हंस'—काशी-अङ्कसे)

अठारह वर्ष बाद…

१

लखनऊकी लहर

दिन-दिन क्षीण होनेवाली मुगल और उसकी अधीनस्थ सत्ताओं-की करुण कथाएँ कहनेवालोंमें सूबा अवधकी राजधानी भी थी जिसने उस दिन एक नयी कहानी शुरू की। लोग स्तब्ध थे, हैरान ; लखनऊकी गलियाँ और सड़कें उत्तेजना, विस्मय, क्षोभ और विप्लवकी तरंगोंमें आन्दोलित थीं।

अठारहवीं शताब्दीका अन्तिम दूसरा वर्ष था। जाड़ेके दिन थे और पूसका महीना। ठण्ढ जवानीपर थी। शीतल वायुके झोंके गोमतीकी क्षीण धाराको अङ्कमें लपेटते उन्मत्त शोहदोंसे लखनऊ शहरमें घूसकर लोगोंको भयभीतकर कँपा रहे थे। अमीर सरदार और जागीरदार जाड़ेका अनुमान रजाइयोंकी संख्यासे लगाकर सुरा और साकीके संयोगसे उत्पन्न गर्मीमें जीवनका आनन्द खोज रहे थे। नवाब और बेगमोंके हजारों रिश्तेदार आँखोंमें सुरमा लगाये पान चबाते, गजलें गाते और हाथकी अँगुलियोंपर बुलबुल बैठाये कहीं शान्त और हवासे बचने लायक जगहें तजवीज करते बुल-बुल लड़ानेकी फिराकमें घूम रहे थे। वेश्याओंकी खालाओंके

पुराने जीर्ण-जर्जर प्रेमी अब अपनी पालिताओंकी नथिया उतारने वाले नये शौकीनोंसे प्राप्त उपहार बेचकर अफीमकी दूकानोंपर अड्डा लगाये थे। भेंड़ा, भैंसा, मुर्गा, तीतर और दूसरे जानवरोंकी लड़ाइयों-का जोर था। शहरकी हूरोंके लाजवाब हुस्नकी प्रशंसा करनेवाली कुटनियाँ इधर-उधर सड़कपर घूमनेवाले मनचले जवानोंसे आखें लड़ाकर हँसती और बिना बुलाये स्वयं छेड़कर बातें करनेका प्रयास कर पास चली आतीं। भठियारिनों और नानबाइयोंकी दूकानपर कल रातको हुए कत्ल-चोरियोंकी बातें होतीं, या शहरमें दिन-दिन बढ़ती डकैतियोंको रोक पानेमें असमर्थ कोतवालकी विलास-प्रियताकी कथा आरंभ होती और होते-होते अपना सौदा पटा लिया जाता। लखनऊ विलासमें डूब-उतरा रही थी।

हजरतगंजकी सड़कपर बड़ी भीड़ जमा थी। अभी-अभी शहर-की मशहूर तवायफ दिलशाद जानकी नाक काटकर उसका एक पुराना प्रेमी अपने किसी रकीबसे किये हुए प्रणको पूरा कर चला गया था। मुहल्ले भरमें चर्चा चल रही थी। दूकानदार अपनी दूकानें छोड़, कारीगर अपना काम त्याग, मौलवी मकतबमें लड़कोंको पढ़ाना रोक बाहर निकल आये थे। दिलशादकी नाकका खून लखनऊपर सवार हो चुका था। वातावरणमें कुछ गर्मी आ गयी थी कि सहसा लोगोंने साश्चर्य देखा कानपुरसे लखनऊ आनेवाली सड़कके रास्तेसे हाथीपर सवार वृद्ध सआदत अली खाँ शहरमें प्रवेश कर रहा था। उसके आगे-पीछे अँगरेजी अफसरों और सिपाहियों-का दल समुद्रकी भाँति लहरा रहा था। उत्तेजित भीड़ने मिर्ज़ा सआदत अली विरोधी नारे लगाये।

एक जवान भीड़से निकलकर बाहर आया। पास ही एक उँचे चबूतरेपर खड़ा हो गया। देखनेसे वह मराठा सिपाही लगता था। उसकी धोती, जूते, कमरबन्द, चन्दन-तिलक और तलवार बाँधनेके ढंग

सर्व दक्खिनी लग रहे थे। मराठा सिपाही कदमें नाटा, किन्तु हृष्ट-पुष्ट और बलशाली मालूम होता था। उसकी नसें तनीं और फूली हुई थीं। गलेमें सोनेसे मढ़ा रुद्राक्ष पहने वह समस्त भीड़को आकर्षित कर रहा था। कर्कश स्वरमें एकत्र बलवाइयोंको ललकारते हुए उसने गरजकर कहा—'क्या देखते हो यारो! लूट लो लखनऊ शहर....!'

लोग स्तब्ध रह गये। लूट लो लखनऊ शहर....! लखनऊ लूटा जायगा? वह लखनऊ, जिसके निर्माणमें मृत नवाब आसफुद्दौलाने अपार सम्पत्ति व्यय कर दी, पानीकी भाँति धन बहाया, कला और व्यवसायका केन्द्र बनाया, सजाकर इन्द्रपुरी बनाया, वह वैभव और विलासका केन्द्र लखनऊ क्या लूट लिया जायगा? लखनऊ आज अनाथ विधवा सा मर्माहत और विवेकशून्य हो चुका था।

मराठा सिपाहीने फिर बिजलीकी भाँति गरजकर कहा—'तुम नहीं लूटोगे तो हम लूट लेंगे। हमारा क्या हो सकता है? हमारे पास पचास हजार जवान हैं। अम्बाजीका हुक्म है। उनका वकील नवाब वजीर अलीसे मिल चुका है। गोमतीके किनारेवाले महलमें नवाब वजीर अली चार दिनोंसे बन्द हैं। नवाबकी बूढ़ी दादी 'बहू बेगम'को भी फैजाबादसे बुलाकर अंग्रेज अफसर बेइज्जत कर रहे हैं। जनाने महलपर उनका पहरा है। यह सब बर्दाश्त कर सकते हो? बोलो, कर सकते हो? नहीं तो लूट लो इन बेइमान फिरंगियोंको....!'

शीतकालमें भी लखनऊकी वायु आग उगल रही थी। उसकी लहरोंपर तैरता हुआ मराठा सिपाहीका वज्रस्वर कोलाहलपूर्ण नादमें तीव्र गतिसे मुखरित हो उठा—'लूट लो....!' उसी समय निकटकी एक मसजिदपर खड़े एक मुसलमान अधिकारीने उत्तेजित हो हुंकार मारी और सिंहकी भाँति दहाड़कर गरजा - 'बिरादराने वतन! आज समय आया है। हमारी इज्जत आज इन चन्द विलायतियोंके बूटोंसे कुचली

जा रही है। नवाबको बन्द हुए आज चौथा दिन है। बेगमोंके महलातोंपर संगीनोंका पहरा है। हम उन्हें देख नहीं सकते, बातें नहीं कर सकते। पर अँगरेज रेजिडेएट बराबर भीतर आ-जा रहा है। हमारी छाती सुलग रही है। मुल्क और बादशाहके नामपर कुर्बान होनेवाले बहादुरो, कूच करो। नवाब वजीरके तोपखानेके दारोगा इब्राहीम खाँसे हमारी बातें हो चुकी हैं। उसकी तोपें इन गीदड़ोंको भून देंगी। नवाब सफदर जंगकी राजधानीमें उनका ही पोता किलेमें बन्द किया जाय और ये बनिये, जो कल निगाह उठानेमें भी थर-थर काँपते थे, आज हमारी किस्मतें बना-बिगाड़ रहे हैं। उन्हें···।'

अचानक हाथियोंके घएटे घनन-घनन बजते सुनायी पड़े। चौंककर लोगोंने उस दिशामें देखा, सावनी घटा-सी हाथियोंकी जमात उमड़ पड़ी है। सोने-चाँदीके हौदोंसे युक्त, बहुमूल्य झूलोंसे सजे विशाल हाथियोंपर अँगरेज अफसर पिस्तौल और बन्दूकें सँभाले सतर्क बैठे थे। आगेके दो हाथियोंपर भीड़के अनवरत निनादमें क्षीण धूम्र-रेखा-सी अंग्रेजी मसक और बीन गूँजती-बजती सुनायी पड़ी जिसे अंग्रेज सिपाही ही बजा रहे थे। सम्भवतः वे गोरी फौजके बैएड-के सिपाही थे। लम्बे दाँत और विशाल मस्तकवाले आसामी हाथी अपने लम्बे कान हिला-हिलाकर गर्वीली चालसे रास्ता बनाये चले जा रहे थे।

'सआदत अली जिन्दाबाद'के नारे मानों आकाशकी छाती चीरकर उसके अन्धकारमय पटपर लिख रहे थे—'जिन्दाबाद या सर्वनाश!' बूढ़ेकी धँसी आँखोंने नियतिके इस लेखको हर्ष और भयसे पढ़ा। क्रान्तिकारियोंका तीव्र कोलाहल उसके बधिर कानोंने सुना या नहीं, किन्तु व्योमके प्रशस्त पटपर मानवता और स्वाधीनताके देवताने स्पष्ट लिखा—'हबिशके ओ गुलाम बुड्ढे, तू जिन्दा है? तेरे जिन्दाबादके ये नारे क्या तुझे जीवित रख सकेंगे? तेरी आँखें रोशनी खो चुकीं, और कान श्रवण-

शक्ति। बाहु शिथिल पड़ गये और लड़खड़ाते पाँवोंमें पराधीनता-की जञ्जीर जकड़ी जा चुकी। विलासकी दुर्दम अभिलाषा कब्रके द्वारपर मुस्कुरा उठी है ? मूर्ख! तू तभी मर चुका जब उस दिन रातको पोशाक बदलकर बनारस शहरमें चोरों-सा चुपचाप पालकीपर जा चढ़ा भतीजेका हक छीनने। क्या बादशाह भी चोरों-सा छिपकर आता है ?'

सआदत अलीका मुँह विवर्ण हो रहा था। नीचे सड़कोंपर अशान्तिका दृश्य, क्रान्तिका तुमुल कोलाहल, तथा जराजन्य सहज भीरुता मौतके भय और सिंहासनके लोभके बीच अजीब थपेड़े खा रही थी। वह बवण्डरका तिनका बन चुका था, अंग्रेज कूटनीतिज्ञोंका पालतू कुत्ता, जिसका दानव जाग उठा था।

'योर मेजेस्टी ! डोन्ट फियर···डोन्ट फियर नवाब शाब....'— बगलमें बैठा भारतका अंग्रेज गवरनर जेनरल सर जान शोर समझा रहा था—'आप अनिक भी चिन्ता न करें। मैं तमाम बागियोंको क्षण भरमें कुचल दूँगा। आप हँसे, मुस्कुरायें····वह देखिये, रियासतके पुराने अमले सब आपको सलामी दे रहे हैं। कबूल करिये···लखनऊ आपका स्वागत करता है।'

'अवधका थ्रोन हुजूरको इन्वाइट करता। वजीर अली मरहूम नवाबका बेटा नहीं। उसकी माँ एक बाजारू औरत थी, वह देखिये'— दूसरे अँग्रेजने ढाँढस बँधाया—'सब आपके ही आदमी···।'

वजीर अली मरहूम नवाबका बेटा नहीं ! उसकी माँ एक बाजारू औरत ! कानोंको प्रतीति क्यों नहीं होती ? सआदत अली जिन बातोंकी सच्चाईको स्वयं अपने-सा जानता है, उसपर उसके कान विश्वास क्यों नहीं करते ? फिर क्या कल उसके भी मर जानेपर इसी तरह उसके बेटोंके बारेमें भी ये बनिये अँगरेज नहीं कह सकते कि यह मरहूम

नवाबका बेटा नहीं ? अवधकी बेगमके लिए भी क्या ये फिरंगी कल नहीं कह देंगे कि यह बाजारू औरत है ? तब ?

अचानक मनके निगूढ़ कपाट खुल गये—'सआदत अली, पागल हुए हो ? बुढ़ौतीमें मसनद मिल रही है। भलेमानुस, तुम्हारा भाग्य जाग रहा है। अँगरेज अफसरोंकी हर बातकी पुष्टि करो, तरक्की क्यों नहीं होगी ? बदकिस्मतीकी अँधेरी तूफानी रात बीत गयी और यह नये जमानेका सवेरा है ! वजीर अली, तुम अभागे हो ! खुदा किसीको अपनी आँख नहीं देता, किसीकी लेकर ही देता है। तुम्हारी तबाही मेरी तरक्कीकी आखिरी सीढ़ी है। इसे मुझे नाँघना ही होगा।'

भाग्यका खेल; कैसा विपर्यय था ! एक ओर सौन्दर्य-सौकुमार्यसे छलकता नवयौवन, दूसरी ओर कब्रकी ओर खिसकता हुआ बुढ़ापा; एक ओर जिन्दगीकी रंगीनियोंकी बहारका मौसम, दूसरी ओर थके हुए दिनकी उदास बोझिल साँझ; एक ओर नवोदित आशाओंका व्यूह, दूसरी ओर निराशाओंका चिरसंचित विषाद; फिर भी पहले-का पतन और दूसरेका उत्थान ! भाग्यदेवता, तुम किस मात्रावोंसे कम हो ?

कहते हैं पुरुषका भाग्य पत्तेकी आड़में छिपा रहता है, जिसे दैव भी नहीं जानता। वह अचानक प्रकट हो जाता है। भाग्यके बिलखते हुए हाहाकार करते अन्धकारको चीरकर कब सुख-सौभाग्य-का प्रभात जाग उठेगा, कौन जानता है ? सआदत अली कभी अपने भाग्योत्कर्षपर प्रसन्न होता, कभी अपने हतभाग्य भतीजे वजीर अलीके पतनपर ठंढी साँसें भरता चुपचाप हाथीके हौदेमें खोया-सा चला जा रहा था। परन्तु उसका दिल कह रहा था—'इसे सौभाग्य नहीं कहते। यह घोर पतन है जो भतीजेकी जगह हड़पने जा रहा है।'

गवरनरके संकेतसे बिगुल बज उठे। दिन दो पहर चढ़ चुका था। वायुमें गर्मी प्रखरतर हो चली थी। सूर्य सीधे सिरपर चमक

रहे थे। सड़कोंपर बलवाइयोंकी अपार भीड़ खड़ी थी, पर हाथियोंके बढ़ते ही सभी सिखक जाते। अचानक मुहरों और रुपयोंकी वर्षा होने लगी। मोतीके माले लुटाये जाने लगे। बहुमूल्य आभूषण, वैभवपूर्ण वस्त्र हाथियोंपरसे लुटाये जा रहे थे। नीचे भीड़ सड़कपर जमी टिड्डियों-की भाँति टूटती, मुहरों और रुपयोंपर चिपट जाती। मालेके दाने टूट-टूटकर बिखर जाते और वह विशाल जनसमूह महासमुद्र-सा हिल्लोलित हो कभी भैरव स्वरमें गर्जन कर उठता, तो कभी हर्ष से निनादित।

'लड़ता क्यों? म्यूटनी मत करो। हम और रुपया देंगे " सिक्का"" मोहर, गोल्ड मोहर, कलकत्ता का"" । नवाब शाहबका कारोनेशन होने दो, तुमको जागीर बख्शेगा, दीवानी देगा"'।' हाथीके निकट खड़े एक सुन्दर नवयुवकको अँग्रेज सेनापतिने प्रलोभन दिया। फिर वही रुपयोंकी बौछार, वही मोहरोंकी वर्षा। लखनऊकी सड़कोंपर घण्टे भर सोना-चाँदी बरसता रहा और अदूरदर्शी धन-लोलुप लोभके दास इस दानपर वैसे ही टूट रहे थे जैसे जूठे पत्तलोंपर कुत्ते। सभी थे—हिन्दू-मुसलमान, सिपाही, मुंशी, दारोगा, मौलवी, हकीम, वैद्य, सरदार-गरीब, खटिक कुँजड़े, बूढ़े-जवान, सब परस्पर गुँथे जाते, लड़ते, गुर्राते, गालियाँ देते। फिर तलवारें खिंच जातीं। पैंतरे बदल जाते और तबतक गाँठ बाँधता दूसरा चल देता। घण्टे भर तक यही दृश्य चारो ओर था। तेवरोंके बाजारमें उतार-चढ़ावका पता न था।

हाथियोंका जुलुस शहरकी सड़कोंपर घूमता, प्रदर्शन-करता मृत नवाब आसफुद्दौलाके दीवानखानेकी ओर बढ़ा। पास ही अवध-का नवोदित तारा अन्धकारकी अतल गहराईमें अपने दुर्भाग्यका नक्शा खींच रहा था। कलका बादशाह आज बन्दी था। बन्दी ही नहीं, अपमानित, लांछित और प्रताड़ित! जिसकी उत्पत्तिपर ही शंका प्रगट की गयी, जिसकी माताके चरित्र और गौरवपर मुट्ठीभर धनियोंने लनात दी। वजीरअली चार दिनोंसे अपने महलमें कैद था।

उसके राजप्रासादके चारों ओर अंग्रेजी सेनाका पहरा था। कोई पास नहीं आने पाता था। सिवाय महलके सेवकोंके किसीको भीतर जानेकी आज्ञा न थी। रेजिडेण्टके आदमी शानसे सिर उठाये कभी-कभी आते-जाते दिखायी देते जिनकी अदा भरी मुद्रा मानो अपने विजयकी कहानी सुना रही थी। जब अंग्रेज अधिकारी निकल गया तो फाटकके पुराने पहरेदारने अपने साथीसे कहा—'जिस वक्त नवाब आसफुद्दौलाने मिट्टी छोड़ी, खुदाताला उन्हें जन्नत बख्शे, उनकी मसनदपर यही शाहजादा बैठा। उस समय वजीरअली नाजायज न थे, आज नाजायज हो गये? उस समय वह गद्दीके हकदार थे और आज गुनहगार और नापाक हो गये?'

'हाँ, और क्या, बादशाहने खुद कितने शौकसे इनका ब्याह किया। आप बारातके आगे पैदल चले। उस वक्त भी तो ये ही फिरंगी थे। बादशाहने मरते दम तक वजीर अलीको साथ रखा। उनकी जन्नतनशीनीके बाद भी वजीर अली आठ महीने मसनदपर रहे। तब यह गोलमाल नहीं हुआ और आज सारा फितूर एक साथ उठ खड़ा हुआ है?'

'मियाँ कुछ नहीं? सब नसीबेका फेर है। वजीरअलीकी किस्मत ही खराब है तो दूसरोंका क्या कसूर? उनके बुरे दिन आये समझ लो। हमें तो ऐसा दीख रहा है·······।'

सहसा एक फौजी पोशाकधारी अँग्रेज अधिकारीको देखकर वे चुप हो गये। अँग्रेज जब किलेसे निकल गया तो पहरेदारने फिर कहना शुरू किया—'ऐसी ही आफत अवधपर एक दिन और आयी थी। आज उस बातको तीस-पैंतीस साल हो गये होंगे। मैं बीस-बाइसका जवान था। बादशाहकी खिदमत करता। उस वक्त भी यही डाँवाडोल हालत थी। नवाब शुजाउद्दौला बक्सरसे हारे-भागे चले आ रहे थे और अँग्रेजी सेना उन्हें खदेड़ती आ रही थी। उसने

फैजाबाद घेर लिया और दिन भर मनमानी लूट मचायी। हारकर दूसरे दिन नवाबने पचास लाख सालाना खिराज देनेकी बात तयकर सुलह खरीदी।'

बातें अभी समाप्त भी न हो पायीं थीं कि एक मुसलमान सिपाही, जो महलका सेवक जान पड़ता था, बाहर आया। उसे देखकर फाटकके पहरेदारोंने कुछ जाननेके उद्देश्यसे संकेतकर निकट बुलाया। सिपाहीने पास आकर बताया कि सुलह हो गयी। नवाबकी मसनद बूढ़े सआदत अलीको दे दी गयी। वह इस बुढ़ापेमें नवाब वजीर बनेंगे। वजीर अलीको छः लाख सालाना पेन्शन मिलेगी और उन्हें कल ही बनारस चले जाना होगा। बेगमात और सारा लजामात बादमें जायगा।'

'और बहू बेगम?' बूढ़ेने आकाशसे गिरते हुए पूछा।

'उन्होंने कुछ न कहा। वह फैजाबाद ही रहेंगी। उनका खर्च और गुज़ारा मिलता रहेगा। मरे नवाब वजीर अली, बेचारे नाहक पिस गये।'

'सब उसीकी मर्जी है'—कहकर पहरेदारने अपना एक कान पकड़ा और आसमानकी ओर देखा। मुसलमान सिपाही बोला—'बदनसीब हैं बेचारे। खैर, जिसका राज उसकी दुहाई, इसीमें है अपनी कमाई। चलता हूँ, फिर कभी चैनसे बताऊँगा।' सलाम कर वह आगे निकल गया।

—०○—

२

अब आइये काशी

गरीब सआदत अलीको अपनी जर्जर वृद्धावस्थामें जीवनकी चिराकांक्षित लौकिक अभिलाषाओंकी पूर्ति करनेके लिए लखनऊके विलासग्रस्त वातावरणमें छोड़कर अब हम अभागे वजीर अलीके साथ बनारसके उस सूने उजड़े शहरमें चले आते हैं जहाँ अठारह वर्ष पहले कोकिला-वास था। जहाँ पहले हिन्दू राजतंत्र के आरंभ होने पर वेद-व्याकरण, न्याय और तर्ककी गूँज सुनायी पड़ने लगी थी, वहाँ अब अँगरेजी राज-व्यवस्था हो जाने पर एक नयी दुनिया बस रही थी जिसके काशीवासी अभ्यस्त न थे। इन अठारह वर्षोंमें काशी बिलकुल बदल चुकी थी, ठीक वैसे ही जैसे प्राण निकल जानेपर शरीरकी अथवा डालसे पृथक कर दिये जानेपर फूलकी दशा होती है।

शिवालयके ऐतिहासक दुर्ग और मन्दिरको दो भागोंमें विभक्त कर दिया गया था। विभक्त इसलिए किया गया था कि दिल्लीसे भागकर आये हुए बादशाह जहाँदारशाहने काशीमें ही अपना अन्तिम आश्रय बनाया। राजा चेतसिंहके किलेका दक्षिणी भाग उनके रहनेके लिए दिया गया। एक बार अब फिर शिवालय मुहल्ले-

में मुगल और दूसरे मुसलमानोंकी बस्ती आबाद हो गयी। बादशाह जहाँदारशाह शीघ्र ही काल-कवलित हुए। उनकी सम्राज्ञी कुतलक सुलतान बेगम अपने तीन शाहजादोंके साथ शिवालयमें जीवनके शेष दिन बिताने लगीं।

उनके साथ दिल्लीसे बनारस आये हुए मुगलोंमें एक वृद्ध खवास था। नाम था कल्ब अली, लेकिन वह अपनेको कुलीन परिवारका बेग़ बताता और पूछनेपर अपनेको मुगल बेग़ कहता। मुगल बेग़ की एक लड़की थी, युवती, कुलसुम। उसका एक महत्त्वाकांक्षी और उत्साही युवक इज्जत अलीसे निकाह कर मुगल बेग़ अब अपनी वृद्धावस्थाकी गाड़ी ताड़ी और दूसरे नशोंके सहारे खींच रहा था। बादशाह-बेगमसे कुछ तलब मिल जाती; गृहस्थी किसी प्रकार चल जाती थी।

इज्जत अलीके परिवारमें वह, उसकी पत्नी कुलसुम और तरुणी बहिन गौहर, यही तीन प्राणी थे। गौहर षोडशी थी, फुल्ल कमल-सी शुभ्र और मादक। मुहल्लेमें लोग अँगुलियाँ उठाते, फब्तियाँ कसते, नित्य उसका विवाह कर देनेका उलाहना और उपदेश देते, किन्तु इज्जत अली उनके नीति-वचनोंके प्रति न जाने क्यों घोर बहरा बन गया था। निदान घरमें इज्जत अलीके तरुण मित्रोंकी संख्या बढ़ने लगी जिनमें वारिस अली, एक मुगल व्यापारी, प्रधान था। निस्संदेह युवकोंकी यह भीड़ गौहरकी कृपाकी आकांक्षा लिये जुटती जो नित्य बुरी तरह निराश होकर भी दूसरे दिन उसके घर आनेकी लालसा न दबा पानेके कारण बेहयाईका क्रमिक विकास सिद्ध कर रही थी।

झिटपुटा हो चला था। शिवालय मुहल्लेमें चारो ओर सन्नाटा छाने लगा था। गलियाँ सूनी और दूकाने बन्द होने लगी थीं। मुहल्ले-के उस भागमें, जहाँ राजा चेतसिंहके ग्वालियर चले जानेके बाद दिल्लीके

मुगल बादशाह जहाँदारशाह और उसके साथी आ बसे थे; तब भी कुछ न कुछ हल्ला सुनायी पड़ रहा था। मुगलोंके घरोंसे गृहणियों की कड़कती-चीखती आवाजोंके बीच खेलते हुए शरारती लड़कोंके किस्म-किस्मके नारे और गीत सुनायी पड़ते।

मुहल्लेकी छोरपर इज्जत अलीका घर था। घर कच्चा-पक्का दोनों था और बड़ा था। मकान दो-मंजिला था जो नीचे लखौरी ईंटका बना था और ऊपर खपरैलसे छाया गया था। घरका घेरा काफी बड़ा था। चारो ओर ऊँची दीवार थी जिसके भीतर ढाई-तीन बीघेका मैदान था। घरके अतिरिक्त शेष भागपर खेत और पेड़ लगे थे। पेड़ोंमें इमली, नीम और आमके पेड़ थे। दरवाजेके पास दो पेड़ ताड़के थे। खेतमें मामूली फसली तरकारियाँ और कुछ खेती-बारी हो जाती।

घरमें सन्नाटा छाया था, चारो ओर शान्ति। ऐसा लगता मानो भीतर कोई हो ही नहीं। परन्तु बात ऐसी न थी। भीतर खेतों के पीछे नीबके एक पेड़के पास दो युवतियाँ घास पर बैठी थीं। युवतियाँ समवयस्का थीं। उनकी पोशाक चमकीली और भड़कीली थी। रेशमी पायजामें और आबेरवाँके काम किये कुरते थे जो उनके शरीरपर खूब फब रहे थे। एक युवती काली चादर ओढ़े थी जिसमें सुनहले सितारे जड़े थे; दूसरीकी चादर हरी छींटकी थी। काली चादरवाली युवतीकी आयु कठिनतासे अठारह वर्ष और हरी छींटवालीकी बीस वर्षकी थी। दोनों गौर वर्णकी सुन्दरी थीं।

देखनेमें दोनों मुगलानी दिखलायी पड़तीं। निकटसे देखनेपर दोनोंका सौन्दर्य स्पष्ट दिखायी देता। उनमें छोटीका मुँह गोल, आँखें बड़ी-बड़ी और पैनी, नाक लम्बी, ओठ पतले और कपोल उभरे थे। उसके बाल घने काले, चिकने थे जो पीठपर एक वेणीमें लटक रहे थे। दूसरीका मुँह कुछ लम्बा और नाक चौड़ी थी।

इसने बालोंका जूड़ा बाँध रखा था। देखनेमें छोटी गम्भीर और बड़ी चंचल लगती। यहाँ एकान्तमें बैठकर दोनों सायंकालिक वायुके झकारोंसे दिनकी गर्मीकी शान्ति मिटा रही थीं। उनमें छोटी इज्जत अलीकी बहिन गौहर और बड़ी उसकी पत्नी कुलसुम थी।

'कल यह घर छूट जायगा। इस समय तक तो हमलोग कबीर-चौरामें नवाब साहबकी हवेलीमें रहेंगे'—कुलसुमने कहा। गौहरने उसकी बातका कुछ उत्तर न दिया। वह चुपचाप सामनेके आम और नीमके दोनों वृक्षोंको देख रही थी जिन्हें उसने पानी दे-देकर सींचा और बड़ा किया था।

'तुम्हारे भइया वहीं गये हैं। देखो कब तक लौटते हैं'—कुलसुम ने बात जारी रखी, किन्तु गौहरने फिर कोई उत्तर न दिया। उसे बातमें रस न लेते देखकर कुलसुम बोली—'मरा बेचारा वारिस जो तुम्हारे नामकी माला जपा करता था। अब जाकर लड़े नवाब साहबसे।'

गौहर लजा गयी। उसकी छाती वेग से चलती साँसों के कारण फूल उठी। उसने बात बदलनेके लिए भाभीसे कहा—'भाई साहबको गये घण्टों हो गये, अभीतक वह लौटे नहीं। लगता है तुम्हारे अब्बासे मिलने चले गये।'

'अब्बासे मिलने! शायद गये हों'—अचानक कुलसुमको अपने पिताके स्वभावका स्मरण हो आया। उसकी नशेबाज प्रवृत्तिका ख्यालकर बोली—'नहीं, वह नहीं गये होंगे, दोनों जनोंमें पटती जो नहीं।'

बात बहुत कुछ ठीक थी। इज्जत अली श्वसुरके घर गया था, परन्तु उसके न मिलनेपर अपने घर लौटा आ रहा था। वास्तवमें कल्ब अलीका नशा चटखा था। वह गया था ताड़ीखाने। वहीं उसे देर हो गयी।

ताड़ीखानेसे कल्ब अली निकलना ही चाहता था कि दुर्गाकुण्डकी ओर उसे कुछ कोलाहल सुनायी पड़ा। उसने ठेकेदारके पैसे चुकाया और उठ रहा था कि अन्य ताड़ी पीनेवाले अचानक लभनी-पुरवा और नमकीनके दोने फेंक खड़े हो गये। जिसे जिधर राह मिला, उसी राह नौ-दो ग्यारह हुआ। क्षण भरमें सभी फुर्र हो गये....।

कल्ब अली बाहर आया। लोगोंको जान लेकर भागते देख वह भी घबरा गया। दरवाजेपर पहुँचते ही सैकड़ों मनुष्योंके नालदार जूतों-की चरमराती आवाज सड़ककी छातीपर टकराती बन्दूककी गोलियों-सी कानोंमें जा लगी। चौंककर जो उसने ताड़के वृक्षोंके पार सड़क-पर देखा तो उसके देवता कूच कर गये। ताड़ी पिये उसे अधिक देर न हुई थी, परन्तु ताड़ीकी मादकता उसकी नसोंमें संचरित हो गुदगुदी स्फुरित कर रही थी। पेटकी अँतड़ियाँ भीतर फैल रही थीं और उनके बीच मानो एक सरीसृप द्रुतगतिसे नीचे खसकता बढ़ रहा था। मस्तिष्कमें हिलोरें उठ रही थीं जिनमें उसकी चेतना थपेड़ खाकर डूबती उतराती। पैर काँपने लगे थे। ताड़ी आज खट्टी हो चुकी थी और पीते समय ही उसने दूकानदारको डाँटा था। किन्तु सामनेका दृश्य देखते ही सारा नशा काफूर हो गया। आँखोंके सामने तितलियाँ नाच उठीं। एक झटका-सा लगा और क्षण भरके लिए पीछे घूमकर उसने एक बार फिर वही दृश्य देखा....और जोरोंसे घरकी ओर भागा।

कीनारामके स्थलमें केदारू साव बैठा किसीसे बातें कर रहा था। वह नगरके सोनारपुर मुहल्लेका हलवाई था। कल्ब अलीको इस प्रकार बदहवाश भागते देखा तो नित्यकी भाँति हँसकर उच्च स्वरमें चिढ़ाया—कल्ब अली जमाँदार !

अन्य दिन होता तो कल्ब अली झिझककर खड़ा हो जाता, भौंहें चढ़ जातीं। केदारूको दो-चार सौ गालियाँ सुनाता और अपना नाम 'मुगल बेग़' बताकर बादशाह बाबरका खानदानी सरदार कहता।

पर आज उसके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ रही थीं। उसने पीछेकी ओर हाथसे संकेत किया, मानों कहना चाहता हो—'पीछे देखो' और लटकते ढीले इजारबन्दको दोनों हाथों सँभालता घरकी ओर भागा।

पूषका महीना था। पूष उतरने और माघ चढ़नेमें तीन-चार दिनोंकी कसर थी। सर्दी भीषण रूप धारण कर चुकी थी। शरीरको कँपा देने और चेहरे सुखा देनेवाली हवा बह रही थी। दिन चढ़ आया था, पर आदमी बहुत कम आते-जाते दिखायी पड़ते थे। कल्ब अलीने सड़क छोड़ पगडण्डीकी राह ली। शिवालयसे भदैनीका रास्ता नालों और पेड़ोंसे भरा भयावना लग रहा था। बीच-बीचमें ऊँचे ढूहे और कहीं-कहीं कच्चे मकान दिखायी पड़ते, किन्तु आदमी एक भी न दिखलायी पड़ता। कल्ब अली कीनारामके स्थलके पश्चिम ओरसे चक्कर लगाता पुरानी हवेलीके निकट आया। यहाँ बहुतसे भूमिहार, ब्राह्मण पुरोहित तथा अन्य सामन्त खड़े बातें कर रहे थे। उसने उनसे कुछ न कहा और सीधा घर भागा।

दरवाजा खुलनेकी आहट मिली और उसीके साथ 'या मेरे अल्लाह'की एक करुण चीत्कार घरकी बन्द वायुमें उड़ती सुनायी पड़ी। धम्मसे कोई गिरा और कबीरचौरासे लौटकर घर आये इज्जत अलीने ऊपरकी मंजिलसे कड़कर आवाज लगायी—'कौन?'

'कयामत और कौन?'—उसी कराहती आवाजने कहा।

'आप हैं? साहब ऐसे क्यों बोल रहे हैं जैसे हलाल किया जानेवाला बकरा....? उपर क्यों नहीं आते?'—इज्जत अलीने वृद्ध श्वसुरसे पूछा जो आज नशेकी उड़ानमें अचानक लड़की और दामाद-का कुशल-क्षेम लेने चला आया था।

'ऊपर क्या आऊँ, सिर फूट गया है....। मालूम होता है दुनियामें रोशनी न रही....।'

'कैसे, क्या हुआ ?'—घबराकर बड़बड़ाता इज्जत नीचे उतरा। उसीके पीछे दोनों नवयुवतियाँ भी उतरीं। उन्होंने कल्वको घेर लिया। देखा, वह जमीन पर पड़ा छटपटा रहा था। खून जमीन पर फैल रहा था और उससे लथपथ रक्त-रंजित कल्व घरके फर्श पर पड़ा तीव्र वेदनासे कराह रहा था। पिताको आहत देखकर कुलसुम तड़प उठी। उसने बापको पकड़ लिया। गौहर दौड़कर कपड़ा और पानी ले आयी।

'यह क्या कर आये ?'—इज्जत अलीका शंकाकुल मन एक साथ क्रोध और करुणासे आन्दोलित हो उठा।

'फिर कभी कहूँगा। अभी तो जरा बाहर देखो''''।'

'क्या है ?'—कहकर कुतूहल न रोक पानेसे उत्सुक युवतियोंने सिर निकालकर देखा। ज्ञात हुआ मानो निरभ्र तारा रहित शून्य और स्वच्छ आकाशमें दो-दो चन्द्रमा एक साथ उदय हो गये हों। युवतियोंने अपनी चंचल बड़ी-बड़ी आँखोंको फैलाकर देखा और फिर सिर खींच लिया।

इज्जत अलीका रक्त नाच उठा। तलवार उठाया और सड़क पर निकल गया। देखा, मुहल्लेवाले घरसे बाहर आकर पटरियों और रास्ते पर खड़े थे। सब एक ही दिशामें देख रहे थे। उसी ओर उसने भी देखा। शस्त्रधारी सैनिकोंकी अटूट पंक्ति। वे गोरी फौजके सिपाही थे। शहरमें शायद गश्त लगा रहे थे। इज्जत अली कुछ समझकर आगे बढ़ा।

'यह अठारहवाँ वर्ष है न दद्दा ?'

'किस बातके ?'

'अरे इस फिरंगी राजके और किसके''''?'

'अठारहवाँ वर्ष''''। उसने कुछ-कुछ सोचते हुए गिनकर बताया—'ठीक तो है, उस साल तू चार सालका बच्चा था। तेरा मूड़न नहीं हुआ था। तीसरेमें नहीं हुआ, सो पाँचवेंमें करनेकी तै हुई। उसी साल तो''''।'

'कुछ होगा जरूर। पृथ्वी खून माँगती है।'

पृथ्वी खून माँगती है! लोगोंमें एक सिहरन-सी दौड़ उठी। बूढ़ेने छाती सीधी करते हुए कहा—'कलियुगमें जब राज बदलता है तो पृथ्वी अपना हिस्सा माँगती है। मलेच्छका राज है। नहीं क्या इस प्रकार सआदत अली गायब हो जाते?'

'यह भी गायब होना है? तुम इसे गायब होना कहते हो भइया! या तो यह प्रेत-लीला है या दैवी कोप। तीसरा हो नहीं सकता। आज सात दिन हो गये। मिर्जा सआदत अली अपनी कोठीसे ही लापता हैं। कोठीपर कम्पनीकी फौजका पहरा है।'

'आखिर हुआ क्या?'

'आजसे सात दिन पहलेकी शामतक वह यहाँ थे। नमाज पढ़नेके बाद कुछ देरतक दीवानखानेमें रहे। नरायनपुर और कुण्डाके कुछ भूमिहार उनसे मिलने गये थे। वह तो कहो रेजिडेण्ट भी सौभाग्यवश दुर्गाकुण्डवाली कोठीमें आया था, नहीं तो क्या यह खबर उड़ाते देर लगती कि भूमिहारोंने ही नवाब साहबको उड़ा दिया। और क्या···भूमिहारोंका तो नाम बदनाम है''''।'

'फिर''''।'

'उधर वह रेजिडेण्ट कण्ट्रूमेन गया, इधर नवाब साहब लापता! कमरेसे ही अदृश्य हो गये। दरवाजेपर पहरेदार तैनात, फाटकपर सन्तरी। पोशाक ज्योंकी त्यों धरी है, बेगम और शाहजादे अलग रो रहे हैं। फकीर कहते हैं, उन्हें फरिश्ते उठा ले गये।'

'भइया सच कहूँ'''इन मुसलमानोंका भी कुछ थाह-पता नहीं चलता। हाँ-हाँ, मैं तो साफ कहता हूँ बेलौस। खरी लगे चाहे खोटी। दाल में कुछ काला है जरूर।'

"अभागा है! सआदत अली सचमुच अभागा है। बचपनमें माँ मर गयी, बहू बेगम ने पाला-पोसा, तो भाई दुश्मन बन बैठा। बाप का मरना क्या, आफतोंके बादल फट पड़े। जवानीमें लखनऊ छोड़ बनारस भागना पड़ा। तबसे तमाम उम्र भिखारियों-सी कटी। बुढ़ापेमें कब्रका गड्ढा नजदीक आते ही आप गायब हो गये। इसमें जरूर कुछ चाल है। बुड्ढेकी, पता नहीं, अभी क्या-क्या गति बाकी है। है अभागा ही··· ।"

'अरे दद्दा कुछ सुन्यौ। शहरमें एक नये नवाब आये हैं लखनऊ से। कबीरचौरामें रहत हैं कहीं। सुनित है कि कम्पनी ओन्हें गद्दी से उतार दिहिस है··· ।'

'तुम कहते हो···· बाबू जगतसिंहकी कोठीमें आज गया था'—बूढ़े भूमिहार चौधरीने कहा— 'वहाँ पता चला है कि नवाब साहब अब बनारसमें ही रहेंगे। इन्हें कम्पनीकी सरकारसे दस लाख रुपया खर्चा मिला करेगा।'

'दस लाख खर्चा! तब ले न काशीमें बैठकर मजा। मगर दद्दा, तब लखनऊमें कौन नवाब हुएन। आखिर एनके बदले कोई न कोई नवाब होइबै करिहिन।'

'यह हमें नहीं मालूम। मगर दस लाख खर्चाकी बात सही है। चलो नवाबके आनेसे कुछ लोगोंकी रोजी चल जायगी, कुछको नौकरी मिल जायगी··· ।'

परन्तु इज्जत अलीका ध्यान उधर न था। उसका मन रह-रहकर नवाब वजीर अलीकी उम्र, नवयौवन और उसके विलासकी बात यादकर कहीं दूर उड़ने लगा था। अब अवसर आया है। गौहर का ब्याह अब हो सकता है जिसके लिए मैं इतने दिनों रुका था। उसके योग्य पात्र यह तरुण नवाब ही है। इससे गौहरका जीवन तो सुखी होगा ही, मेरा भी भाग्योत्कर्ष हो सकता है। तब लगाऊँ यहीं दाँव? ठीक है, जीवन भी तो एक जूआ है; कभी हार, कभी जीत, यही तो जिन्दगीकी रीति चली आयी है।

जब वह घर की ओर चला तो उसके कानों में नवाब की बातें रह-रहकर गूँजने लगीं—'आया कीजिये; मुझे शेरो-सुखनका बड़ा शौक है। कुछ लिख भी लेता हूँ। आपके आने से दिल बहल जायगा।'

मुझे जरूर इस अवसर से लाभ उठाना चाहिये, लेकिन आतुर होकर नहीं। अपनी प्रतिष्ठा बनाकर।

—o o—

३

इस आगका क्या हो ?

रात प्रायः बीत चुकी थी। पौ फटनेमें घण्टे भरकी देर थी। चारों ओर भयानक सन्नाटा छाया था। आकाशमें भोरके तारे उषाकी आभामें विलीन होनेके पूर्व तीव्र ज्योतिसे जगमगा रहे थे। शीतल वायुके झोंके वरुणा नदीकी पतली कमरसे लिपटते, मदमाते, झूमते चले आ रहे थे। चैत्र मासका सुरभित समीर! दूर कहीं कोयल पगली हो कूक उठी थी।

उसी समय वरुणा नदीमें कुछ आहट-सी लगी और दूरसे आती हुई एक भयंकर ध्वनि सुनायी पड़ी—कौन ? पलभरके लिए एकान्त गूँज उठा जैसे शून्य मन्दिरके प्रांगणमें बँधा अष्टधातुका घण्टा एक बार बजकर वातायनमें ध्वनिकी लहरियाँ बिखेर देता है, उसी प्रकार अँधेरेमें जाग्रत किसी प्रहरीकी सिंह-जिज्ञासा प्रतिध्वनित हो काँप उठी। आसमान थरथरा उठा। वायु फिर उसी प्रकार मौन हो गयी।

एक नाव नदीके किनारे लगी। वरुणामें जल कम था तथा धारा और भी मन्द, किन्तु पाट चौड़ी थी। वरुणा बाढ़में उग्र रूप धारण कर लेती, किन्तु अभी भी उसका जल कम न हुआ था। तटपर रुकते

ही उस नावसे एक सन्यासी उतरा। उसे उतारकर माँझी नाव लेकर चला गया। तारोंके क्षीण प्रकाशमें संन्यासीकी मूर्ति झिलमिला उठी। पैरोंमें खड़ाऊँ, कमरमें कोपीन, सिरपर बढ़ी हुई जटाएँ बाँधे, दोनों बाहें ऊपर उठीं, विशाल शरीर। संन्यासीने एक बार चारो ओर देखा और फिर तटसे ऊपर दक्षिण दिशामें चढ़कर शहरकी ओर बढ़े। कंकरीली भूमिपर खड़ाउँकी एड़ी पड़कर कठोर स्वरमें अपनी आहटका प्रचार कर रही थी जिसे रात्रिका सन्नाटा अधिक प्रबल बना कर पवन-लहरियोंपर तैराकर चारो ओर बिखेर देता। बन्दूककी गोलियोंके दागने-सी वह, आवाज रह-रहकर सुनायी पड़ी……खट् खट् खट्। एक बार, दो बार अनवरत रूपसे वही खट्-खट्।

फिर उसी दिशासे गरजती हुई आवाज बिजलीकी भाँति कड़क उठी—'कौन आ रहा है ?'

संन्यासीने कुछ उत्तर न दिया। ऊपर बढ़े। दस-पाँच गज चले होंगे कि जटाजूटधारी श्वेत वस्त्र पहने एक लम्बा मनुष्य आ खड़ा हुआ। यद्यपि धुँधली रोशनीमें उसकी आयु स्पष्ट न हो सकी, फिर भी पता चलता था कि वह यौवनावस्था पार कर रहा था। वह व्यक्ति कमरमें सफेद रंगका गमछा लपेटे था। ऊपर सारा शरीर खुला था। तारोंकी मन्द होती ज्योतिमें भी उसका स्वस्थ शरीर अपने गठनपर गर्वसे मुस्कुरा रहा था। विशाल वक्ष, चौड़े कन्धे, पुष्ट भुजदण्ड और मांसल अंग उसे प्राचीन योद्धाका रूप दे रहे थे। सिरपर जटा, कंधेमें यज्ञोपवीत उसके संस्कारके साक्षी थे।

सन्यासीने पल भर उसकी ओर अपलक नेत्रोंसे देखा और कुछ ठहरकर पूछा—'कौन हैं आप ?'

वह व्यक्ति हँस पड़ा। रात्रिकी निविड़ नीरवताका मर्म विदीर्ण कर उसका अट्टहास गूँज उठा—'कौन हूँ मैं ? कौन हूँ……। यही तो सब नहीं जानते। किसीने पूछा भी नहीं आज तक। आप वह पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने मेरा परिचय पूछा है। हहः हः हः……।' वह फिर उसी

निर्भयता और मस्तीसे खिलखिला उठा मानों सन्यासीका उपहास कर रहा हो।

'आपका नाम क्या है?' सन्यासीने पूछा।

'नाम? क्या था, क्या हो गया। वह सब जाने दीजिये आज तो केवल भंगड़ हूँ, भाँग छानता हूँ। वैतरनीपर पड़ा रहता हूँ....।' वह कुछ-कुछ गम्भीर हो उठा। मानो शीत-कालकी संध्यामें अचानक आकाशकी छोरपर कुछ बादलके टुकड़े बिखेर प्रकृति गंभीर हो जाती है, वे बादल जिनके हृदय उपल और अशनिके बने होते हैं। उन्हींकी भाँति विलोड़ित हो मार्मिक स्वरमें वह बोल उठा—'भंगड़ भिक्षुक....।'

'भिक्षुक? तुम भिक्षा माँगते हो? पेटके लिए?'

'माँगा तो कभी नहीं। उस दिन भी जब संसारकी अमूल्य निधि चरणोंपर आ गिरी थी, तब भी उसे ठोकर मार दी और काशी चला आया। शहरमें लोग रहते हैं, अच्छे-बुरे सभी हैं। कुछ पहुँचा देते हैं। नहीं यह पताल फोड़ कुँआ है ही। इसका अनन्त जल सारे संसारके लिए भी कम न होगा। किन्तु आप, आप कौन हैं? आप अपना परिचय दें। रात बीत रही है। इस वेला इस ओर आनेका साहस मनुष्य नहीं कर सकता। आप देवता हैं, या कोई वीर....।' भंगड़ चकित-सा उस आगन्तुक सन्यासीके मुँहकी ओर देखने लगा जिसके नेत्रोंसे एक तीव्र दिव्य ज्योति विभासित हो चतुर्दिक विकीर्ण हो रही थी।

'भंगड़! तुम इस वैतरणीपर क्यों रहते हो? काशीमें एकसे एक सुन्दर स्थल हैं, राजाओंकी कोठियाँ हैं, मठ हैं, धर्मशालाएँ हैं। फिर भी तुम इस निर्जन बीहड़ स्थानमें आ बसे जहाँ.... ।'

'भगवन्, सब स्वर्गमें ही जा बसेंगे तो वहाँ स्थान भी चाहिये? मुझे वैतरिणी ही सही। यही मेरा स्वर्ग है....! उन महलों और कोठियों-में सजीव नरक बजबजा रहा है। उसने फिर उसी भाँति जिज्ञासा भरे स्वरमें पूछा—'और आप?'

संन्यासी मुस्कुरा उठे—'मैं हूँ रमता योगी, परिव्राजक। मेरे छिनेरु

मुझे 'पुराणपुरी कहा था और उसी नामसे पुकारा जाने लगा। बच-पनका वह नाम एक दिन हँसीमें हजार विरोधोंको उदरस्थकर किस प्रकार संन्यासमें बदल गया, मुझे स्वयं भी आश्चर्य हुआ था····।'

पुराणपुरी ! भंगड़ चौंक उठा। उसकी सारी हेकड़ी जाती रही। जड़ी की एक सूखी, निर्जीव और ऐंठी हुई लुंजपुज टुकड़ीके घ्राण मात्रसे भयंकरसे भयंकर विषधर फणि जिस प्रकार रोष पीकर शान्त हो जाता है, सहम जाता है, वैसे ही भंगड़ काँप उठा।

'क्षमा करें स्वामी !' उसने संन्यासीके चरण पकड़ लिये—'केवल नाम सुना था, देखा न था। जिसका नाम धरतीके एक छोरसे दूसरे छोर तक सुनता आया, आज उनके दर्शनसे जीवन धन्य हो गया। मुझ-सा हताश और अभागा कौन हो सकता है देव ! ज्वालामुखीकी धधकती आगको छिपाकर काशी आया। आकर युवकोंका संघटन किया, उन्हें अस्त्र-विद्या सिखाता हूँ। अवकाश होनेपर कुछ योग भी साध लेता हूँ। किंतु मिट न सकी वह अशान्ति, बुझ न सकी वह आग।'

पुराणपुरी पलभर तक चुप रहे। अचानक बोल उठे—'भंगड़, समस्त अविद्याका मूल क्या है, जानते हो ? वही, जो तुम्हारे हृदयमें घूम रही है। मनमें, बुद्धिमें और आँखोंके भीतर जो आकर जम चुकी है, वही तो माया है। घबड़ाओ नहीं। वह भी अशांत है, तुमसे भेंट होगी। किन्तु सावधान भंगड़ ! पथिक मार्गमें आगे देखता है, मुड़कर पीछे नहीं। भेंट होनेपर उलझना नहीं। आज इतना ही कहूँगा।'

'नहीं-नहीं, कुछ और। इस प्रकार अचानक हृदयमें आंदोलनकी आग सुलग उठनेपर आप न जायँ।'

'तुम्हारा अनुभव तुम्हें धोखा दे रहा है भंगड़ ! स्त्री एक छलना है जो पुरुषको कर्मक्षेत्रमें दिग्भ्रान्त कर मनमाना नाच नचाती है और पथभ्रान्त पथिक आतुर हो कामी श्वान-सा उसके पीछे लगा रहता है।'

भंगड़ कुछ बोला तो नहीं, किन्तु लगा जैसे उसके भीतर एक भीषण द्वंद्व चल रहा हो जिसे वह बलपूर्वक दबाये हो। पुराणपुरि

अत्यन्त गंभीर थे। बोले—'कायर, पुरुष होकर कातर होता है। यह स्त्रियों और कापुरुषों-सी दुर्बलता कहाँसे आ गयी?' संन्यासीने घृणासे मुँह फेर लिया। उनका जरा-जीर्ण स्वर व्यथासिक्त हो उठा।

भंगड़के रोम-रोम जल उठे। यदि किसी दूसरेने यह व्यंग किया होता तो वह उसका खून पी जाता, उसकी स्वाभाविक वृत्तियाँ सजग हो उठीं और दर्पमण्डित स्वरसे बोला—'आजतक किसीको मुझे कापुरुष और स्त्री कहनेका साहस न हुआ था। होता भी तो उसकी जीभ निकाल लेनेकी शक्ति भंगड़की बाहोंमें है। खैर, आजकल जो बवण्डर उठ रहा है उसके लिए आप मेरा मार्ग बतायें?'

'बवंडर! यह भी बवण्डर है! अठारह वर्ष बीत गये, इसी काशीमें एक तूफान आया था और आग लगाकर चला गया। काशी तबसे जल रही है पागल, तबसे। हिंदू-कल्पनाका दीपक बुझ चुका। वजीर अली—दंभी है, मूर्ख। फिर भी उसका साथ देना। संन्यास लेकर भी राज-काजसे विरक्त न हो सका। जानते हो क्यों?'

भंगड़का मन पुराणपुरीके संन्यासी होकर भी राजनीतिसे विरक्त न होनेकी बात न सोचकर सहसा वजीर अलीपर दौड़ गया। वजीर-अली, अवधका पदच्युत नवाब, मृत आसफुद्दौलाका बेटा, जो कुछ दिनोंसे आकर शहर बनारसमें रहने लगा है। लोग कहते हैं वह बड़ा अभागा है। साल भर गद्दीपर बैठकर भी उतार दिया गया। हाथोंमें आयी राज्यलक्ष्मी रूठकर चली गयीं। उसका साथ देनेके लिए....!

पुराणपुरी उसके मनोभाव ताड़ गये। बोले—'दुखी दुखीसे ही मिलकर सुखी होता है। सुख दुःखको अनुगृहीत नहीं कर सकता। दुखका रेचन दुख ही है। फिर जानते हो दुःख है क्या? सुख एक जड़ता है और दुःख प्रगति। दुःख जीवनके लिए प्रेरणा है और सुख अभिशाप। दुःख मनुष्यको जगतके धरातलपर उतारकर मनुष्य बनाता है और सुख उसे दूर कल्पना लोकमें उड़ा ले जाता है जहाँ वह यह विचार भी भूल जाता है कि वह भी मनुष्य ही है।'

भंगड़ चकित हो चुपचाप सुनता रह गया। मन्त्रमुग्ध पशुकी

भाँति वह निर्निमेष नेत्रोंसे उस अद्भुत साधुकी ओर देखता रह गया जिसपर उस क्रोधी पागलके प्रलापका कोई प्रभाव न पड़ रहा था। पुराणपुरीने फिर कहा—'सिर उठाओ और देखो····दक्षिण दिशाकी ओर ऊपर आकाशमें····।'

भंगड़ कुछ कह न सका। पुराणपुरीने जैसा कहा था वैसे ही बालकों-सा सिर घुमाकर चुपचाप देखने लगा। पुराणपुरी मौन हो गये और भंगड़ मानो अटल समाधिमें निर्लिप्त योगीकी भाँति महाव्रत साधे मूक हो गया, प्रस्तर। आखें एकटक दक्षिण दिशाके निरभ्र आकाशमें लगी थीं। उसकी जिह्वा कुछ कह तो न सकी, किन्तु उसे स्पष्ट विदित हुआ मानो सारी काशी जल रही थी। नीचे पृथ्वीके तलसे लेकर ऊपर आकाशकी सर्वोच्च ऊँचाईतक आगकी भयंकर लपटें विषधर भुजंगोंकी जिह्वाओंकी भाँति लपलपातीं बढ़ रही थी। सुन्दर भवनोंके उच्च शिखर, अट्टालिकाएँ, मन्दिर, प्रासाद सब भस्म हो रहे थे।

इतना ही नहीं। उसने और भी देखा····! उत्तरकी ओरसे जलती, लपटोंमें हाहाकार करती एक नारी-मूर्ति विकट रोदन करती उसी ओर चली गयी जिधर दक्षिण आकाशमें काशी जल रही थी।

भयभीत हो भंगड़ने आँखें बन्द कर लीं।

'आँखें खोलो। डरो मत। जानते हो भंगड़, कलियुग है ? पुराणपुरीने शान्त सस्मित वाणीसे कहा। किन्तु स्तंभित भंगड़ कुछ बोल न सका। उसका जड़ कण्ठ हिल न सका। उसे विश्वास न हो पाया कि उसने जो कुछ देखा, वह सत्य था अथवा योगीका चमत्कार। वह कुछ निर्णय न कर सका। उसका शंकाकुल मन अनेक भावनाओंका ताना-बाना बुन रहा था कि योगीने फिर कहा—'यह आग बुझेगी नहीं।'

'तब····तब क्या होगा ?' भंगड़ने नशा खाये हुए व्यक्तिसे लड़खड़ाते स्वरमें पूछा।

'मर सकते हो ? पुरुषोंकी भाँति, युद्धमें जूझकर····? साधुके

कण्ठमें कठोरता आ गयी। उनकी बाहुकी नसें मानो चटख उठीं। भौंहें पलभरके लिए हिलीं और होंठ अद्भुत मुद्रा बनाते हुए हिल गये।

'मर सकता हूँ''''मरने ही तो आया हूँ। काश्यां मरणां मुक्ति।' उसने मन्त्रमुग्ध होकर कहा—'आज्ञा ?'

'तो मरनेके लिए जीओ; दूसरोंके जीवनके लिए मरो। अभी समय नहीं आया है।''''पुराणपुरी ठहर गये।

'फिर कब ?' चौंककर भंगड़ने पूछा।

'बताऊँगा। देश भरपर लाल मुँहवाले फिरंगियोंका राज्य छा गया। गंगासागर गया था। वहाँसे रास्ते भर देखता आया''''। एक लहर दौड़ गयी है ऋषिके शापकी भाँति। सब मन्त्र-विजड़ित मुग्ध भुजंगसे निष्क्रिय हो शान्त पड़े हैं। किन्तु यह सन्नाटा भावी आँधीका सूचक है। सावधान भंगड़! तुम्हें मरना होगा।'

'मैं तैयार हूँ''''स्वामी!'—भंगड़ने उसी भाँति अटल विश्वाससे उत्तर दिया।

'तो उस शंख-ध्वनिकी प्रतीक्षा करो जब''''।'

भंगड़ घबरा उठा। इस विचित्र साधुकी एक-एक बात उसे चँचलकर रही थी। सन्देह भरे स्वरमें पूछा—'भगवन्! जब आप भावीको देख लेते हैं तो सर्वनाशको निश्चित जानकर भी चेतसिंहका साथ क्यों दिया ? जिसका विनाश ध्रुव हो, आपने उसका पक्ष ले भविष्यको टालनेका व्यर्थ प्रयास क्यों किया ? मेरी समझमें कुछ नहीं आता।'

'विनाश और सृजन, प्रकृतिकी लीला ही तो। इन्हीं दोनों हाथोंसे विधाता विश्व-कन्दुकको उछालता रहता है। ज्ञानीकी आँखसे देखो। विनाश सृजनका आधार और परिणति दोनों है। भवितव्यता-को मनुष्य टाल नहीं सकता, इसलिए क्या वह अकर्मण्य बन जाय ? फिर तो सभी भाग्यवादी हाथपर हाथ धरे निठल्ले हो जायँगे। तुम्हें क्या गीताका पाठ स्मरण नहीं ?'—पुराणपुरी कहते जा रहे थे।

भंगड़ चुपचाप उनकी ओर देखता रह गया। योगीने फिर कहा—

'चेतसिंहने जो किया उसका महत्त्व राजनीतिज्ञ जानते हैं, विचारशील समझते हैं। उनका विनाश जानकर भी मैंने उनका साथ दिया। जानते हो क्यों ? कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचनः। भविष्य बदल नहीं सकते तो उसे नम्र तो कर ही सकते हो भंगड़। श्रीकृष्ण दुर्योधनकी राज सभामें युधिष्ठिरका दूत बनकर जाते समय उसके विनाशका मर्म नहीं जानते थे क्या ? किन्तु फिर भी गये····। क्यों ? उसी सत्यका एकनिष्ठ व्रत लेकर मैंने भी स्वदेशकी सेवा करनेका संकल्प लिया था। किन्तु सफल न हो सका। अठारह वर्ष पूर्वका वह झंझावात····सभी उड़ गये····एक मैं बच गय····अकेला सबका प्रतिशोध लेने····।'

भंगड़ प्रतिवाद न कर सका। साधुने भी कुछ आगे कहा नहीं। शान्त हो गये। उनके आशीर्वादके मूक वचन सौरभ-तरंगोंपर हिल्लोलित हो चारो ओर बिखर गये। मुँह फेरा और दूसरी दिशामें चले गये, मस्तिष्कमें उठी भावनाकी भाँति जो दूसरी कल्पनाओंके पीछे अचानक लुप्त हो जाती है। पुराणपुरी देखते-देखते कुँजोंमें छिप गये। उनकी खड़ाऊँ अब भी कंकरीली भूमिपर जोरोंसे आवाज कर रही थी। भंगड़ अविचलित खड़ा उसी राहमें देखता रह गया। थोड़ी दूर बाद दूरागत पवन-लहरियोंपर संगीतकी एक मधुर झंकार सुनायी पड़ी—

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे····हे नाथ नारायण वासुदेव····

नारायण वासुदेव····नारायण वासुदेव····। वरुणाकी तरंगायित तीव्र जलधारा मानो निनाद करती चिल्ला उठी—नारायण वासुदेव····! आसपासके वृक्षों, एकान्त और शान्त वातावरणने गूँजकर दोहराया—हे नाथ नारायण वासुदेव....! भंगड़का शरीर रोमाञ्चित हो उठा। उसने एक बार फिर दक्षिण दिशामें देखा। पूर्वकी लाली हलकी रेखाएँ फेंक व्योममें लजाती हुई उतर रही थी। वह निर्णय न कर सका—अभी क्षण भर पूर्व उसने आकाशमें जो जलती लपटें देखी थीं, वे सत्य थीं या साधुका योगजनित चमत्कार ?

बड़ी देरतक वह उधेड़बुनमें पड़ा रहा। कुछ निश्चय न कर पानेपर चुपचाप उस रास्तेकी ओर देखता रह गया जिधर जाकर पुराणपुरी अदृश्य हो गये थे। हाँ, उनके संगीतकी मार्मिक स्वर-लहरी अब भी भंगड़के कानोंकी राह जाकर उसका हृदय विलोड़ित कर रही थी— हे नाथ नारायण वासुदेव·····।

वह चुपचाप कुटियापर लौट आया। पास ही रखी चौकीपर बैठ रहा था कि अखाड़ेमें आये किसी चेलेने सील-लोढ़िया उठाते हुए गुहार लगायी—अलख ! खोल दे पलक, देख दुनियाकी झलक।'

भंगड़ने सन्तोषको साँस ली और काशीवासीके लिए बैठ गया।

—००—

४

मस्जिदकी छायामें

पक्के मुहल्लेसे एक जनाना पालकी विश्वनाथ मंदिरकी ओर जा रही थी। पालकीकी दोनों खिड़कियोंपर रंगीन पर्दे पड़े थे। कहाँर मन्द-गतिसे आवाज देते मस्तीसे चल रहे थे। गलियोंमें सन्नाटा छाया था। लोग कम आ-जा रहे थे। यद्यपि साँझ नहीं हुई थी, फिर भी सन्नाटा छाने लगा था। चैतकी पुरवाई गंगा-पारसे इठलाती आकर गलियोंमें छितरा रही थी। पालकीमें एक युवती बैठी थी जो कभी-कभी सिर निकालकर गलीमें लगी दूकानें और उनकी सजावट देख लेती, फिर कभी पीछेकी ओर ताकती। पालकी हिलनेपर कँहार चिल्ला उठते—संभलकर''''करवट''''भइया''''धीरेसे''''। युवती सँभल-कर सिर भीतर कर लेती और परदे गिर जाते।

ब्रह्मनालसे चलकर पालकी ज्ञानवापीपर आकर रुक गयी। कँहार आगे बढ़ना न चाहते थे। एक सघन पीपलके वृक्ष-तले पालकी उतार-कर धर दिया और दूर बैठकर सुस्ताने लगे। युवतीने फिर सिर निकालकर देखा, आस-पास कोई न था। घरवाले अभी आये न थे। उसने कुछ आश्वस्त हो सिर निकाला, मानों एक ही दृष्टिमें उस स्थानकी

सारी भौगोलिक स्थितिका अध्ययन कर लेना चाहती, या एक ही निगाहमें सब दृश्य पी लेना चाहती हो।

सामने ही आलमगीरी मस्जिद खड़ी थी अपने विशाल गुम्बजोंका शीश गर्वसे उठाये, जिसके पीछे भगवान शंकराचार्यके शैवमतकी मर्यादा और हिन्दुत्वका अभिमान पद-दलित हो भू-लुंठित पड़ा-पड़ा सिसकनेमें भी असमर्थ हो जड़ हो गया था। मस्जिद भी शान्त थी, प्रेतके अभिशापसे पत्थर-सी निस्पंद। प्रतीत होता जैसे उसमें आदमी न हो। एकान्त भयानक हो उठा। मस्जिदकी मीनारें एक शैतानी मायाके रूपमें सामने नाच उठीं। मानों असंख्य जिन्नात कब्रसे उठकर जाग। उठे हों हजारों हिन्दुओंका कण्ठ उस नीरव प्रान्तमें मुखरित हो उठा जिनकी तलवारें मन्दिरकी रक्षामें टूट गयी थीं और जिनकी लाशें मस्जिदकी नींवमें—जहाँ गाड़ दी गयी थीं, वहाँसे उठकर, नाचने लगीं। हजारों कहानियोंके सजीव चित्र मूर्त्तिमान हो भयंकर स्वरमें किलकारी मारने लगे। युवतीने अचानक एक अट्टहास सुना और भयभीत हो उसने खिड़कियाँ बन्द कर भीतरसे सिटकिनी लगा दी। शरीर पसीनेसे तर हो गया था जिससे उसकी ओछी कंचुकीमें दबे तरुण उरोज काँप उठे। उसने आँचलसे पसीना पोंछनेकी चेष्टा की, किन्तु बाहर कुछ आहट पाकर चौंक उठीं।

'मियाँ पागल हुए हो! दूर है, परी। नवाब वजीर अली-कबीर-चौरावाले माधो सामियाँके बागमें रहते हैं। उनके हुजूरमें नज़र करेंगे और दरबारका रास्ता खुल जायगा। समझे कुछ? इन्सानकी किस्मत पत्तेकी आड़में छिपी रहती है। पता नहीं कब चमक उठे। बोलो क्या चाहते हो····। उड़ाऊँ दो हाथ। भाग्यका खेल है मेरे शेर!'

आवाज क्रूर और भोंड़ी थी, जिससे ज्ञात हुआ मानो बोलनेवाला यौवनकी माधुरी पार कर चुका था। कण्ठमें मृदुताके बदले हिंसा और पशुता किलक रही थी। दूसरेने उत्तर दिया—'पालकीवाले चार हैं। हम ठहरे दो। अगर मुकाबला किये तो··· ।' यह आवाज पतली और कुछ सुरीली थी जैसे बोलनेवाला युवक हो।



'[illegible]! इसी कुवत और हौसलेपर नवाबकी इनायतकी उम्मीद रखते हो? उठो, देखते क्या हो…?' पहले स्वरवाले पुरुषने कहा ।

युवतीका हृदय भीतर ही तड़प । उठा भयसे उसका बुरा हाल था । वह न दरवाजा खोलकर देख पाती और न कुछ चिल्ला ही पाती जिससे रक्षा के लिए किसीको बुला सके । थोड़ी ही दूरपर नये विश्वनाथ मन्दिरके कलशमें लटकते घण्टे रह-रहकर बज उठते । कभी शंख-ध्वनि लुढ़कती-उछलती कानोंमें आ कूदती, किन्तु तत्काल ही निराशासे म्लान युवती पीली पड़ जाती । हजार बार लोगोंने समझाया था, साँझ होते समय घरसे न निकला कर, किन्तु उसीने तो हठकर यह विपत्ति मोल ली थी । अब किसे पुकारे ?

वह भीतर बैठी हजारों आशंकाओं और कल्पनाओंपर मन दौड़ा रही थी कि बाहर कँहार चीख उठे । मालूम हुआ मानो वे दोनों आततायी उनपर टूट पड़े थे । युवतीने दरवाजोंको कसकर बन्द कर लिया और भीतरसे सिटकिनीको और भी शक्तिसे दबा लिया ।

संध्याका झिटपुटा हो चला था । सूर्य ऊँची हवेलियों और सघन वृक्षोंकी पंक्तिके पीछे अतल तिमरमें डूब चुके थे । आकाशमें धुँधला प्रकाश रातकी अँधियारीके साथ मिलकर अस्पष्ट आभा छितरा रहा था । विश्वनाथ-मन्दिरके पीछे फैले विशाल पेड़ोंपर बसेरा लेनेवाले चिड़ियोंके दल दिन भरकी उड़ान समाप्त कर क्षुधातुर शावकोंकी चोंचमें चोंच डाले वात्सल्य प्रेमसे पुलकित हो समस्त वातायन गुँजा रहे थे । पूर्ण अन्धकार छा जानेके पूर्व एक बार विकट स्वरमें निकटस्थ प्रान्त मुखारित हो उठा था ।

मस्जिदकी ऊँची मीनारोंके मुक्खोंसे अबाबीलें निकलकर विकट स्वरमें चीख रही थीं । आसमानमें नित्य दक्षिण दिशासे उत्तरकी ओर जानेवाले नैश विहंगोंका समूह तुमुल नाद करता वेगसे पँखें फड़फड़ाता भागा जा रहा था । इधर-उधर चमगीदड़ों और अन्य नैशपक्षियोंका दल उत्साहित हो उड़ता चैतकी मादक वायुमें बालकों-सा किलोल कर

रहा था। वृक्षोंकी डालें समीरकी थपकियोंसे एक बार हरहरा उठतीं और पलभरमें ही निस्तब्धता छा जाती।

मन्दिरके पीछेकी गलियाँ दिनभरके व्यापारको समेट मूक और अन्धी हो गयी थीं! कहीं मनुष्यका पता न था। पीछे ही वह मस्जिद गर्वसे शीश उठाये खड़ी थी जिसे कुछ ही काल पूर्व धर्मान्ध आलमगीर बादशाहने सत्ताभिमानमें चूर हो खड़ा कर दिया था। ईश्वरका एक निवास तोड़कर दूसरा बनानेकी कल्पना करनेवाले उस सम्राटकी आत्मा भी मानो इस गोधूलिमें नीरव क्रंदन कर रही थी! मन्दिरके उत्तरी फाटकपर खड़े तीन अश्वारोही हिन्दू सैनिकोंने मस्जिदकी ओर क्षोभ, ग्लानि, क्रोध और निराशाभरी दृष्टिसे देखा और एक लम्बी साँस खींच कर रह गये।

तीनों सवारोंमें एक सरदार और दो उसके सहचरसे लगते थे। सरदारका वेष रईसों-सा था। उसका शरीर सुकोमल, गौरवर्ण और चमकते सुवर्ण-सा प्रदीप्त था। उसकी सुदृढ़, विशाल और सुगठित काया वीरों-सी लग रही थी। किन्तु उसकी दृष्टिमें निराशा थी, और उत्साह म्लान। सन्ध्याके मन्द प्रकाशमें यद्यपि उसका चेहरा स्पष्ट न दिखायी पड़ा फिर भी उसकी लम्बी-चौड़ी आकृतिसे उसके योद्धा होनेका विश्वास होता। सिरपर फालसई रंगकी बीकानेरी पगड़ी, जिसपर बूटे बने थे, ललाटपर त्रिपुण्ड, शरीरमें रेशमी अंगरखा, गलेमें कीमती दुपट्टा, नीचे चूड़ीदार पायजामा, कमरमें तलवार, पैरोंमें कामदार नोकीले जूते, अन्धकारमें भी उसके गौरवकी साक्षी दे रहे थे। पता नहीं किस दुष्ट ग्रहके अभिशापसे यह महापुरुष इस प्रकार भाग्योपेक्षित हो साधारण जीवन बिता रहा था।

'जय विश्वनाथ! आशुतोष····तुम्हारी जय हो····।' उस पुरुष सिंहने गरजकर जयध्वनि की। उसके गर्जनमें चिन्ता, मलिनताके साथ उत्साह और आशा भी निहित थी। दोनों सहचर सवारोंने समवेत स्वरसे प्रतिध्वनि की—'जय विश्वनाथ····।'

'देखता हूँ कबतक नहीं सुनते। कभी न कभी तो सुनना पड़ेगा।

आज अठारह वर्षोंसे निरन्तर पुकार रहा हूँ। चेतसिंहके बाद राज्यपर मेरा अधिकार है। उनके बाद मुझे राज्य-सिंहासन प्राप्त होना चाहिये था। मनसाराम और दशाराम सगे भाई ही तो थे। मनसारामके पौत्र चेतसिंह और मैं दशारामका। क्या कुछ अन्तर है? किन्तु इस सारे सम्बन्धको एक झटकेमें तोड़ जो यह उदितनारायण आ बैठा है....। मन करता है छातीमें कटार उतार दूँ। फिर कुछ सोचने लगा। दोनों साथी सिपाही चुप रहे। जब कुछ क्षण बीते तो फिर भुनभुना उठा—'चेतसिंहने अच्छा ही किया। सिंह-सा झपटकर सिंहासनपर अधिकार कर लिया। अन्यथा मुझ अभागेकी तरह वह भी यदि भगवानकी कृपापर आशा लगाये बैठे होते तो दर-दरके भिखारी रह जाते। नहीं, वह सचमुच सिंह थे, नहीं क्या भूमिहार उन्हें यों ही जीता छोड़ देते। फिर वे मेरी ही कौन मदद कर रहे हैं? जगत सिंह, तुम नाहक पुरुष हुए....। तुम्हारे देखते तुम्हारा आहार छिन गया और तुम ताकते रह गये? रातके सन्नाटेमें, अँधेरेमें छिपकर यहाँ बाबा विश्वनाथकी जय पुकारते हो। पागल, पहले अपनी जय पुकारो, देवताओंकी जय तो अपनी जयके बाद है....।'

'सरकार आप व्यर्थ अफसोस करते हैं। अभागा कोई और होगा। काँटा काँटेसे निकलता है और लोहा लोहेसे कटता है। अवधका नवाब वजीर अली बनारस आ गया है। इस म्लेच्छ फिरंगी सरकारने उसे भी गद्दीसे उतार यहाँ ला पटका है। वजीर अलीसे मिला जाय। वही सारे भाग्य की कुंजी है....।' दोनों सवारोंमें एकने कहा। इसका नाम दीहा सिंह था और इसके हाथोंमें लम्बे फलवाला एक विषाक्त भाला था।

'विषस्य विषमौषधम्'—यह कार्य मैं करूँगा। पृथ्वीनाथ आप नवाब-से मिलने न जायँ। वह नवाब है तो सरकार किससे कम हैं? आज नहीं तो कल आप गद्दीपर बैठेंगे, आपका अभिषेक होगा, आपके नामके डंके बजेंगे और आपके राज्यकी सीमाएँ पूरबमें कलकत्ता तक

जा फैलेंगी।' तीसरे अश्वारोहीने, जिसका नाम गंगाधर था, उत्साह भरे स्वरमें कहा—'नवाबसे मैं मिलूँगा।'

'मिलना....; लेकिन पण्डित, मैं समझता हूँ कि चेतसिंहने मुझे हर क्षेत्रमें पराजित किया। वह हारकर जीते और मैं जीवित रहकर भी मुर्दा बना। ज़िन्दगीके दिन छुक-छिपकर काट रहा हूँ। मेरा दिल आज स्पष्ट कह रहा है। मैं बचपन से ही उनसे ईर्षा करता, उनसे होड़ लगाये रहता, किन्तु आज चालीस वर्ष वय बीतनेपर जब अबतकके कामोंका लेखा-जोखा तैयार करता हूँ तो लगता है जैसे चेतसिहने मुझे पग-पगपर मात दी है। भूमिहारोंका समर्थन प्राप्तकर भी मैं क्या कर सका? यह विश्वनाथ-मन्दिर! औरंगजेब द्वारा ध्वस्त इस देवालयके पुनरुद्धारकी मेरी भावनाको भी वह मुझसे छीने ले गये। सारनाथका स्तूप खोदवाकर मैंने क्या पाया? और पुराणपुरीका आदेश! इस मन्दिरके पत्थरोंसे चेतसिंहकी आत्मा आज मुझपर हँस रही हैं, धिक्कारती और अट्टहास कर रही है! पण्डित मैं क्या करूँ?' जगतसिंह विचलित हो उठे।

'हताश न हों श्रीमन्त! बीती भुला दें—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानु शोचन्ति पण्डिताः॥

भविष्य उज्जल है। वजीर अली चुप न बैठेगा। उसे यदि हम भरोसा दें तो वह एक बार तो बवण्डर उड़ा ही देगा और तब इस विदेशी राज्यका मूलोच्छेदन करनेमें हम सफल हो जायँगे। यदि वजीर अलीको अवधका मसनद प्राप्त हो जाय तो बनारसका राज्य आपका है। चेतसिंहके राज्यसे चौगुना....एक बार कम्पनीको भगा देनेपर देशका कोई भी माईका लाल सामने आनेका साहस न करेगा और बनारसका झण्डा फिर बिहार और बंगालतक जा लहरायेगा....। वजीर अलीको उकसाना हमारा प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिये। फिर तो बत्ती आप ही जल उठेगी।'

'लेकिन उसकी लपटसे भी होशियार रहना चाहिये। कहीं अपना ही वस्त्र न छू ले'—दीहा सिंह बोल उठा।

अचानक बातोंका क्रम भंग करती तलवारें चलने और किसी नारी कंठकी करुण चीत्कार सुनायी पड़ी। जगतसिंह चौंके—'यह आवाज पाससे ही आ रही है। कहीं कोई... ।'

'मालूम तो ऐसा ही होता है। मैं बढ़कर देखूँ ?'—युवक ब्राह्मण-ने निर्भय हो पूछा।

'नहीं, अकेले नहीं। हम भी साथ चलते हैं। अँधेरा हो रहा है। तुम्हारा अकेले जाना ठीक नहीं'— जगत सिंहने सतर्क रहनेका आदेश देकर कहा।

चीत्कार फिर सुनायी पड़ी। इस बार आवाज कुछ स्पष्ट थी। दिशा-ज्ञान होते ही सिपाहियोंने सिंह-हुँकारसे निर्जन गुंजित कर दिया और दो छलाँगमें मस्जिद के निकट जा पहुँचे। मस्जिदके पूरब काशी करवटकी गलीमें पूर्ण सन्नाटा छाया था। कहीं पत्ता खड़कता न था। उस भयानक वातावरणके बीच सघन विटपोंकी अँधेरी छायामें दो युवक यवन आततायी एक पालकीके कहाँरोंपर अन्धाधुंध प्रहार कर रहे थे।

'कौन है ? कहाँ भागता है गीदड़ ?'—जगत सिंह बिजली-सा तड़प उठे। किन्तु आततायी रुक न सके। जान ले भागे। जगत सिंह घोड़े-से उतरे। पालकीके पास आये। देखा, एक कहाँर कटकर भूमिपर पड़ा था, दूसरा आहत हो चुका था।

मस्जिदके नीचे पीपलकी छाया में मृत कहाँरका शव पड़ा अपने दुर्भाग्यपर मूक स्वरमें विलख रहा था। दूसरा कहाँर सख्त आहत था। शेष दो बचे थे। उन्होंने आततायियोंका डटकर प्रतिरोध किया था। संघर्षमें पहले दोनों कहाँर पड़े और दोनों ही आक्रामकोंकी तलवारों के आखेट बन गये। जगत सिंहको आवाजपर आक्रमणकारी भाग निकले। दोनों कहाँरोंने उन्हें दौड़कर पकड़ना चाहा, किन्तु हाथ न आते देख एकने अपनी लाठी तानकर तौल दी। आततायी क्षण भर-

के लिए गिरा, किन्तु उसी वेगमें घाव सँभालता अँधेरेमें विलीन हो गया। देखते-देखते गलीमें रुधिरकी लालिमा अपना रास्ता बना गयी।

पण्डितने पालकीके पास जाकर पूछा—'कौन है पालकीमें ?'

कहाँर घबराये थे। एक बार धोखा खाकर अब वे छाछको भी फूँककर पीना चाहते थे। पता नहीं यह नयी बला कैसी हो ? कहीं वेष बदले वही ठग न हों ? उन्हें उत्तर न देते देख गंगाधरने फिर कहा—'डरो मत। हमने उन दुष्टोंको भगा दिया है। अब निर्भय हो जाओ। जहाँ कहो तुम्हें पहुँचा दूँ। लेकिन इस पालकीमें है कौन ?'

'वल्लभ महाराजकी बेटी'— कहारोंने कुछ आश्वस्त हो उत्तर दिया।

'कौन, त्रिलोचन घाटवाले रामवल्लभ शास्त्री ?'

'हुजूर······उन्हींकी कन्या त्रिवेणी···'—कहाँर बोले।

'अँधेरेमें यहाँ क्या कर रहे थे ?'

'मनौती थी। दर्शन-पूजा करने आये थे। परन्तु घरवालोंका साथ छूट गया, सो यहीं बैठकर उन्हें जोह रहे थे।'

'जोह रहे थे ! सिपाहीने मुँह बिगाड़कर चिढ़ाया। ···तो जोहने के लिए यही अँधेरी जगह थी मस्जिदके नीचे····, मूढ़। मन्दिरके फाटकपर क्यों नहीं रुके ?'

'हमने समझा वह भी इसी रास्ते आयेंगे'— कहाँरोंको अपनी भूल मालूम हुई।

'बेवकूफ, यह भी क्या अपना राज है ? देखते नहीं, जमाना पलट गया ?' सिपाही बोला। जगतसिंह चुपचाप खड़े रहे। कहाँरोंकी मूर्खता-भरी बातें सुन उनकी सरलता, बुद्धिहीनता और अबोधतापर कुढ़े, फिर गम्भीर होकर बोले—'आप तो जानसे हाथ धोते ही, इस लड़कीके प्राण भी ले जाते····गँवार !' गंगाधरकी ओर मुँहकर कहा—'त्रिलोचन घाटके रामवल्लभ शास्त्रीका घर तो जानते होगे महाराज ? इस पालकीके साथ

जाओ। मन्दिरमें पूजा-मनौती कराकर घर पहुँचा देना। जब तक यह सकुशल घरमें न चली जाय, रास्तेसे लौटना मत....।'

'जब तक सकुशल घरमें चली न जाय, रास्तेसे लौटना मत'—गंगाधरके अन्तस्तलमें जगतसिंहका आदेश गूँज उठा। उसने मन ही मन इस हतभाग्य वीर पुरुषकी सराहना की। भीतर पालकीमें बैठी त्रिवेणीके कानों और हृदयमें प्रतिध्वनि हुई—'जब तक सकुशल घरमें चली न जाय, रास्तेसे लौटना मत।' एक बार इस आज्ञा देनेवाले पुरुषका मुँह देखनेकी कामनासे उसने पालकीके पल्लोंको एक हलकी मरमराहटसे कुछ खोला, किन्तु अन्धकारमें कुछ स्पष्ट न हो सका। उसने फिर पल्ले बन्द कर लिये।

घोड़ोंने दूसरी ओर मुँह फेरकर हिनहिनाया और कहाँर पालकी उठानेमें लगे। गंगाधर पण्डितके मानसाकाशमें एक साथ अनेक भावनाएँ बरसाती बादलोंके व्यूहकी भाँति मँडरा उठीं। क्षणभरके लिए एक बिजली चमकी जिसमें अन्तरके निगूढ़ स्तरमें दबी एक सुकोमल भावना प्रकाशित हो क्षणभरमें ही विलीन हो गयी। उसे मौन देखकर जगतसिंहने बिगड़कर पूछा—'डरते हो, तो दीहा सिंहको भी साथ कर दूँ? मैं अकेला चला जाऊँगा। इतना भीरु तुम्हें न समझता था। स्वयं ब्राह्मण होकर एक ब्राह्मण-कन्याकी रक्षा नहीं कर सकते?'

गंगाधर काँप उठा। क्रोधसे उसके होंठ हिलकर तड़प उठे। बाहें सिहर उठीं। खूनका घूँट पीकर बोला—'डरता नहीं। एक बार यम अपना साक्षात रूप लेकर सम्मुख आ जाय तो उससे भी भिड़नेमें गंगाधर पीछे न हटेगा। पर एक बात सोचता था। रात हो चुकी है.... दीहा सिंह आपके साथ रहें। इन लोगोंके लिए मैं यथेष्ट हूँ।'

'लौटकर आओगे?'

'कह नहीं सकता, किन्तु जैसा आप कहें।'

'कुछ नहीं; घर चले जाना। वहाँकी हालत देख लेना....। उठाओ रे पालकी।'

दोनों कहाँरोंने पालकी उठायी। यद्यपि पालकी उनके लिए भारी थी, पर अब करते क्या ? इस भयानक पिशाच-भूमिसे वे शीघ्र निकल भागना चाहते थे। इस विषम परिस्थितिमें वे अपने मृत साथीके लिए शोक भी न मना सके। अभी उसका दाह भी करना था। परन्तु रात हो रही थी। हारकर दोनों कहाँर पालकी उठाकर आगे बढ़े। तीसरा कहाँर लँगड़ाता और घाव सँभालता पीछे-पीछे चलने लगा। जब वे मन्दिरकी ओर चले गये तो जगतसिंहने चौककी ओर घोड़ा बढ़ाया। दीहा सिंह साथ-साथ था।

कोतवालीके पास आये तो देखा फाटकपर मशाल जल रही थी। अंग्रेजी राज्य होते ही कोतवालीका आमूल परिवर्तन हो चुका था। कोतवालीके फाटकपर सिपाही पहरा दे रहे थे। भीतर शमादान जल रहा था जिसका प्रकाश छन-छनकर खिड़कियोंसे बाहर गिर रहा था। सिवा कुछ गंधी और मालियोंके, जिनका व्यापार रातके ही ग्राहकोंसे चलता था, अन्य सभी दूकानें बन्द हो चुकी थीं। कोतवालीके निकट सन्नाटा छाया था। कूँएके चारो ओर अंधेरा घनीभूत हो चुका था। दालमंडीकी नुक्कड़पर दो-तीन माली हाथमें गुलाब-बेलेके गजरे और आकर्षक गुलदस्ते लिये वार-वनिताओंके प्रेमियोंकी राहमें बैठे अकड़से बातें कर रहे थे। जान अली अतरवाला अभीतक दूकान खोले बैठा था। सामने ही दो-चार इक्केवाले अब भी किसी रसिककी प्रतीक्षामें खड़े-खड़े घोड़ोंकी मालिश करते, चुमकारते या कभी उनके सामने हरी घास फेंककर दूसरे इक्केवालेसे इधर-उधरकी बातें करने लगते। बातोंके प्रसंगमें किसी नालेपर बाँकोंकी भिड़न्त, बरकन्दाजोंकी लड़ाई और तिलंगोंकी हुई धर-पकड़की चर्चा हो रही थीं।

जगतसिंह पलभरके लिए एक छतनार वृक्षकी छायामें खड़े हुए। देखा, भीतर कोतवालीमें मुंशी फैयाज अली, मिर्जा पाँचू और दो-चार हवलदार बैठे पाँच-सात नागरिकोंको पकड़ उनसे कुछ कबूल कराना चाहते थे।

'आज क्या यह नया है ? हजारों शिकायतें हो गयीं। कितने जुलाहे

शहर छोड़ भाग गये। कितने व्यवसाइयोंने रोजगार बन्द कर दिया। मालगुजारीमें इजाफा, उधर पैदावारमें कमी। पर इस अत्याचारका अन्त कब होगा? अभी कल ही तो उस रामूकी माँने जहर खाकर प्राण त्याग दिये। हरखूकी पीठकी चाम निकाल ली गयी....और आज ये अभागे इस यम-यातनामें पकड़ गये हैं। जुलाहे होंगे या दूसरे व्यापारी....।'

'....कल मीरजापुरमें पकड़ लिया गया....'—मिर्जा पाँचूने उत्साह भरे स्वर में कहा।

'पर वह साला भंगड़ कहाँ फँसा। इसके लिए देखता हूँ बड़ा पिंजरा बनवाना होगा।' यह था फैयाज अली जिसने चेतसिंहका सर्वनाश रचनेमें सदैव अग्रसर हो अँगरेज रेजिडेण्टोंकी मदद की थी। रेजीडेन्सीका यह मुंशी—उस शैतान कुबरा मौलवीका सहायक था जो एक दिन अपने समस्त अपराधोंकी सजा स्वरूप शिवालय किलेमें मनियार सिंहकी तलवारके घाट उतार दिया गया था। किंतु धूर्त फैयाज दिन-दिन तरक्की करता गौरांग महाप्रभुओंकी कृपाके सहारे आज नगरका नायब बना हुआ था।

घृणासे जगतसिंहका मन भर गया। उस अंधेरेमें एक बार नाक-भौंह सिकोड़कर अपार तिरस्कार, घृणा और क्षोभसे उन्होंने इन नर-पिशाच मुत्सद्दियोंके नामपर थूँका। फिर तलवारकी मूठ पकड़कर मन ही मन कुछ शपथ ले घोड़ेकी बाग मोड़ दी। पुरानी अदालतकी राह वे आगे बढ़ गये। दीहा सिंह चुपचाप स्वामीके पीछे-पीछे घोड़ा बढ़ाये चला जाता था।

४

सुन्दरी, तुम कौन हो ?

गंगाधरने कहाँरोंको मन्दिरके प्रमुख द्वारपर ठहराया और भीतर बैठी पूजाव्रता रमणीको बाहर निकलकर मन्दिरमें चलनेको कहा। मन्दिरके द्वार और प्रांगणमें शत-शत दीप जगमगा रहे थे। औरंगजेब द्वारा काशी विश्वनाथका प्रख्यात मन्दिर विध्वंस किये जानेके बाद भारतके सैकड़ों भूपालों और नरपतियोंकी भक्ति-भावना नये विश्वनाथ मन्दिरकी दीप शिखाओंमें सजीव हो सुलग रही थी, झिलमिलाती, बलखाती और भभकती। उसीके प्रखर प्रकाशमें गंगाधरने देखा— पालकीसे मानो सौन्दर्य और कोमलताकी जगमगाती-ज्वाला उतर पड़ी है। वह चौंककर पीछे हट गया। इसे ज्वाला कहे या कुछ और ? तब उसने निर्णय किया कि सौन्दर्य वह जादू है जिससे मनुष्य वशमें हो जाता है। युवतीकी आँखोंसे उसकी आँखें एक बार टकराकर चार हुईं। त्रिवेणीने दृष्टि चुपचाप नतकर सिरपर अंचल खींच लिया। मन्दगतिसे मन्दिरकी ड्योढ़ी लाँघकर वह खड़ी हो गयी, मानो किसीकी प्रतीक्षा कर रही हो। एक बार चातक-सी सरल और विशाल आयत आँखोंको फैलाकर उसने घरवालोंको देखना चाहा, किन्तु किसीको

भी न पा निस्सहाय हो गंगाधरकी ओर देखा। इस बार फिर वही बर्छी-सी तेज निगाहें आँखोंकी राह हृदय तक उतर गयीं। गंगाधर घोड़ेसे उतरा। मन्दिरकी दीवारसे लटकती किसी धातुकी एक कड़ीमें लगाम बाँध भीतर गया। त्रिवेणीने पूजा किया। किन्तु उसका मन देवार्चनमें लग न सका। उसने मन ही मन अपने अपराधोंके लिए सर्वेश्वर शिवसे क्षमा-याचना की, एकाग्र होनेका प्रयास किया; किन्तु भय, चिन्ता और उद्विग्नतासे उसकी मनःस्थिति असाधारण हो रही थी।

दर्शन और पूजाके बाद पालकी घरकी ओर लौटने लगी तो ब्रह्मनालकी गलीमें पहुंचते ही उसका सुसुप्त क्रोध जागकर भीषण रूपसे उठ बैठा। गंगाधर पालकीके आगे-आगे चल रहा था। उसे एक जनाना पालकीके साथ आते देख बगलमें पानकी दूकानपर बैठा मशहूर बाँका शिवनाथने व्यंग्यकर पूछा—'काऽ हो पंडितजी, गौना कराये लिये जात हौ काऽ।'

गंगाधरने अपरिचिता आश्रिताके साथ इस प्रकार जोड़ा गया व्यंग्य सुनकर भी उसे अनसुना कर दिया। दूसरा अवसर होता तो बाँकेकी इस हँसीका वैसा ही कटुतर उत्तर सुनाकर उस बाँकेका मुँह बन्द कर देता, किन्तु आज एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण कुलकी युवतीके साथ रहनेसे उसकी सारी वाचालता न जाने कहाँ खो गयी थी। वह गम्भीर हो गया था। नारी पुरुषमें इतना परिवर्तन कैसे ला देती है, उसने क्षणभरको सोचा, फिर तत्काल उसका मन रामवल्लभ शास्त्री और उनकी सामाजिक मर्यादा, उनकी महिमामयी कन्यापर दौड़ गया। उसने एक बार कठोर दृष्टिसे शिवनाथको देखा, मानो कह रहा हो—तुम बाँके छैले, गुण्डे-बदमाश आदमी, तुम्हें क्या पता साथमें कौन है ? तुम स्त्रियों की मर्यादा क्या जानो।

शिवनाथने गंगाधरको बोलते न देखकर आवाज दी—'अरे क्या होऽऽ····। अब्बैसे ई हाल हौ तऽ कलसे त तकबौ न करबऽ। भाई माल तोहरे पास······हमहनके का करै बदे पूछबऽ····। नयी-नयी दुलहिन

लेहलेसे इहै हाल होला······।' शिवनाथकी बात समाप्त होनेके पूर्व ही दूकानपर जमे अनेक खत्री और दूसरे ग्राहक खिलखिलाकर हँस पड़े। गंगाधर जोरसे डपटकर चिल्लाया—'चुप रहा बाऊऽ साहेब, तोहके का मालूम संसार क हाल ? भाँग छाना अउर छ-नौ कराऽऽ। लौटीला त पूछबऽ·······'—यह कहता हुआ क्रोधसे काँपता स्पष्ट बातें करनेमें असमर्थ वह आगे बढ़ गया। आज उसके मुँहसे सीधी बात क्यों नहीं निकली ? शब्द क्यों लटपटा रहे थे ? गलेमें थूक क्यों जम रहा था ? कनपटी क्यों गरम हो रही थी और नसें क्यों तन गयी थीं ? अपने आकस्मिक परिवर्तनपर विचार कर रहा था कि पीछे उन्मत्त बाँकेका मार्मिक अट्टहास सुनायी पड़ा—'उड़इले लेहले जात हौ···भाई ए बखत मत बोला····चिड़िया हाथसे निकल जाई····।'

सब ठठाकर हँस पड़े। पानवाला दुगुने उत्साहसे पान लगाने लगा। तबीयत मस्त होते ही बनारसी पानपर दुगुने शौकसे टूटता है।

पालकीमें बैठी त्रिवेणीके रोम-रोममें इस घृणित व्यंग, कठोर उपहास और मर्मभेदी अट्टहासकी ज्वाला जहरका प्रसार कर रही थी। उसका हृदय जल-भुन उठा। वह अपनेपर, घरवालोंपर, कहाँरोंपर या इस अपरिचित उजड्ड ब्राह्मण सैनिकपर क्रुद्ध थी ? स्वयं उसे पता न था। वह क्रुद्ध थी और उसे कुछ भी अच्छा न लगता। कई बार मनमें आया, कह दे, मेरी आँखोंसे दूर चले जाओ अपना मुँह लेकर। यहाँ तुम्हारी मर्दानगीकी जरूरत नहीं। जाकर सहलाओ अपने मालिकके पैर। मैं खुद घर चली-जाउँगी। मूढ़ ! ब्राह्मणका पुत्र शास्त्र त्यागकर शस्त्र ग्रहण करने चला है। होते ऐसे वीर तो कहीं मैदानमें फिरंगीसे जा जूझते। अन्धेरेमें काला मुँह करते मन्दिरमें देवताओंकी दयाकी प्रार्थना न करते।

उद्वेग मुँह तक आता। होंठ हिलते, किन्तु वह कुछ भी न कह पाती। आज उसे विदित हुआ, सचमुच नारी कितनी दुर्बल है, कितनी असहाय। आज जब घरका कोई भी व्यक्ति उसके साथ न था, वह

स्वयं अपनी रक्षा न कर सकी। कुछ अपरिचित पुरुषोंने ही तो उसे बचाया। अनेक विचारोंको मनमें लाकर भी वह इस असंस्कृत और पतित ब्राह्मण कुमारको क्यों नहीं मनमाना तिरस्कृत करती ? क्यों नहीं दिलका गुबार साफ कर लेती ! तीव्र वाग्वाणोंसे उसका मर्म विदीर्ण कर देती ? संस्कारोंसे दबी निर्बल नारी शत-शत आघातोंकी मूक पीड़ा दबाकर भी शान्त रह गयी। उसने सन्तोष कर लिया। यह असभ्य और संस्कारच्युत ब्राह्मण सैनिक उन आततायी यवनोंसे कुछ भी कम नहीं। उन्हींका तो बदला रूप है ? क्या एकान्तमें पड़ी निराश्रित कुमारीको बेबस पाकर यह भी वैसा ही दुर्दान्त न बन जायगा ? सभी पुरुष एक-से हैं ? और वह बाँका, वह भी कितना प्रेत था ? प्रेत....? सभी प्रेत हैं। पर वह अश्वारुढ़ पुरुष जिसने ज्ञानवापीपर यवनोंसे मेरी रक्षा की ? आह ! उसका मुँह भी तो न देख सकी ! मेरा त्राता.....।'

सहसा विचारोंमें बाधा पड़ी। बाहर कुछ बहस-सी हो रही थी। कहाँरोंने पालकी उतारकर जमीनपर धर दिया। ब्राह्मण सैनिक अपने घोड़ेपर ही था। एक कहाँर पास आया और उसने दरवाजेके पास खड़े होकर कहा—'बिटिया नालेमें पानी ज्यादा है। पालकी नहीं जा सकती। तुम उधरसे चलो, कुछ ढूहे, पत्थर हैं। पारकर फिर बैठ जाना।'

त्रिवेणीने एक बार चारो ओर देखा। संध्याके धुँधलेपनके बाद रात्रिका अंधकार गाढ़ा हो चला था। ब्रह्मनालेका पानी वेगसे बहता जा रहा था। ढालुआँ किनारोंपर उगे वृक्षोंने स्थानकी भयंकरता और बढ़ा दी थी। वह पालकीसे निकलकर खड़ी हुई तो गंगाधरने कहाँरोंसे कहा–'तुम पालकी उधरसे ले चलो। यह आगे बढ़कर पार करती हैं....।'

यह आज जो सब कुछ बिना उसकी कामना और आशाके होता जा रहा है, उसपर त्रिवेणीका कोई प्रभाव नहीं ? वह क्या उसपर कुछ भी नियन्त्रण नहीं कर सकती ? उसने एक बार कातर दृष्टिसे गंगाधरकी

ओर देखा मानो, पूछ रही हो—'क्यों मेरी प्रतिष्ठापर इस प्रकार पानी फेर रहे हो ? क्या तुम्हे यही उचित था ?'

गंगाधरने कहा—'आप इधरसे पार हो लें, बचाकर उतरियेगा। या मैं पकड़ लूँ····।'

'नहीं मैं चली जाऊँगी'—त्रिवेणीने कहा और वह नाला पार करनेके लिए उतरने लगी। गंगाधर निर्निमेष मुग्ध पलकोंसे उसके एकान्त सौन्दर्य, संकोचजनित व्रीड़ायुक्त शोभाको देखता रह गया कि अचानक त्रिवेणी फिसलकर नालेमें जा गिरी। एक अव्यक्त और मन्द स्वरमें कराहकी मद्धिम आवाज आयी। गंगाधर घोड़ेसे उतरकर उसके पास पहुँचा। त्रिवेणी ढालुवें रास्तेपर पड़े पत्थरोंसे फिसलकर गिर चुकी थी। विस्मय-विमुग्ध गंगाधरने अर्धचेतनावस्थामें उसे पकड़ लिया। एक हाथसे त्रिवेणीका दाहिना हाथ पकड़ा और दूसरेसे उसकी कमर लपेटकर उसे उठा लिया। उसका मस्तिष्क उड़ रहा था। सारा शरीर झनझना रहा था; पाँव काँपते और वाणी रुद्ध थी। त्रिवेणी उसके अंकमें आ चुकी थी। क्षणभरके लिए वह पाषाण मूर्त्ति-सी मौन रही, फिर कटे वृक्षकी भाँति लुढ़क पड़ी। गंगाधरने उसे अपने बाँये हाथपर पीछे रोक लिया।

'घबराओं मत, मैं उतार देता हूँ पार।'

'नहीं छोड़ दो। मैं उतर जाऊँगी'—स्वप्नमें उड़ते-उड़ते वह बोली।

'गिर जाइयेगा। पानीकी धार तेज है और पत्थरके ढोके नोकीले।' बात आधी समाप्तकर गंगाधरने उसे उठा लिया। त्रिवेणी तिलमिला उठी। एक बार गंगाधरसे छूटनेके लिए वेगसे शरीर फेंका, किन्तु उसके बलिष्ठ पाशके सम्मुख उसका हलका झटका व्यर्थ हो गया। गंगाधर जलमें घुसा। नालेमें पानी वेगसे बह रहा था। घुटना डूबा तो उसने मधुर स्वरमें कहा—'शान्त रहिये नहीं दोनों गिर जायँगे।'

पानी चढ़ने लगा। घुटनेके बाद जाँघोंतक पानी आ गया। त्रिवेणीने पैर ऊपर उठा लिये। उसकी श्वास तीव्र गतिसे चलने लगी।

उसका मुँह गँगाधरके मुँहके निकट आ गया था। तब उसने मुँह फेर लिया। दो-चार पत्थरोंको लाँघकर वह दूसरे तटकी ओर बढ़ा। पानी कम होने लगा। आगे बढ़कर त्रिवेणीको उतार दिया, किन्तु जड़वत् त्रिवेणीको मौन और निस्पंद देख गंगाधर स्वयं भी हतप्रभ और भयभीत हो उठा। अब परिस्थिति और अपनी उद्दंडताका ख्याल उसे हो आया। वह अपने कार्योंसे इतना कुंठित हो चला था कि उसे यह देखनेका ध्यान ही न रहा कि लज्जा और क्रोधसे त्रिवेणी लाल हो जल-भुनकर ऐंठी-सी चुपचाप बैठ गयी थी। कहाँर दूसरी ओरसे उतर रहे थे।

पालकी आ गयी तो उसी प्रकार बिना कुछ बोले वह बैठ गयी। कंहाँर चलने लगे। उसने पालकी बन्द कर ली। गंगाधर ताकता रह गया। जब पालकी कुछ आगे निकल गयी तो वह पीछे मुड़ा। घोड़ेको उतारा, हलकर नाला पार किया और सवार हो जिस ओर पालकी गयी थी उसी ओर चल पड़ा।

हृदयके एक कोनेसे गूँज उठी—'बेहया, मूर्ख, फिर उसके पीछे-पीछे लगा?' दूसरे भागसे उत्तर मिला—'मैं तो कर्त्तव्य-पालन कर रहा हूँ। जब तक वह सकुशल घर न पहुँच जाय....।'

'उसे घर पहुँचानेकी आड़में एकान्त और उसकी असहाय अवस्थाका लाभ उठाते शर्म नहीं आती।'

'शर्म क्या? यह तो होता ही है...। उसने विरोध ही कहाँ किया। फिर दूसरा चारा क्या था?'

सहसा कहाँरोंने आगेसे हाँक लगायी—'बढ़लै आवऽ भइया...साथे आवऽ....।'

गंगाधरका साहस बढ़ा—'देखो, कहता था न? उसीने कहकर बुलवाया है......।'

पालकी जब गलियोंसे होती त्रिलोचन घाटकी ओर चली तो कहाँरोंने कहा—'आ गये देवताजी! घर आ पहुँचे! अब आप जा सकते हैं।'

'जा सकते हैं !' छातीमें बन्दूककी गोली-सी लगी। उसने मन ही मन दुहराया—जा सकते हैं। घोड़ा मोड़ ही रहा था कि त्रिवेणीने कहाँरों-से कहा—'पूछ तो घूरे, उनका क्या नाम है और सब ठिकाना पूछ ले....।'

मूर्ख कहाँर स्त्री-हृदयके रहस्यसे अविदित था। जोरसे बोला—'भइया, बिटिया पूछत हैं, का नाम-गाँव है, कहाँके रहवइया हौ, बापका नाम का है ?'

'कलक्टर साहब डेविस और पोलिटिकल एजेण्ट चेरी साहबको जानते हो ? उनके ज्योतिषीका तो नाम सुना होगा। आजकल वही राजपण्डित हैं। मेरे पिता हैं वह।' पालकीमें बैठी त्रिवेणीने घृणासे मुँह फेर लिया। राजपण्डित ! वाह, क्या शान है ! राजपण्डित। जैसा फिरंगीका राज वैसा असभ्य उसका पण्डित। लगता है जैसे इस पदवीसे वह हमें प्रभावित करना चाहता है। पागल, यह रोब कहीं और जमा जाकर; पतित और भ्रष्ट ! जैसा बाप वैसा बेटा। क्यों न हो...।'

कहाँर जब एक बड़े फाटकमें घुस गये तो गंगाधर लौट पड़ा। त्रिवेणीको देखते ही घरमें एक हंगामा-सा मच गया।

५

पागल है, मूर्ख !

भंगड़ने करवट ली और एक लम्बी साँस खींची—कुछ बुदबुदाया और शान्त हो गया। आँखोंके सम्मुख पुराणपुरीकी कोपीनधारी मूर्त्ति खड़ी हो गयी—उर्ध्व बाहु किये....वही दृश्य....वही बातें। वही जलती काशी और उसकी लपटोंसे निकली भभकती नारी मूर्त्ति। वह काँप उठा। फिर विचारने लगा—'तुम वैराग्य किसे कहते हो। गेरुआ वस्त्र, कोपीन, कमण्डल और मुण्डित शीश वैराग्य नहीं। रागका मनसे छनकर निःशेष हो जाना ही वैराग्य है और यह तभी होगा जब मन भोगसे ऊब उठे और उससे भाग जाय। बिना भोगके योग भ्रामक है। मानस पटलपर एक चित्र-सा अंकित हो गया, बिलकुल स्पष्ट, रंगीन, किन्तु कारुणिक। देखा—अलवरका वह चारण कुल जिसमें उसने जन्म लिया था। घरमें कितने उल्लास और चावसे खेलता। पर पिता थे सैनिक, कड़खा-पाठ छोड़ युद्ध-स्थलमें सिंह-गर्जन करते। उसने भी वही सीखा। बचपनसे ही तलवारका शौक बलवान होता गया। धीरे-धीरे उसके शौर्यकी चर्चा इधर-उधर फैली। अभी आयु

कुल अठारह वर्षकी थी कि देखनेवाले आने लगे। लड़कियोंकी चिन्तासे त्रस्त पिता शीघ्र ही कन्यादानके ऋणसे मुक्त होनेके लिए उससे निवेदन करते और एक दिन अचानक जैसलमेरके एक प्रसिद्ध वैष्णव चारणकी कन्यासे विवाह पक्का भी हो गया। सहसा गाँवके गीतकी एक पंक्ति मुखर हो उठी—'गोरड़ी तू जैसलमेर की।'

चित्र और स्पष्ट हो गया। भंगड़ने चित्रकी एक-एक लकीर और एक-एक रंग देखा। श्वसुर बड़े धनी थे। अनेक दरबारोंसे 'लाख-पसाव' और 'कोड़ पसाव' पा चुके थे। हाल हीमें श्रीनाथजीके दरबारसे कण्ठी भी ग्रहण कर चुके थे। पूरे वैष्णव थे। वैसी ही सुन्दरी और विदुषी थी उनकी कन्या। ठाकुरजीको देखते ही मीराकी भाँति मतवाली होकर गाती—'मैं तो गिरधरके घर जाऊँ ?'

भंगड़ चौंक उठा। मार्मिक वेदनासे सिर फटा जा रहा था। सारे शरीरमें दर्द फैल चुका था। देखा, विवाहकी रात थी। सप्तपदी हो चुकी थी। अग्नि और ध्रुवताराको साक्षी दे उसने जब बहूकी माँगमें सिन्दूर डालनेको हाथ बढ़ाया तो देखा मंगलागौरी अद्वितीय सुन्दरी थी। सिन्दूर डालना छोड़ वह अपनी पत्नीका मुँह ही देखने लगा था, जिसकी बड़ी शिकायत हुई थी। पर उसका हृदय प्रसन्न था। पत्नी गुलाबका फूल थी। उस दिन तो नहीं, किन्तु अब वह यह भली भाँति अनुभव कर रहा था कि सौन्दर्य्य एक ज्वाला है जिसके सम्पर्कमें आते ही प्राण जलने लगता है। इस जलनका ज्ञान उस समय तो न हुआ, किन्तु अब विश्वास हो गया था कि यह आग उसी रूपकी लगायी थी।

क्षण भरमें ही दृश्य बदला। वह घरमें जा चुका था, कोहबरमें। मौर उतारना था। साली-सलहजें दरवाजा रोके कह रहीं थीं। हमारे अधूरे दोहोंको पूरा करो, जो समस्या हम देंगी उसे पूरी कर सुनाओ, तब हम तुम्हें भीतर जाने दें। पहले हमारी बातोंका उत्तर दे लो, पीछे कोहबरमें जाना। उधर वह शान्त था मौन, अटल, अविचल और अविरल चुप्पी साधे युवतियोंने उससे कुछ कहला लेनेके

लिए लाख सिर पटक मारा, पर दूल्हा था कि कविताएँ कहता न था। गंभीर होकर वह शान्त था मौन, अटल, अविचल और अविरल अटूट चुप्पी साधे। हारकर चुहल करनेवाली युवतियोंने गुदगुदाया, बकोटा, व्यंग किया, कुछने शिकायत की, किन्तु उसने कवित्त न पढ़ा, न पढ़ा। हताश हो सालियाँ कह उठीं—मूर्ख है !

विवाहके मण्डपसे लेकर कोहबर तक एक फुसफुसाहटकी लहर दौड़ गयी—मूर्ख है !

मंगलागौरीने नतमस्तक ऊपर उठाया और धीरेसे घूँघटको सरकाकर देखा। मौन अटल पतिकी आँखोंसे आँखें मिलीं, मानो वह कह रही हो—पढ़ क्यों नहीं देते एकाध छन्द। सैकड़ों तो याद होंगे। किन्तु वह पहले-सा ही मौन रहा। उसे चुपचाप बैठे देखकर क्षणभर बाद मंगलाने भी उसी स्वरमें दोहराया—मूर्ख है !

सैकड़ों घन एक साथ छातीपर गिर पड़े। उसने चारो ओर देखा। युवतियाँ चिल्ला रही थीं—मूर्ख है...गूँगा...पागल....। पागल ? वह सचमुच पागल होता जा रहा था ! ज्ञात हुआ मानो मंगलागौरी भी उसे चिढ़ा रही थी—मूर्ख है...गूँगा...पागल।

उसने पैर पटका और ओंठ चबाकर उलटे पाँव लौट आया। देखते-देखते परिणयके आनन्दमय उल्लासमें कोहराम और रुदनका हाहाकार फैल गया। दूल्हा रूठकर चला गया था।

तबसे फिर ससुरालकी ओर ताका तक नहीं। पता नहीं मँगला गौरीका क्या हुआ ? अपने तो भाग आया घर। जब पिताजी मरे तो सीधा वृन्दावन चला गया और वहाँसे काशी आ बसा। नाम बदल दिया; चन्द्रचूड़ अब भंगड़ बन गया। ऐतरनी-बैतरनी के तालाबपर अखाड़ा खोला। युवकोंको कुश्ती और तलवारके दाँव सिखाता, भाँग छानता तीन समय और रातको कभी-कभी त्रिलोचन घाटकी लम्बी मढ़ीमें पड़ रहता और निर्भय सिंह-सा पैर पसारकर सोता। किन्तु आज इतने दिनों बाद वही नारी दिखायी पड़ गयी आगकी लपटोंमें जलती ! पुराणपुरी, तुमने बुझी आग आज फिर सुलगा दी है।

पता नहीं वह कहाँ है ? बापके घर हो या कहीं और ? मर ही न गयी हो, कौन जाने ?

इस तपस्यासे शान्ति नहीं होने की। शान्ति पानेका जो पथ था, उसे तो तुम पहले ही भूल चुके, भटककर दूसरी राह चले आये। इस साधनाकी परिणति विक्षोभ और आत्म-प्रवंचना है।

भंगड़ सो न सका। उठ बैठा तो एक चेलेने पूछा—'आज नींद नाहीं आवत हौ काऽ गुरूऽऽ ?'

'हाँ रे, आज नींद नाहीं आवत हौ। कै बजलऽ ?'

उसने कह तो दिया, परन्तु मनने कहा—'आत्म प्रवंचना' ही तो। जो जीवनका सत्य है, उसे भूलकर एक कृत्रिम वैराग्यका अभिनय आत्म-प्रवंचना नहीं तो और क्या हो सकता है ?

सहसा घण्टेकी आवाज वायु-मंडलमें थिरकती फैलती सुनायी पड़ी; आधी रातका गजर बज रहा था।

'ई गजर केकर हौ रे चेलवा ?' उसने पूछा।

'अउर केकर होई, नवाब साहेबके इहाँसे बजै शुरू भयल हौ। जबसे ई नबाब अइलन, सारा नकसै बदल गयल।'

'कौन नवाब साहब ?' जैसे झटका लगनेसे सोतेसे जागता हुआ उसने पूछा।

'मुझसे पूछो, मैं बताऊँ'—कहते हुए शिवनाथ सिंह अखाड़ेपर चढ़ता दिखायी पड़ा। उसके साथ बहादुर सिंह भी था।

इतनी रात गये अचानक इन दोनोंको आते देख भंगड़ चौंक उठा। क्या कोई नयी विपत्ति आ गयी ? क्या बात है ? वह उठ बैठा और जिज्ञासातुर हो उस अँधेरेमें ही चारो ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा।

'घबराओ मत। आ रहे हैं बाबू जगतसिंहके दरबारसे। घर जा रहे थे। रास्तेमें सोचा कि जितनी देर घर जानेमें लगेगी उतनेमें तो तुम्हारे यहाँ पहुँच जायँगे। बस, रास्ता बदल दिया और चले आये।' शिवनाथ सिंहने अपने साफेकी छोरसे पत्थरकी फर्श झाड़ी और उसीपर

बैठ गया। बहादुर सिंहने कुएँके पास जाकर कपड़ा उतारा, साफेको मोड़कर तकिया बनाया और सिरके नीचे लगाकर लेट रहा।

'किसकी बात पूछ रहे थे ? मुझसे पूछो, बताऊँ....'

'यह नया गजर कहाँसे बजने लगा है ?'—भंगड़ने आश्वस्त होकर पूछा।

''एक दिन तो पहले भी बताया था। शायद तुमने सुना न हो। अवधका नवाब वजीर अली गद्दीसे उतारकर बनारस भेज दिया गया है। वह कबीरचौरापर राधा-स्वामीके बगीचेमें रहता है। उसकी जगह उसका बूढ़ा चाचा सआदत अली, जो पहले यहाँ रहता था और अचानक एक दिन लापता हो गया था, अवधका नवाब बनाया गया है। वजीर अलीको पेन्सन मिलती है। लेकिन वह रहता बड़े ठाट-बाटसे है। शहरमें उसका रंग ऐसा जम गया है जैसे वही सचमुच नवाव है। इधर उसने बनारसमें आकर नौकरोंकी भर्त्ती बड़े पैमानेपर की है। गुरु, हम तो समझते हैं इसमें चाल है। यह नौकरोंकी भर्त्ती नहीं है, यह सिपाहियों की भर्त्ती है। फिर शहरके कुछ मुसलमान भी उसके यहाँ जुटने लगे हैं। मैंने तो यहाँ तक सुना है कि शिवाला मुहल्लेका कोई इज्जत अली है, उसने अपनी बहिन भी पहुँचा दी है युवक नवाब-की खिदमतमें। हाँ हाँ....चरणदासी बनी रहेगी....।'

भंगड़ मुस्कराया। मन्द-मन्द झिलमिलाते तारोंके हलके प्रकाशमें शिवनाथने देखा, सदाकी भाँति उन्मुक्त हास्यवाला भंगड़ आज शान्त और गंभीर था। उसे मुस्कराते देख शिवनाथ सिंह बोला—'वजीर अली सारा काम नवाब जैसा ही करता है। पता नहीं चलता कि वह गद्दीसे उतारा गया है। वैसे ही दरबार लगता है, गजर बजता है, हवाखोरीके लिए सवारी निकलती है। हाथी, घोड़े, पैदल, सब राजाओं जैसा.... ।'

'हूँ'—भंगड़ने कहा और चुपचाप शिवनाथकी ओर देखता रहा।

रात आधीसे अधिक बीत चुकी थी। तबतक अखाड़ेपरके अन्य लोग भी सो चुके थे। थका हुआ बहादुर सिंह भी दिन भरकी दौड़-धूपसे परिश्रान्त हो पड़ते ही खुर्राटे भरने लगा। इधर-उधर देखकर शिवनाथ सिंहने पूछा—'कुछ नयी बात सुने ?'

'नहीं तो, क्या है ?'

''उसीके लिए तो आधी रातको चला आ रहा हूँ। हमारे साथी मीरजापुरमें गिरफ्तार हो गये। अब तुम्हारी बारी है! आज तुम्हें गिरफ्तार करनेवालेको पाँच सौ कलदार रुपया इनाम देनेका ऐलान किया गया है। बाबू साहबने कहा है, जरा बचकर रहें या कहीं हट-बढ़ जायँ। मैं समझता हूँ यहाँ रहना खतरेसे खाली नहीं है। सिपाही कभी भी धावा कर सकते हैं।'

'यहाँ उनके मरे बाप भी धावा नहीं कर सकते और यदि करें भी तो भंगड़का बाल-बाँका नहीं होनेका। यह पवनकुमार किसलिए हैं? मुझे बस इन्हींका आसरा है। फिर तुम लोग हो ही। जो आगे बढ़ेगा भी, अपना शीश उतारकर सीढ़ीपर पाँव रखेगा....'—भंगड़ अचानक उत्तेजित हो उठा। क्षण भरमें वह अपनी स्वाभाविक गतिमें आ गया, जैसे सपना देखते-देखते अचानक जाग उठा हो।

शिवनाथने फिर कहा—'कभी यहाँ अखाड़ेपर, कभी घाटपर, कभी हमारे यहाँ ब्रह्मनालमें....कभी कहीं और....। जरा बचाकर रहना है। फिर हमलोग तो साथ रहेंगे ही। हमें देखकर ही कोतवालीके सिपाही रास्ता बदल देते हैं और कतराकर बच निकलते हैं। मेरे घर-पर कोई खतरा नहीं; चलो, वहीं चले चलो। अभी रात है। किसीको पता न चलेगा। वहीं रहो, आँधी चली जाय तो लौट आना।'

'नहीं भाई, तुम्हारा घर ठीक नहीं। वहाँ अगल-बगल बहुतसे बवालिये लोग रहते हैं। किसीने इधरकी उधर लगा दी तो बैठे-बैठाये फँसे। नहीं, यह नहीं होनेका। जब गिरफ्तार ही होना होगा तो दस-पाँचको लेकर जाऊँगा कि छिपकर रहूँगा। तुम भी क्या कह रहे हो? हाँ, मेरी मढ़ी ही ठीक है। बगलमें गंगाजी हैं। उनकी गोदमें मुझे कोई भय नहीं। यदि मरूँगा भी तो उन्हींके आँचलमें....।'

शिवनाथ सिंह इस व्यक्तिका स्वभाव जानता था। चुप रह गया। बहुत देरतक बैठे-बैठे वे सिपाहियोंसे बचनेपर परामर्श करते रहे।

——

६

परिचय बढ़ने लगा

गर्मीके दिन थे और शामका समय। उस दिन प्रचण्ड लूह और बवण्डरका भयंकर साम्राज्य था। शाम तक भी लोग बाहर निकलनेका साहस न करते थे। ऊँची हवेलियोंके बारान्दों और खिड़कियोंपर लगी खसकी टट्टियोंपर छिड़काव करते-करते तंग आकर नौकर चुपचाप मालिकोंकी विलासिता, अकर्मण्यता और उनकी फरमाइशोंपर कुढ़कर मन ही मन गालियाँ देते। शहरके भीतरी मुहल्लोंकी गलियोंमें जहाँ सूर्यकी किरणें भी पहुँचनेमें सकुचाती थीं, मनचले शौकीन लोग कसेरू और बिहीदानेमें केसरिया छाननेकी तैयारी कर रहे थे।

उसी समय अचानक कबीरचौराके माधव स्वामीकी बागवाली कोठीमें पाँच बजेका गजर बजा। घण्टा बजाकर दरवाजेका संगीनधारी सन्तरी अपनी जगह आया ही था कि ऊपर बुर्जियोंसे नौबत और नीचे नगाड़ेकी आवाज सुनायी पड़ी। सिपाही सतर्क हो सीधे तनकर खड़े हो गये, नौकरोंने रास्ता साफ कर दिया और पल भरमें आलसी नशेबाजोंका समूह तीन तेरह हो गया।

बाजेवालोंके पीछे मुगल सिपाही बन्दूकें लिये आते दिखायी पड़े। युवक नवाब हवाखोरीके लिए निकल रहा था।

घुड़सवारोंके पीछे कड़ाबीन लिये पैदल जवान थे और उनके पीछे हाथीपर सुवर्ण-मंडित हौदेपर वजीर अली बैठा था। वजीरके हाथीके पीछे दो-तीन हाथियोंपर उसके मुसाहब और प्रधान कर्मचारी थे जो नवाबके पदच्युत होनेपर भी उसका साथ न छोड़ सके थे और स्वामि-भक्ति तथा नमकहलालीके ख्यालसे लखनऊ छोड़ बनारस आ बसे थे। इनके पीछे बनारसी बरकन्दाजोंका भीड़ थी जो बल्लम-बरदारों और दूसरे निम्न कर्मचारियोंके साथ असंयत और बे-तरतीब ढंगसे चलकर अपनी अशिक्षा और गँवारूपन प्रकट कर रहे थे।

फाटकपर खड़ी भीड़ने वजीर अलीको देखते ही सलामी देना शुरु किया। एक बार जोरसे गगनभेदी जय-जयकार हुआ जिसे दबोचते हुए नगाड़ेका उच्च स्वर वायुमण्डलमें फैल गया।

नवाबकी सवारी शहरकी ओर चली। सड़ककी पटरियों और दोनों ओर दूकनोंपर बैठे साव-महाजन हाथीके घण्टे और बीनकी आवाज सुनते ही खड़े हो जाते। सवारी सामने आते ही झुककर फर्शी सलाम करते। हजारों मनुष्योंके हृदयमें विस्मय, श्रद्धा, प्रतिष्ठा, विश्वास और अन्य भावोंको दृढ़ जमाता नवयुवक वजीर सबका अभिवादन स्वीकार करता बढ़ जाता।

'राजा उदित नारायनने क्या कहा?'—वजीर अलीने अपने बगलमें बैठे इज्जत अलीसे पूछा। शिवालय मुहल्लेके इस साधारण मुसलमानको नवाबके बगलमें हाथीपर बैठे देख लोग हैरान होते। उसके भाग्योदयकी बातोंके सिलसिलेमें नाना प्रकारकी चमत्कारी घटनाएँ बताते; किन्तु उस सुन्दरीका मर्म किसे ज्ञात था जिसके कारण वजीर अली इस प्रकार इस नाचीज मुसलमान जवानपर प्रसन्न हो उठा था।

'हुज़ूर! वह तो सुनते ही काँपने लगते हैं। मैंने उनसे हुज़ूरका पैगाम सुनाया जिसे सुनकर उन्हें जैसे जड़ैया आ गयी हो। असलमें

राजा उदितनारायनका खून इतना ठण्डा हो चुका है कि कम्पनीके खिलाफ वह जबान नहीं हिला सकते, तलवारकी बात तो दूर रही'—इज्जत अलीने कहा।

'वह इतना डरते क्यों हैं? उनसे यह नहीं कहा कि अगर नवाबकी मददमें रहोगे, उसी तरह जिस तरह तुम्हारे पेश्तर के राजा, तो तुम्हें भी वही दर्जा मिलेगा जो राजा बलवन्तसिंहको हमारे बाप-दादोंने दिया था। बल्कि हम, अगर अपने काममें कामयाब हो गये, तो उनका राज्य फिर पहले जैसा ही बढ़ा देंगे। बुरे वक्त में मदद देना...।'

'मैंने रत्ती-रत्ती अर्ज की आलमपनाह? हुजूरकी एक-एक बात हजार-हजार तरीकेसे समझाया, मगर, राजा साहब कमरवख्तका भेजा ही कुछ ऐसा कुन्द है कि जरा भी ख्याल न किया। यही कहते रहते थे अच्छा, ठीक है। सोचा जायगा। नवाब हमारे मालिक हैं, कम्पनी मुलुककी बादशाह है।'

वजीर अलीने एक बार निराश हो पलकें नत कर लीं, किंतु तत्क्षण उसका आकर्षक मुखमण्डल दुगनी चमकसे विभासित हो उठा। गालोंपर एक सुर्खी छा गयी और आँखोंमें मादकता—'इज्जत! मैं समझता हूँ शिवालेमें तुम लोगोंका रहना ठीक नहीं। यहीं चले आओ। घर लौट कर कल्ब अलीको भेज देना। वह गौहरको लेता आवेगा।'

सौन्दर्य सौभाग्यका सूचक है—वजीर अलीने सोचा—गौहरके प्रवेश करते ही यह रिक्त जीवन सुख और सौभाग्यसे भर उठेगा।

गौहर? एक बार इज्जत अलीके नस-नसमें रक्तकी धारा दौड़ गयी। उसने नजर बचाकर नवाबके चेहरेपर दृष्टि डाली और झट आँखें हटाकर बोला—'हुक्म सिर-माथेपर। खादिम तो हुजूरकी जूती है। उसपर इतनी इनायत, उसके भाग!'

जुलूस घण्टे भर तक नगरके विभिन्न भागोंसे होता हुआ चौकतक

आया। कोतवालीके सिपाहियों और नायबोंने नवाबको झुककर सलाम किया। उसके इशारेपर एक कर्मचारीने हाथीपरसे ही कुछ रुपये बरसाये। जुलूस लौट पड़ा।

थोड़ी दूर चलकर सवारी लौटी होगी कि तीन-चार घुड़सवार सामने आते दिखायी पड़े।

'ये कौन गुस्ताख हैं?'—वजीरने पूछा।

बात यह थी कि पेंशन पाकर बनारस भेजे जानेके बाद भी वजीर अलीके व्यावहारिक सम्मानमें कुछ अन्तर न पड़ने पाया था। शहर बनारसमें उसकी वही प्रतिष्ठाकी जाती थी जो लखनऊमें उसे प्राप्त थी। उसकी सवारी निकलनेके समय सड़कें साफ रखनेका हुक्म चेरीने पहले ही दे रखा था। यद्यपि डेविस जैसे कुछ अँगरेज अधिकारी वजीर अलीके इस सम्मानसे भयभीत रहते और ईर्षा करते, किन्तु प्रकटमें कुछ कहा न जाता था। उसके लिए पोलिटिकल एजेन्ट चेरीने विशेष सुविधाएँ दे दी थीं जिससे लोंगोमें यह भ्रम उत्पन्न होते देर ही न लगी कि वास्तविक नवाब वजीर अली ही है और वही अवधके सूबेका मलिक है। स्वयं वजीर अलीको यह भ्रम विश्वासका रूप दे चुका था इसलिए जब आज उसने अपने रास्तेमें कुछ घुड़सवारोंको आते देखा तो उसका शासक-हृदय एक बार दर्प दलित हो भभक उठा।

'कौन हैं ये सिपाही?'—उसने फिर पूछा।

घुड़सवार तब तक निकट आ चुके थे। उनमें एक तो अठारह बीस वर्षका सुकुमार सुन्दर नवयुवक था जो वजीरअलीसे उम्र, सौंदर्य और कमनीयतामें किसी प्रकार कम न था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, उन्नत ललाट, चमकता चेहरा एक बार वजीर अलीकी आँखोंमें समा गया। साथके सवार अधेड़ उम्रके और उसके अंग-रक्षक-से थे। वे सब साफा बाँधे और शस्त्रसज्जित थे।

'हुजुर, यह बाबू जगतसिंहके लड़के लक्ष्मीनरायण सिंह हैं। साथमें उनके सिपाही और खिदमतगार हैं। उनमें जो वह देव-सा

ऊँचा और लम्बा-चौड़ा है, लाल अँगरखेवाला, पीली पगड़ी, ऐंठी मूँछें, वह शहरका एक मशहूर बाँका है। नाम है शिवनाथ सिंह। यहीं पासके मुहल्ले ब्रह्मनालमें रहता है। पाजी शातिर बदमाश है। पता नहीं, बाबू जगत सिंह इसे कैसे अपने पास आने-जाने देते हैं? दिन-दहाड़े लूट लेता है। तीसरे सवारकी ओर इशाराकर उसने बताया कि वह रेजिडेण्ट चेरीके ज्योतिषीका पुत्र गंगाधर है, जातिका बरहमन है और जगत सिंहका खास आदमी है।

'जगत सिंहका लड़का…कौन जगतसिंह? बलवंन्त सिंहका भतीजा? वही जो अपने हकके लिए कोशिश कर रहा है?'

'बेशक आलीजाह! बहुत नेक और फकीर आदमी है। उसके ताल्लुकात इतने अच्छे हैं कि शहरके सभी लोग उसकी बदनसीबीपर रोते है। मेरा वश चले तो मैं तो …।'

'इजत! जगतसिंह कामका आदमी हो सकता है। मैं बहुत पहले ही इसे अपने मन्सूबोंका पहला पाया बनाना चाहता था। चाहता था कि वह खुद मेरे सामने आकर खड़ा होता और अपना दुखड़ा कहता। मैं उसका साथ देता, या यों कहो उसका साथ करता। उसे मिलाकर मैं बनारसके सभी जमींदारों और बाबुओंको मुट्ठीमें कर सकता था। छः-सांत महीने हो गये, पर बदनसीब आज तक आया नहीं। देखता हूँ वह कम शानवाला नहीं है।'

फिर कुछ रुककर कहा—'रोको उन्हें यहाँ, पास बुलाओ, मेरे पास।'

सवारी रुक गयी। लक्ष्मीनारायणका घोड़ा पास आ गया तो इज्जत अलीने उसे निकट बुलाया। शिवनाथ सिंहने लक्ष्मीनारायणको आगे बढ़ते देखा तो साथ हो लिया। दोनों नवाबके पास चले गये।

गलेसे मोतियोंकी माला निकालकर वजीरने इस तरह फेंका कि वह लक्ष्मीनारायणके गलेमें बैठ गयी। वह अप्रतिभ होकर ताकता रह गया।

'तुम बाबू जगत सिंहके बेटे हो!'

'हुजूर।' बगलके खड़े शिवनाथने उत्तर दिया।

'और तुम ?'

'जहाँपनाहका एक बेदामका गुलाम'—बाँकेने तत्काल उत्तर दिया। वजीरअली मुस्कुराया और एक अँगूठी निकालकर उसने शिवनाथकी ओर फेंकी जिसे उसने हाथ बढ़ाकर ले लिया।

आज मार्गमें नवाब द्वारा इस प्रकार अचानक सन्मान प्राप्त करते देख शिवनाथ सिंहकी छाती गज-भर चौड़ी और ऊँची हो गयी। उसने तीन बार झुककर सलाम किया! लक्ष्मीनारायण भी झुका। एक बार फिर उसकी आँखें नवाबकी आँखोंसे जा टकरायीं। जब वह चला गया तो शिवनाथ सिंहने कहा—'मालूम होता है साक्षात कामदेव है। गुलाबके फूल जैसा मुखड़ा। वाकई नवाब होनेके काबिल हैं। कोई हर्ज नहीं मालिक! सरकार अगर नवाबका साथ देंगे तो शिवनाथ सिंह भी बोटी-बोटी कटवाकर दिखा देंगे कि मर्द बचनके एक होते हैं। आइये घर चलें। सरकारसे कहना होगा।'

गंगाधरको कुछ न मिला। वह अपनी असफलतापर दुखी था, किन्तु सहसा एक बिजली उसके मनमें कौंध गयी—'मेरा रत्न अनमोल है, संसारमें एक। त्रिवेणी, क्या कभी मुझे स्मरण करती हो!

तब वे सब घरकी ओर लौट पड़े।

———

७

शनि ग्रहने खींच ही लिया

जगतसिंह अपने नयी कोठीकी बारहदरीमें बैठे थे। फराश हुक्का भरकर रख गया था। वह चुपचाप हुक्केकी लम्बी सटक थाम तम्बाकूका आनन्द लेते और चिन्ताग्रस्त-से उड़ी-उड़ी आँखोंसे सामने अपने बनवाये मन्दिर और तालाबकी ओर देख रहे थे।

यद्यपि वह बूढ़े न हुए थे, किन्तु स्वास्थ्य खराब हो चुका था। अवस्था चालीस पैंतालीसकी ही थी, किन्तु देखनेमें दस-पद्रह वर्ष अधिक के लगते। ललाटपर झुर्रियोंकी हलकी रेखाएँ पड़ चुकी थीं। आँखोंके नीचेका प्रदेश काला हो रहा था। गालों और ठुढ्ढीकी हड्डियाँ चेहरा भरा रहनेपर भी उभड़ आयी थीं। मूँछके बाल खिचड़ी हो रहे थे।

जगत सिंह राजा बलवन्त सिंहके चाचा बाबू दशारामके पौत्र थे। मनसाराम और दशाराम सगे भाई थे। यद्यपि बनारसका राज्य मनसाराम और बलवन्त सिंहने अपने पराक्रमसे प्राप्त किया था, किन्तु इस कार्यमें उन्हें अपने भाइयों और दूसरे पट्टीदारों द्वारा सहायता भी मिली थी।

अपनी इस सहायताका गर्व पट्टीदारोंको था, किन्तु बलवन्त सिंहकी दृष्टिमें उसका महत्त्व अधिक नहीं था। यही कारण था कि केरा और मँगरौरका इलाका दायम खाँसे छीननेका पुरस्कार प्राप्त करनेके बदले, जब दशारामने विद्रोही रुख अपनाया तो राजा बलवन्त सिंहने उन्हें गिरफ्तार कर लिया था और बादमें अन्य लोगोंके बीच-बचावसे छोड़ दिया था। दशारामके लड़के शिवलाल सिंहकी भी राजा बलवन्त सिंहसे खुले दिलसे पटती न थी। कपटकी कैंचियाँ दोनों ओरसे चला करतीं। फिर भी इन पिता-पुत्रोंकी सहायताका विचारकर राजा बलवन्त सिंहने इन्हें शिवपुर और कटेहरका परगना जागीरके रूपमें दे दिया था। दशारामने शिवपुरमें एक कोट बनवाया, अस्त्र-शस्त्र संग्रह किया और दिन-दिन अपना विस्तार आरम्भ किया। राजा यद्यपि इस प्रवृत्तिको दबा देना चाहते थे, फिर भी चुप रह गये। उनकी मृत्युके बाद जब चेतसिंह राजा हुए तो यह विरोध अधिक उग्रतर होता गया। शिवलाल सिंह चेतसिंहको अवैध समझकर बिरादरीमें उनके विरुद्ध प्रचार करते और किसी भूमिहारको उनके साथ न खानेके लिए समझाते। अन्तमें एक दिन राजा चेतसिंहने शिवलाल सिंहको पकड़ने और उन्हें दण्ड देनेके विचारसे उनके कोटपर घेरा डलवा दिया। शिवलाल सिंह अपने पुत्र जगतसिंहके साथ बनारससे भाग खड़े हुए। वे कई जगह भटकते नेपाल चले गये। नेपालमें उन्होंने अनेक व्यापार किये, किन्तु कुछ लाभ न हुआ। बहुत दिनों तक दर-दर भटकते रहनेके बाद जब उन्हें समाचार मिला कि राजा चेतसिंह अँग्रेजी सेनासे पराजित होकर कहीं चले गये, बनारसपर कम्पनीका अधिकार हो गया और महीप नारायण सिंहको गद्दीपर बैठाया गया है तो वह घरकी ओर दौड़े। उन्हें आशा थी कि मनसारामके सगे भाईके वंशधर होनेसे गद्दी उन्हें ही मिलनी चाहिये थी। मनियार सिंह थे हकदार, किन्तु वह चेतसिंहका साथ देनेके कारण अँगरेज गवर्नरका कोप-भाजन बन चुके थे। अतः महीप-नारायणके मुकाबले अपना अधिकार प्रबल जान एक बार उनकी अभिलाषा पुनः हिलारें लेने लगीं। किन्तु अँगरेज कच्चे खिलाड़ी न

थे। 'राजा बनानेवाले' कूटनीतिज्ञ धूर्त औसान सिंहकी सहायतासे महीप नारायण गद्दीपर अधिष्ठित हो चुके थे। जगतसिंहने अथक प्रयास किया, कलक्टर जोनाथन डंकनके मार्फत कम्पनीकी कौन्सिलको लिखा, गवर्नरसे मिलने स्वयं कलकत्ता भी गये, किन्तु उद्देश्य-लाभ न हो सका।

हाँ, इतने प्रयत्नोंका एक फल अवश्य मिला। उन्हें एक हजार रुपये मासिक की पेंशन मिलने लगी। बारह हजार वार्षिक पेंशन पाकर वह बनारसमें रामकटोराके निकट रहने लगे। वरुणा नदीके ऊपर, चौकाघाट और घौसाबादमें—अपनी छोटी जमींदारीकी सीमापर उन्होंने एक छोटा-सा बाजार बनवाया। सारनाथके स्तूपोंको खोदवाकर वहाँकी ईंट-पत्थरोंसे इस बाजारमें एक हवेली बनवायी। हवेलीके उत्तर-पश्चिम एक पक्का तालाब और शिव-मन्दिर भी बनवाया। कुछ हाथी-घोड़े और सौ-डेढ़ सौ आदमियों की टुकड़ी लेकर वह शेष जीवन 'बाबुआना' ढंगपर बिता रहे थे।

राज्य प्राप्त करनेके लिए जगत सिंहने चारो ओर दौड़ लगायी थी, किन्तु सभी ओरसे उन्हें निराशा ही मिली थी। हताश हो यद्यपि उनका मन मर चुका था, फिर भी मौका पाकर अपनी इस अतृप्त कामनाकी पूर्तिके लिए प्रयास करना उन्होंने न छोड़ा। उनकी इन हरकतोंसे राजा उदित नारायण इनपर बहुत ही अप्रसन्न रहा करते। राजा और बाबूका पारस्परिक मनमुटाव और आन्तरिक द्रोह रजिडेण्ट चेरी और कलक्टर डेविस भी जान चुके थे। दोनोंकी प्रतिस्पर्धा, ईर्षा और घृणा भीतर ही भीतर अपनी चरम सीमा छू रही थी।

इस प्रकार एक ओर जब अपने उद्देश्यमें असफल, जीवन-युद्धमें हताश और पराजित जगतसिंह जब स्वर्णिम भविष्यके लिए उपयुक्त अवसरकी ताकमें बैठे थे और दूसरी ओरसे आर्थिक संकट भयानक रूपसे घहराता बढ़ रहा था, बनारसमें वजीर अली भयानक पुच्छल तारेकी भाँति चमक उठा। जीवनकी इस सांध्य बेलामें जब विपत्तियोंके मेघा-डम्बरमें उनकी व्याकुल आत्मा हाहाकार कर रही थी, वजीर अली

शनिग्रहकी भाँति दूर चमकता हुआ उन्हें अपनी झिलमिलाती प्रखर ज्योतिसे आकृष्ट करने लगा।

संध्याका झुटपुटा हो चला था। सामने खेतोंसे चरकर घर लौटती हुई गायोंके गलेमें बँधी घंटियोंका स्वर दूरागत वंशीकी झंकार-सा सुनायी पड़ता। वरुणाकी छातीपर मचलती छोटी डोंगियाँ इधर-उधर इठला रही थीं। आस-पासके मन्दिरोंसे शंख और घड़ियालकी आवाज भी सुनायी देने लगी। बाजारके छोटे बच्चे एकत्र होकर उच्च स्वरमें चिल्लाते हुए 'श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन……' का पाठ करने लगे।

संध्या पूजनका समय जानकर बाबू जगत सिंह उधर बारहदरी-से नीचे उतरे; इधर हवेलीके फाटकमें तीनों सवार सायंकालिक वायु-सेवनसे घूमकर लौटे। कुँवर लक्ष्मीनारायण सबसे आगे था, उसके पीछे शिवनाथ सिंह और गंगाधर थे। तीनों वेगसे अस्तबलके फाटक-पर आये। अभ्यस्त सईस समय जानकर सदाकी भाँति पहलेसे ही तैयार थे। तीनो वहीं उतर गये। घोड़े अस्तबलमें चले गये और तीनों सवार बैठकखानेकी ओर बढ़े। बारहदरीसे उतरे हुए बाबू जगतसिंहने उन्हें देखा—कुछ और ही उत्साह था, सभीके चेहरे चमक रहे थे, मानो हँस रहे थे। सबकी बाछें खिली थीं, रोम-रोम उत्फुल्लित। किन्तु उससे भी आनन्दपूर्ण, उल्लसित और प्रभावशाली वह मोतियोंका हार था जो इस अँधेरेमें भी कुँवरके गलेमें पड़ा अपनी प्रभा छिटकाकर मानों इनकी मन्द मतिपर हँस रहा था।

'सरकारका वैभव बढ़े, दिन-दूना रात चौगुना विस्तार ह. आखिर मान लिया न लोहा'—शिवनाथ सिंहने मनका भाव न सँभाल पानेसे भावावेशमें कहा।

'रास्तेमें रोककर माला पहना दी'—गंगाधरने दाद दी।

'बड़ा ही सुन्दर जवान है……'—लक्ष्मीनारायणने भी अपनी बात कहकर दोनोंका अनुसरण किया।

'किसकी बातें कर रहे हो ?''''मैं कुछ न समझा''''—जगत-सिंहने पूछा।

'नवाब वजीरअली''' ।' शिवनाथ सिंह बोला—'बैठिये तो सारी बातें बताऊँ'''' ।'

जगत सिंह आगे-आगे चलने लगे। एक बड़े-कमरेमें विशाल शमादान जल रहा था। कमरा सजा हुआ था और अपने स्वामीके वैभवका साक्षी था। एक मुलायम गद्देपर जगत सिंह बैठ गये। उन्हें अब पूजा-पाठका स्मरण न रह गया था। वजीर अलीकी बातने सारी बातें भुला दी। शिवनाथ सिंह दूसरी ओर बैठा। उसके दो ओर गंगाधर और लक्ष्मी नारायण बैठ गये। तब विस्तारसे उन्होंने नवाबसे मिलने और उपहारमें उसके हार देनेकी सारी बात कह डाली। एक कहीं चूकता तो दूसरा कहने लगता। जगत सिंह मानों सारी बातें पी जाना चाहते थे। उनके पुत्रका सम्मान ! नवाबने भरी सड़क उनके लड़केको हार पहनाया !! उनकी छाती हाथ-भर चौड़ी हो गयी।

'अच्छा, जब उन्होंने दोस्तीका हाथ बढ़ाया है तो लाज निभानी ही पड़ेगी''''''''क्यों क्या राय है तुम्हारी'—उन्होंने शिवनाथ से पूछा।

'इसमें रायकी क्या बात ? आप स्वयं समझदार हैं। अपनी और उनकी इज्जतका ख्यालकर, जैसा भेजा जाता हो, नजर-भेंट करिये। हमलोग लेकर नवाबके यहाँ जायँ। अगर आपकी और उसकी बात बैठ गयी तो गोटी बैठ जायगी''''।'

'ठीक कहते हो, पर यहाँ दो बातें बड़ी बेढब आ पड़ी हैं। एक तो हमारी हालत देख ही रहे हो। हाथ फँसा हुआ है। केवल दिखा-वटी आन-बानमें मारा जा रहा हूँ। यह हाथी-घोड़े, लाव-लश्कर''' इनपर एक हजार रुपये होते ही क्या हैं ? चटसे खर्च हो जाते हैं। महाजनोंका बोझ बढ़ता जा रहा है। गोविन्दचन्द्र अपने रुपयोंके लिए तकाजा कर रहा था। उसका मूल ज्योंका त्यों पड़ा था कि, गोवर्धन

दासके रुपये सिरपर चढ़ गये। उसने भी आदमी भेजा था। दोनोंको किसी तरह टाला····खैर यह तो अपनी विपद है। उधरका हाल भी समझ लो। नवाब वजीर अली भी मेरी ही तरह अभागा है। राज-पाट तो छिन गया, पेन्शनपर गुजर करता है। वह अपनी सहायता नहीं कर सका तो मेरी क्या करेगा? फिर मान लो, अगर हमलोगोंने मिलकर कोई प्रयास किया भी और उसमें असफल रहे तो····? क्या अंगरेज हमें यों ही जीता छोड़ देंगे? पता नहीं क्या-क्या करेंगे? ऐसी हालतमें····तुम स्वयं समझ लो········क्या वजीर अलीकी दोस्ती हितकर हो सकती है?'

जगत सिंह चुप हो गये। तीनों उनका मुँह देखते रहे। कोई कुछ न बोला। अन्तमें उन्होंने ही फिर कहा—'कोई हर्ज नहीं, एक धक्का और सही। जैसे तिरसठ वैसे चौंसठ। जहाँ इतना कर्ज हुआ, वहीं कुछ और सही। घर जाते समय जरा महाजनोंके यहाँ होते जाना। गोविन्द चन्द्रको ही रखो··· दोनोंमें वही ठीक है। कहना, बुलाया है। उससे कुछ नकदका हेर-फेर करूँ, तब काम चले········।'

बड़ी देरतक वे मन्त्रणा करते रहे। अन्तमें जब रात एक पहर बीत गयी तो वे उठे। जगतसिंह अपने शिवालयमें पूजा करनेके लिए वेगसे बढ़ गये। शिवनाथ सिंह भी उठा और गंगाधरको साथ लेकर भंगड़की कुटियाकी ओर रवाना हो गया।

———

८

हिम्मत हो तो पकड़ लो

उस दिन भंगड़का मन लग न सका। दिन भर वह उदास था। रह-रहकर एक भूली स्मृति अचानक सजल मेघोंके बीच बिजली-सी चमक जाती और उसके क्षणिक. किन्तु प्रखर ज्योतिमें भंगड़ देखता मंगलागौरीका विषादयुक्त यौवन, निष्फल सौन्दर्य और मलीन चेहरा।

जिसे छोड़कर यहाँ चले आये एक युग हो गया, जिसकी आकृति-की हल्की पड़ती रेखा भी स्मृति-सीमाके पार जा चुकी है, वह स्वयं क्यों बार-बार आकर मनमें बैठ जाना चाहती है ? यह दुर्बलता कैसी ? मैं चिर ब्रह्मचारी ! फिर यह व्याकुलता कैसी ? एक स्त्री के प्रति इतना ममत्व !

स्त्री, नारी, रमणी, कामिनी क्या-क्या नाम हैं तेरे ! किन्तु तू है क्या ? किन तत्वोंसे गढ़कर बनायी गयी है ? लोग कहते हैं नारी विधाताके मनकी एकान्त क्रीड़ाकी साकार मूर्ति है; उसके विलासका पार्थिव स्वरूप; उसकी कामनाका केन्द्र, जहाँसे उसने एकसे अनेक हो जानेका सूत्र जालमें बाँधकर छितरा दिया। तब यह उसके प्रति अनुराग कैसा ?

दूसरे दिन जब संध्या होनेमें कुछ देर थी तो उसने शीघ्र ही सारे कार्य निपटा लिये। जवानोंको मेहनत करानेका काम उसने शिवनाथ सिंहपर छोड़ दिया। आज बूटीमें भी उसका मन न रम सका। दूसरा दिन होता तो सीलके सामने बैठकर बिना छाने भंगड़ उठनेका नाम न लेता, किन्तु आज उसे विजयाकी सूखी-हरी पत्तियोंमें भी कोई आकर्षण न दिखायी पड़ा। बिना किसीसे कुछ कहे उसने अपनी कमरमें खुखुड़ी बाँधी, एक कंधेपर गँड़ास तथा दूसरे हाथमें लोहांगी लिया और सबकी आँख बचाकर बाहर निकल पड़ा।

जबसे वारेन हेस्टिंग्सने पुराणपुरीको आशापुरवाला आश्रम दिला दिया था, वह वहीं रहा करते थे। पुराणपुरीने वहाँ एक तालाब और उसके घाटपर एक सुन्दर मन्दिर बनवाया जिसमें अपने इष्टदेव-की मूर्ति स्थापित की। तालाबके पीछे आम और अन्य वृक्षोंका विशाल बाग था जिससे इस स्थानकी रमणीयता बढ़ गयी थी।

ऐतरनी-बैतरनीके नालेसे यह स्थान प्रायः २-३ मील दूर था। रास्तेमें वरुणा नदी पड़ती थी। यद्यपि वरुणामें अभी पर्याप्त जल था और धार भी तेज थी, किन्तु भंगड़को उसकी परवाह न थी। पास ही बँधी नावसे वह पार उतर गया। घाटसे ऊपर चला कि सूर्य अस्ता-तलकी ओर बढ़ चले थे। आसपासके गाँवोंकी गायें घर लौटनेकी तैयारीमें भूली-भटकी और दूर चली गयी ढोरोंको उच्च हुंकारसे बुला रही थीं। रास्तेमें खेत बीरान थे। कहीं कोई दिखायी न पड़ता था। पेड़ोंपर बसेरा लेनेवाले पक्षी आकाश मार्गसे आते मधुर कलरव कर रहे थे। भंगड़ने एक बार पशुओंकी प्रेम-विह्वलता देखी। नदीकी उज्ज्वल धारा-सी आह्लादमयी और चंचल, फिर द्रुत गतिसे आगे बढ़ने लगा।

दम भरमें वह आशापुर तालाबपर पहुँच गया। सूर्यकी लाल किरणें मानों गैरिकमें नहायी चमक रही थीं। बागके फाटकपर आकर भंगड़ चुपचाप खड़ा हो गया। हिम्मत न हुई कि वह आगे बढ़े। जो दृश्य उसने देखा उससे उसके रोम-रोक कंटकित हो उठे।

उसने देखा पुराणपुरी पहलेकी भाँति दोनों भुजाएँ ऊपर उठाये थे। वह पूर्व दिशा की ओर मुँह किये खड़े थे। सूर्य उनके पीछे पेड़ोंकी आड़में अस्त होने जा रहा था किन्तु उनकी हेमाभ रश्मियाँ पुराणपुरीके शरीरका स्पर्श करतीं उनके सामने लम्बी छाया पसार रही थीं। पलभर ठहरनेके बाद भंगड़को स्पष्ट विदित हुआ मानो धरती पर पड़ी साधुकी वह धूमिल छाया उठने लगी। छाया सीधी तनकर खड़ी हो गयी। स्वामीने पूर्ण मनोयोगसे कठोर स्वरमें कुछ कहा मानो उस छाया-पुरुषपर शासन कर रहे हों।

'और निकट आओ'—महात्माने कहा और वह छाया-मूर्त्ति सचमुच ही कई कदम और निकट आ गयी। अब योगी और छायाके आकार प्रायः एकसे थे। छाया-पुरुष उसी भाँति निश्चल, अविचलित हो उनके सामने खड़ा रहा। उसका शरीर मानो उठते हुए धूमसे बना था, विराट शून्यमें केवल एक रेखाचित्र-सा जिसमें सजल बादलोंका रंग दूरसे चमक रहा था। पुराणपुरीने छाया-पुरुषसे बातें करना प्रारम्भ किया। भंगड़के आश्चर्यकी सीमा न रही जब उसने देखा कि छाया उनके प्रत्येक प्रश्नका उत्तर दे रही थी।

कुछ देर तक चोरों-सा खड़ा वह चुपचाप यह योग-माया देखता रहा। जब न रह गया तो 'ओम् नमः शिवायः' 'नमः पार्वतीपते हरः' की नाद लगाता भीतर घुसा। पुराणपुरीने एक बार क्षुब्ध हो उसे देखा, किन्तु शान्त रह गये। पास वाले पत्थरकी चौकीपर बैठनेका संकेत कर योगाभ्यासमें लग गये। छाया-पुरुष भी इस असंस्कृत और अशुद्ध मानवकी उपस्थितिसे मानों घबराकर लुप्त हो जाना चाहता था, किन्तु पुराणपुरीके 'ठहरो' कहनेसे रुक गया था।

'भगवन् ! मैं, आपका दास, कुछ प्रार्थना करना चाहता था। भंगड़ने दीनतापूर्वक कहा। पुराणपुरीने सुना और मानो छाया-पुरुषको मुक्त कर देना चाहते हों, कुछ फुसफुसाकर कहा। देखते-देखते अस्तगामी सूर्यकी तरल रश्मियोंसे उद्भूत वह छाया-मूर्ति सहज ही सूक्ष्म किरणोंके अन्तरालमें तिरोधान हो गयी। वातायन भी शान्त हो

चला था। केवल क्षितिजके ललाटपर कुछ अरुणिमा अब भी चमक रही थी। सूर्य अस्त हो चुके थे। सारे बागपर अन्धकार अपना पहला आवरण डाल चुका था। न कहीं वह मूर्त्ति दिखायी पड़ी, न छाया। पुराणपुरी उस स्थानसे हट आये। कठोर स्वरमें पूछा—'यहाँ क्यों आये ?'

'आपसे मिलने। आपका दर्शन करने ?'

'क्यों, और भी कभी आये थे ?'

'क्षमा करें देव! आपकी वाणी चमत्कारसे पूर्ण है। कलसे ही मुझे शान्ति नहीं है। आपने जो दृश्य मुझे कल दिखा दिया था उसकी लपटों में मैं स्वयं जलने लगा। महात्मन्, उसीके निमित्त मैं यहाँ आया।'

'भंगड़, तुमने जो देखा वही सत्य है। काशी जल रही है, और जलेगी। साथ ही यह ब्रह्माण्ड भी जल रहा है। और साथमें तुमने जिसे आकाश मार्गसे जाती देखा, वह भी ऐसी ही दग्ध है।'

'उसी के लिए महात्मन्। उसीमें चित् रम गया है। वह कहाँ है ? कैसी है ? क्या कर रही है ? किसके आश्रय में है ? मन यह जाननेको अत्यन्त आकुल हो गया है। क्या इतनी अनुकम्पा आप करेंगे ?

'मूढ़ हो! अभी कल तुमने कहा था कि युवकोको शास्त्र-ज्ञान कराते हो, स्वयं भी विरागी बन कुछ योग-साधन करते हो ? वह सब क्या प्रवंचना थी ? भंगड़, मोहका एक साधारण झटका भी न सह सके ?'

भंगड़ जड़वत खड़ा था निष्पंद, निर्वाक्। उसकी समस्त चंचलता इस साधुके सम्मुख हवा हो गयी थी। उसकी सम्पूर्ण संचित शक्ति आज इस क्षीणकाय दुर्बल पुरुषके समक्ष तिनके सी उड़ गयी। कहाँ गया वह अभिमान, वह वीरता का गौरव; त्यागकी भावना और आत्म-विश्वासका दंभ ? क्या सब छलना थी, आत्म-प्रवंचना ? अपनी ही दृष्टि में भंगड़का मूल्य आज अचानक आँधी-प्रताड़ित पत्ते-सा हल्का होकर गिर गया।

पुराणपुरी कुछ देर तक शान्त रहे। फिर भंगड़की ओर देखा तो उन्हें मानो एक झटका लगा। देखा इस विचित्र पुरुषका दीप्त मुख पलक मारते स्याही-सा काला पड़ चुका था। उसकी आँखें आर्द्र और नत थीं। उसके भयानक ऊहापोहका हाहाकार देख उन्होंने कहा—'अधीर न हो। पुरुष इतना दुर्बल नहीं होता। फिर तुम तो एक साधनामें लगे हो।'

'साधना···हाँ साधना ही तो। भंगड़ने मनमें सोचा—ठीक है, किन्तु प्रेमकी साधना इससे भी कठिन ज्ञात होती है। पुरुष दुर्बल है; नारी शक्ति, वही भक्तिका स्रोत है, उत्साह है, वही तेज है। वह पुरुषकी पूर्णता है। आज लगता है जैसे मंगलाको खोकर मैं अपूर्ण ही रह गया।

'तो उसे पूर्ण करो। तुम्हारी अन्तरात्माकी शान्ति तभी हो सकेगी। और हाँ, तुम्हें पता है या नहीं, सँभलकर रहो। कम्पनीके सिपाही तुम्हें गिरफ्तार करना चाहते हैं। फैयाजअली और मिर्जा पाँचू दोनों ही पीछे पड़े हैं। तुम्हें पकड़नेवालेको पाँच सौ कलदार रुपया पुरस्कार दिया जायगा।'

'मालूम है स्वामिन्! सबेरे अखाड़ेके पट्ठे बता रहे थे। आज कई दिनोंसे शहरमें डुगडुग्गी पीटी जा रही है'—उदास हो भंगड़ बोला।

'तब क्या सोचा है? यदि कहीं छिपनेकी जगह न हो तो बताओ। मैं तुम्हें ऐसी जगह भेज दूँगा जहाँ वे तुम्हारी गन्ध भी नहीं पा सकते।'

'छिपना? मैं क्या छिपकर रहूँगा? किसके लिए? फिर यह शरीर किस दिन काम आयेगा जिसे संखिया और धतूरेके रससे पाल-पालकर विपाक्त कर दिया है। प्राणको सदैव हथेलीपर रखकर घूमता हूँ।'

'फिर भी सावधान रहना और आवश्यकता पड़ने पर मिलना'—कहकर पुराणपुरीने नेत्र मूँद लिये। भंगड़को ऐसा लगा जैसे वह अब अधिक बातें न करना चाहते हों। आँखोंका बन्द करना जैसे उसे उठ कर लौट जानेके लिए संकेत था। वह उन्हें शीश झुकाता हुआ उठ गया।

आश्रमके बाहर निकला तो उसके रोम-रोमसे चिनगारियाँ निकल रही थीं। सारा शरीर जल रहा था। भीतर उसका दिल जल रहा था। दिलके भीतर बैठी वह जैसलमेरकी गोरटी भी जल रही थी। भंगड़को कुछ पता न चला। उन्मत्त व्यक्तिकी भाँति लौटा। नाव लेकर इस पार आया। घाट उतरकर अखाड़े पर गया। देखा पट्ठे रियाज कर रहे थे। शिवनाथसिंह और बहादुरसिंह दोनों सरदार बैठे थे। भंगड़को देखकर उन्होंने उसे हाथ जोड़े।

भंगड़ चुपचाप अपनी चौकीपर जा बैठा।

रात एक पहर बीत चुकी थी। पट्ठे अभ्यास कर चुके थे। हनुमानजीकी आरती कर प्रसाद लेनेके बाद और सब तो चले गये, किन्तु ब्रह्मनालके दोनों वीर वहीं रुक गये। जब सन्नाटा छा गया तो मीठे तेलकी बत्ती तेज करते हुए शिवनाथसिंहने कहा—'दोनों पत्ते उड़ते-उड़ते आखिर मिल ही गये। बाबू जगतसिंहने नवाब वजीरअलीको सब तरहसे मदद देनेका वचन दे दिया है और उधर नवाबने भी अपने उद्योगमें सफल हो जानेपर बनारसका सारा राज्य बाबू जगतसिंहको दे देनेका कौल किया है।'

'चलो, अच्छा ही हुआ। एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं'—भंगड़ने अन्यमनस्क होकर कहा।

'किन्तु हमारे राजा साहबका जो पेट दर्द करने लगा है'—शिवनाथने कहा—'वह तो कम्पनीके प्रधान मददगार हैं। बाबू उदित नारायण सिंहने शहरके सभी हाकिमोंका मन ऐसा बढ़ा दिया है कि कुछ पूछो मत। गुरु, वह जो नया जमादार है, जयपुरका जदुनाथसिंह, सब तो सब, उस सालेको भी जुकाम होने लगा। आज चौकमें चिल्ला रहा था''''आपको गिरफ्तार करनेके लिए। मनमें तो आया, उड़ा दूँ एक हाथ, सारा काम ही तमाम हो जाय, लेकिन बवाल बढ़ जानेके अन्देशेसे खूनका घूँट पीकर रह गया।'

'तूँ छोड़ दिह्यो, हम रहते तो सारे की टाँग चीर देते, फिर देखा जाता'—बहादुर सिंहने दाँत पीसते हुए कहा।

'कलसे शहरमें कड़ा पहरा पड़नेवाला है। जरा सँभलकर जाइयो। और हो सके तो दस-पाँच दिन यहीं या कहीं और····हाँ····। एक डुब्बी····। सालोंको पता न लगे।'

'क्या कहते हो छिप जाऊँ? चूड़ियाँ पहन लूँ? उन कुत्तों से डरकर कहीं सरक जाऊँ? वाहरे शिवनाथ! यही शिक्षा दोगे? तब मेरी इतने दिनोंकी साधनाका परिणाम क्या हुआ? मेरे ये पट्ठे किस दिन काम आयेंगे? मुझे वे बदजात सिपाही पकड़ लेंगे और तुमलोग चुपचाप मुँह देखते रहोगे? तुम शायद यह कर सको, लेकिन मैं चोरकी तरह इधर उधर मुँह नहीं छिपा सकता।' फिर कुछ क्षण ठहर कर बोला—'अभी तो रात है, नहीं इसी समय जाता। सबेरा होने दो। अकेले कोतवालीके फाटकपर जाकर आवाज दूँगा। देखूँगा मर्दोंकी हिम्मत कौन भंगड़पर हाथ उठाता है। और तुम्हें सौगन्ध है जो मेरे साथ रहो। दूरसे तमाशा देखना····अकेले भंगड़ क्या कर सकता है····। कल दस-पाँचका वारा-न्यारा करके कोतवालीसे हटूँगा·······।'

शिवनाथ सिंह ऐसा सिटपिटा गया था कि उसके मुँहसे बोल निकलती न थी। इस नशेबाज व्यक्तिके दुर्बल शरीरमें वज्रका हृदय देखकर उसे अपनी चरम हीनताका ज्ञान हुआ। सहसा कुछ बोल पानेमें असमर्थ हो उसका ज्योति-चमत्कृत मुखमण्डल देखता रह गया। कुछ देर बाद बहादुर सिंहने कहा—'ऐसा भी हो सकता है? हम दोनोंकी लाशें गिर जायँगी, तब कहीं सिपाही तुमपर हाथ लगा पायेंगे गुरु! पाँच सौ कलदार सस्ते नहीं हैं। इनके लिए उन्हें पाँच सौ जवानोंको भेंट करना होगा·······। यह सामने महाबीर स्वामीकी मूर्ति है। इनके चरण छूकर कहता हूँ। तुम निर्भय होकर घूमो····देशी राज चला गया और कम्पनीका राज आया तो भी क्या? अभी हमारी नसोंमें वही खून दौड़ रहा है····। अच्छा हटाओ, कुछ खाने-पीनेका डौल···· खिचड़ी बनाऊँ या बाटी-चोखा? रात यहीं काटनी है तो कुछ भोजन पानीका भी····हाँ भाई····।'

'मेरी तो तनिक भी इच्छा नहीं है'—भंगड़ बोला—'तुमलोग अपने लिए जो चाहे बना लो····।'

'हमलोग जो चाहें बनाकर खा लें और तुम रात भर खाली पेट पड़े रहो, क्यों? यह तब करना जब हम मर जायँगे'—शिवनाथने अब मौका पाकर कहा—'तुम चुपचाप बैठो, हम अभी बना देते हैं, क्षण भर में····।'

'अच्छा तो बनाओ····क्या बनाओगे?'—भंगड़ने कुछ नरम होते हुए पूछा।

'वही तो कबसे पूछ रहे हैं?' बहादुर सिंह बोला।

'बना ही रहे हो तो खिचड़ीपर क्या उतर गये? अच्छी चीज बनाओ, दूध-घी सब तैयार है····खीर-पूड़ी बनाओ····या हलुवा···· बादाम-पिश्ता सब मौजूद है···।'

बड़ी झंझटके बाद खीर-हलुवा और पूड़ी तीनों बनाना निश्चित हुआ। भंगड़ने कुटियाका दरवाजा खोल भीतरसे घीकी हाँड़ी, पिश्ते-बादामकी पोटली और चीनीका बटुवा आगे बढ़ा दिया। दूसरे झोलेसे भाँगका सामान निकाला।

'इतनी रात गये यह टटमजाल····बड़ा टंटा हो जानेसे आधी रात बीत जायगी'—बहादुर सिंह बोला।

'तो करना ही क्या है? रात तो अपनी है। तुम भी क्या कोतवालीके सिपाही हो जिसे सबेरे ही जागकर भंगड़को गिरफ्तार करनेकी चिन्ता सता रही हो?'

बहादुर सिंह कट गया। भंगड़ने एक अन्य पोटलीसे कुछ और सामान निकाला—संखिया, कुचला, धतूरेका बीज—'हमारी पंचरतनकी भाँग अलग बनेगी····तुम लोग अपनी अलग बना लो केसरिया····।'

'नहीं, जब बनेगी तो एक ही में। तुम्हीं बनाओ—उसी परसादी में तीनों ले लेंगे'—शिवनाथ बोला।

'खड़े नहीं रह सकते'—भंगड़ने हँसते हुए कहा।

'क्या समझ रखा है ? हम भी आज पचास सालसे छानते आ रहे हैं ।'

'छानना और है और छानकर पचाना और''''आगका गोला है समझ लो ।'

'कोई हर्ज नहीं, शंकरजीका प्रसाद है । आज यही सही ।'

'ठीक है, तुम जानो'—कहकर भंगड़ सिलौटी लेकर बैठा । उधर दोनों जवान भोजन बनानेमें लगे । भंगड़ने अनेक विषोंको धो-धोकर सिलपर पीसा, फिर उसे बादाम, पिश्ता, केसर आदिके साथ पीस कर दूधमें मिलाया । एक बड़े मीरजापुरी लोटेमें भरकर ले जाकर शंकरके लिंगपर चढ़ाया । आकर बैठा, तबतक भोजन भी बन चुका था ।

तीनोंने संखिया, कुचला, और धतूरेके बीजमें पिसे पूर्ण विषयुक्त विजयाका पान किया । शंकरका नाम लेकर उन्होंने उसे आँख मूँदकर उदरस्थ कर लिया । पीते समय बहादुर सिंहने एक बार भंगड़की दृष्टि बचाकर शिवनाथकी ओर देखा, मानो उससे कह रहा हो—क्या अनर्थ करने पर तुले हो ? किन्तु कुछ बोल न सका । चुपचाप पी गया । भंगड़ने पीते समय गाया—'गोरडी तू जैसलमेर की, आके मुझे बहला जा'''' ।'

फिर पातालफोड़ कुएँसे बड़े बाल्टेसे जल खींचकर बहादुरने भंगड़को नहलाना शुरू किया । रात आधी बीत रही थी, किन्तु भंगड़ हटनेका नाम न लेता था—पेटमें आग लगी जा रही है, दस-पाँच बाल्टी और नहला दो और थक गये हो तो हटो, मैं खींचूँ''''''।'

बहादुर सिंहकी भुजाएँ भर गयी थीं । कुआँ पैंसठ-सत्तर हाथ गहरा था, फिर बाल्टा भी छः पसेरीसे कमका न था । उसका दम फूल रहा था, किन्तु अपने पौरुष पर किया गया आक्षेप वह सहन कर सकता था ! फिर काढ़ने लगा—दो हाथ''''''चार हाथ''''''दस हाथ । शिवनाथ सिंहसे न देखा गया । तब वह उठा । उसने पचास बाल्टा

गिनकर नहलाया। भंगड़ तब उठा—'अब कहीं जाकर तबियत मस्त हुई है, लेकिन नशा जाता रहा।'

'अब बोलो मत, चुपचाप तीन जगह परोसो······रात बीत रही है। थोड़ी देरमें पौ फटनेवाला है। तुम्हारे साथ तो रहकर·······।' लेकिन भंगड़के स्वभावका ख्यालकर वह डरकर चुप लगा गया और अपनी बात पूरी किये बिना ही पछताता हुआ देवताओंको मनाने लगा।

आज इन चेलोंने भी उसके भाँगमें हिस्सा लिया। जब इन लोगोंने इतना साहस किया तो वह ही क्यों इनकी श्रेणीमें रहे? सदाकी भाँति आगे रहना उसने अपना धर्म समझा। बोला—'नहला तो दिये, मुदा नशा हिरन हो गया। कुछ ताव न रहा। अब मुझे दूसरा उपाय करना होगा।' कहकर पासके ढूहेके पास बत्ती लेकर गया। लकड़ीसे इधर-उधर खोदा—'मिला तो, एक है······।' कहकर एक बिच्छू उठा लिया। अपने दाहिने हाथकी दो अङ्गुलियोंसे उसका डंक पकड़कर उसने अपनी जिह्वाके अगले भागपर उससे चोट कराया। वृश्चिकने छटपटाकर प्रबल वेगसे जिह्वापर डंक मारा। पल भरमें उसका विष भंगड़के समस्त शरीरमें प्रविष्ट हो गया। बिच्छूको उसकी माँदमें फेंक दिया, उठता हुआ अकड़ती हुई जीभसे बोला—'अब कहीं नशा आया है। जल्दी परोस दो, नहीं मैं खा नहीं सकता······।'

उसके दोनों शिष्योंने यह क्रिया देखी। यद्यपि बिच्छूसे जीभपर डंक मरवाते वे कई बार देख चुके थे, किन्तु इतने विषोंके उदरस्थ कर लेनेके बाद यह एक नया विष पान करते देख उनका हृदय दहल उठा। किस यन्त्रणासे यह अभागा व्यक्ति तड़प रहा है? कौन है वह जैसलमेरकी गोरी? कभी तो बताया होता। क्या उसकी वेदना इतनी अधिक है कि उस सुन्दरीको भुलानेके लिए इतने विषोंका रस भी पर्याप्त नहीं? किन्तु वे कुछ भी न पूछ सके।

एक पत्तलपर उसे भोजन परोसा और दो पत्तलोंपर अपने लिए। भंगड़ चट भोजनपर बैठ गया। खाते समय उसने कुछ न कहा।

चटपट खाना खाया, कुछ छोड़ दिया और लड़खड़ाता हुआ अपनी चौकीपर जा गिरा। क्षणभर बाद ही दुस्सह पीड़ासे कराहने लगा, किन्तु विषके प्रभावसे उसकी जिह्वा अपना कष्ट भी व्यक्त करनेकी शक्तिसे रहित हो, कुण्ठित हो, जड़ बन चुकी थी। देखते-देखते कराहना भी बन्द हो गया और भंगड़ अचेत हो गया।

'भला इस शौकसे लाभ ?' शिवनाथने कहा।

'गुरु, हमें भी चक्कर आ रहा है। गला सूख रहा है। आज तुम लोगोंके फेरमें······अब मुझसे खाया नहीं जा रहा है··········।' बहादुर सिंह बोला। कहते-कहते उसे उबकी-सी आयी। भोजन छोड़कर वह उठ गया। मुँह धोया और बाहर एक क्यारीपर जा लेटा। अकेला शिवनाथ सिंह होशमें था। उसने डटकर भोजन किया। दोनों अखाड़ियोंको चित्त होते देखकर ठठाकर हँसा—'जगके लेखे मरे पड़े हैं ज्वान नशेके बीच······सबेरे फिर छनेगी······ वाह गुरुजी भाँगके लच्छे····।' कह कर उठा, कुल्ला किया, मुँह धोया। किन्तु उसे लगा जैसे उसका भी सिर घूम रहा हो, अखाड़ा ऊपर-नीचे हो रहा हो। वह समझ गया। नशा अपनी जवानीपर था। चुपचाप जाकर कुएँके नीचे फर्शपर लेट रहा। फिर रात कब बीती कुछ पता न चला।

दिन चढ़नेपर अखाड़ेमें परिश्रम करनेवाले चेले आने लगे। यहाँका दृश्य देखकर समझ लिया कि रातमें गहरी चढ़ी है। अधजले बर्तन, चूल्हे, जूठे पत्तल और हाड़ियाँ वैसी ही पड़ी थीं। कुछको कुत्ते चाट गये थे। तीनों महाबीर अब तक बेहोश पड़े खुर्र-खुर्र कर रहे थे। बहुत जगानेपर भी शिवनाथ और बहादुर तो न उठे, लेकिन भंगड़ उठ गया।

आँखें मुलमुला कर देखा—दिन चढ़ आया था। तब उसने झपट कर दैनिक क्रियाएँ कीं, कूएँ पर ही नहाया और पूजासे खाली हो केसरिया बाना धारण किया। मस्तकपर चन्दनका त्रिपुण्ड लगाया। कानोंमें फूलके झुमके खोंस लिये। खाँड़ा लिया हाथमें और चल पड़ा

शहरकी ओर। उसे इस वेषमें शहरकी ओर जाते देखकर नगर-निवासी स्तंभित हो उठे। अभी कल ही इस भंगड़को गिरफ्तार करनेवालेको पाँच सौ कलदार रुपये ईनाम देनेकी घोषणा की गयी है और यह पागल आज जान देने पर उतारू है। मालूम होता है अब इसका काल आ गया है!

'देखते नहीं इसका उग्र रूप! जैसे साक्षात कालभैरव हो।' आज यह दो-चारके प्राण लेगा। मालूम तो यही होता है।' दूसरा नागरिक बोला।

'अरे देखते ही सिपाही धर लेंगे। क्या वे इसे जीता छोड़ेंगे?' तीसरेने शंका प्रकट की।

'सिपाही क्या खाकर पकड़ लेंगे?'—चौथेने कहा।

किन्तु भँगड़को नागरिकोंकी बात सुननेका अवकाश कहाँ? वह आँधीकी भाँति हरहराता हुआ वेगसे झपटता बढ़ता जा रहा था।

कोतवालीके फाटकके पास पहुँचा तो ग्यारह बज रहे थे। बाजारमें भीड़ लगी थी। कचहरीके सिपाही, हाकिम-हुक्काम आने-जाने लगे थे। शहरकी दूकानें खुल चुकी थीं। लोग काफी संख्यामें बाजारमें घूम रहे थे।

भंगड़ कोतवालीके पास वाले कूँएकी जगतपर चढ़ा। उसका केसरिया बाना और रौद्ररूप देखकर हजारों नागरिक उसकी ओर आकृष्ट हो चुके थे। सैकड़ोंकी भीड़ उसके साथ लगी पहलेसे ही तमाशा देखनेकी लालसासे चली आयी थी। सब कुएँको घेरकर खड़े हो गये। भीड़में लोगोंके पैर कुचलने लगे। कंधेसे कंधा छिलने लगा। भंगड़ने वहींसे उच्च स्वरमें ललकारा और कोतवालीके सिपाहियोंकी ओर हाथसे इशारा करके गरजा—पाँच सौ रुपये इनाम लेनेवालो! सुन लो! मैं आ गया हूँ.... यहाँ बीच बाजारमें खड़ा हूँ। आओ, मुझे गिरफ्तार कर लो....है कोई जवान, माईका लाल जिसकी भुजाओंमें मेरे गट्टे पकड़नेकी ताकत हो? कहाँ गया वह फैयाजअली कोतवाल! क्या

अपनी बीबीके लहँगेमें छिप गया....मर्द हो तो निकल आये बाहर.... भंगड़ यहाँ खड़ा है....आकर पकड़ ले··· ।

चारो ओर विकट निस्तब्धता-सी छा गयी । पत्ता भी न खड़कता था । जो जहाँ था, वहीं ठक हो गया । भंगड़के खाँड़ेकी तीव्र धार सूर्यकी ज्योतिमें चमककर लोगोंकी आँखें चौंधियाँ रही थी । इस भयंकर जीवके पास जाते ही प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा, यह सोचकर सिपाही आगे बढ़ते न थे । फैयाजअली कोतवालीमें भीतर बैठा था । उसका साहस न होता कि स्वयं आगे बढ़े । सिपाहियोंको ललकारता, किन्तु उनकी हिम्मत पहले ही पस्त हो चुकी थी । जब कोई आगे न बढ़ा और काफी समय बीत गया तो भंगड़ अट्टहास कर उठा । उसकी मूर्त्ति सचमुच भैरव जैसी उग्र हो चुकी थी । हाथोंको वायुमें फैलाते और खाँड़ेंको चमकाते हुए उसने कहा—'कोई मर्द नहीं रह गया ? थुड़ी है····पाँच सौ कलदार यों ही ले लोगे····फिर कहता हूँ हिम्मत हो तो आगे बढ़ो····यहाँ खड़ा हूँ····मुझे गिरफ्तार कर लो....कहाँ गया फैयाजअली····आऊँ भीतर··· ।'

फैयाजअली भयभीत हो उठा । यह जंगली जानवर पता नहीं दफ्तरमें घुसकर क्या बवाल खड़ा करे ! उसने सिपाहियोंको भीतर करके कोतवालीका फाटक बन्द करवा दिया । जब कोतवालीकी सारी खिड़कियाँ और फाटक बन्द हो गये तो भयंकर स्वरमें घड़घड़ाते हुए भंगड़ हँसा—'देख लो तुम लोग भी शहरके रहनेवालो, अपने रक्षकों और अधिकारियोंका हौसला देख लो । इतनी हिम्मत नहीं कि एक भंगड़की कलाई पकड़ लें । यह क्या राज करेंगे....थू....थू....—' कहता हुआ कोतवालीके फाटकपर थूकता और अट्टहास करता आगे बढ़ गया ।

विस्मय-विमुग्ध नागरिक-गण उसके अपूर्व साहसकी प्रशंसा करते, कुछ उसका रौद्ररूप देख भयभीत होते, और कुछ शहरमें गुण्डोंकी उत्पात बढ़नेपर शरीफोंका जीना मुश्किल समझकर मन ही मन उसे

गालियाँ देने लगे। जब भंगड़ दूर चला गया तो कोतवालीका फाटक खुला। एकाएक दर्जनों सिपाही फट पड़े—'हरामजादो यहाँ क्या कर रहे थे? तमाशा देख रहे थे? भागो अपने घर····।' किसीके सिरपर सोटा पड़ा, किसीपर डंडा, कोई धक्केसे गिर पड़ा····। मार-पीट कर सिपाहियोंने भीड़ तितर-बितर कर दी। देखते-देखते चौकमें सन्नाटा छा गया।

—०००—

१

सिकरौलकी अँगरेज-बस्ती

सूर्यकी सुनहली किरणें जब सिकरौलकी यूरोपियन बस्तीमें फैलकर प्रातः समीरसे अठखेलियाँ करने लगीं तो शहरका जज डेविस घोड़ेपर सवार हवाखोरीके लिए निकला। नित्य सबेरे टहलनेका उसका अभ्यास था। डेविस यद्यपि वृद्ध न था, फिर भी उसका बाल पक गये थे। कानोंके बालोंमें भी सफेदी छा गयी थी। उसकी खोपड़ीके बाल आधे साफ थे। गंजे सिरपर टोप नहीं लगाता था। मूछें ऐंठी और चेहरा भरा हुआ था। उसकी उम्र पचासके लगभग थी। फ्रान्समें नेपोलियनने जिस पहनावेकी चाल निकाल दी थी, वैसे ही पैन्ट और कोट पहने वह एक दृढ़प्रतिज्ञ अधिकारी-सा लगता था। उसकी तनी भौंहें, ऐंठी मूछों और चौड़े ललाटसे उसके पक्के विचारोंकी आभा फूट पड़ती थी। हाथमें एक पतली छड़ी लिये वह घोड़ेपर सवार हो वायु-सेवनके निमित्त निकला।

डेविस बनारसका कलक्टर और जिला जज दोनों ही था। प्रचलित नियमोंके अनुसार वह जिलेका सर्वोच्च शासक था। राजा चेतसिंहके ग्वालियर चले जाने और महीपनारायणको जमींदारी मिलनेके बादसे

बनारसमें अंगरेजोंका बसना बढ़ चला था। उनकी बस्ती सिकरौलमें थी जो अब देहातकी एकान्तता त्याग एक कोलाहलपूर्ण बाजारका रूप धारण कर रहा था। अठारह वर्ष पूर्व घटी चेतगंजकी घटनाको अंग्रेज भूले न थे। रेजीडेन्सीकी लूट और हत्याकाण्डके बाद वे शहरसे हट गये और सिकरौलमें उन्होंने नया मुहल्ला बसाया। वहाँ यूरोपियनोंके दर्जनों घर थे जो दूर-दूर छितराये बसे थे। डेविसका घर बस्तीके बीचमें था।

उसने एक बार घरके बाहर बगीचेमें लगी लताओं और झाड़ियोंको देखा। हिन्दुस्तानी माली घुटने तक धोती पहने और सिरपर पगड़ी बाँधे गुलदस्तेके लिए फूल बीन रहा था। उसे कुछ आवश्यक हिदायतें देकर उसने अपने दो-मंजिले, बरामदेदार बँगलेको देखा और फिर सड़ककी ओर बढ़ा। घर और सड़कके बीच एक नाला बहता था जिसपर एक पुलिया बनी थी। इसी पुलियापर होकर घरमें आने-जानेका मार्ग था। डेविस बाहर सड़कपर आया तो देखा कि अंग्रेज युवतियाँ अपने नन्हें पिल्लोंके साथ सड़कपर मस्तानी चालसे विचर रही थीं। सबने उसे सम्मानपूर्वक सलाम किया। उनके अभिवादनका यथोचित उत्तर दे डेविस आगे बढ़ गया।

आगे बढ़नेपर देखा होम्स जल्दी जल्दी शहरकी ओर बढ़ रहा था। होम्स पैदल था। उसके हाथमें कुछ सामान था। डेविसने घोड़ेको तेज चलनेका संकेत किया और पल भरमें बढ़कर होम्सके निकट आ पहुँचा। घोड़ेकी टापकी आवाज सुनकर उसने सिर घुमाया और हँसीकी चंचल लहर उठाकर बोला—'प्रातःकालका अभिवादन स्वीकार हो। घोड़ेकी टाप दूरसे ही हुजूरके आनेकी घोषणा कर रही थी।'

'इतनी जल्दी आज कहाँ चले? मालूम होता है शहरमें कोई काम है?'—डेविसने पूछा।

"नहीं महाशय! कोई काम नहीं है सिवाय उस नौजवान नवाबके निमंत्रणके, जिसे मैं कुछ मूल्यवान नहीं समझता।'

'आपका मतलब उस पदच्युत नवाबसे है—वजीरअली! छोकरा!!

उससे आपसे क्या रिश्ता महाशय? सँभलकर रहिये। उसके वे दिन अब न रहे।'

'कल उसने सायंकाल अपना हरकारा भेजा था; आज सबेरे बुलाया है। पता नहीं किस मतलबसे बुलवाया है।'

'जो भी मतलब हो, सावधान तो रहना ही चाहिये'—डेविसने कहा और आगे बढ़ना ही चाहता था कि होम्सने, जैसे कुछ स्मरण हो आया हो, रुककर कहा—'हाँ खूब याद आया। मूड़ाडीहकी नील कोठीके अधिकारी, जॉन ब्राकवे कल आये थे। बता रहे थे कि उधर भूमिहार और पुराने जमींदार फिर वही स्वप्न देखने लगे हैं। उनकी तबियत बढ़ रही है। मैंने सोचा था आपसे भेंट होनेपर कहूँगा।'

'नीलकी कोठीका अधिकारी, जान ब्राकवे कह रहा था? भूमिहार फिर वही स्वप्न देख रहे हैं।' डेविसने मनही मन सोचा, यह स्वप्न क्या सफल होनेवाला है। पागलका स्वप्न! मूर्ख कुत्तो, तुम्हें बूटोंकी ठोकरोंसे जगाना होगा। घृणासे उसके होंठ विकृत हो उठे। उसने एक बार अनेक परिचित हिन्दुस्तानी बाबुओंका नाम लिया, अस्फुट स्वरमें और फिर थूककर बोला—'मैं लाचार हूँ महाशय चेरीसे।'

चेरीका स्मरण करते ही उसने घोड़ा रेजिडेण्टके घरकी ओर बढ़ाया। इस समय वह घर पर रहा करता था।

चेरी बनारसमें कम्पनीका रेजिडेण्ट था। उसे पोलिटिकल एजेन्ट भी कहते थे। सिकरौल बस्तीके उत्तरमें उसका बंगला था जिसके पीछे एक चौड़ा नाला बहता था। बगलमें ही नया गिरजाघर था जिसकी इमारत भी अभी तक पूरी तरह नहीं बन पायी थी।

चेरीका घर दो-मंजिला था, लेकिन डेविसके बंगलेकी तरह इसमें बारामदे न थे। खिड़कियाँ चारो ओर खुली थीं; नीचे खासा अच्छा उद्यान था। चेरीकी बैठक घरके निचले हिस्सेमें थी। पर प्रायः वह हरी घासके मैदान और विविध फूलोंकी क्यारियोंके बीच बैठना पसन्द करता था, इसीलिये अक्सर लोगोंसे यहीं मिलता।

डेविसके प्रतिकूल चेरीके परिवारमें कोई न था। वह बिलकुल अकेला और सीधा सादा व्यक्ति था। डेविससे उसकी इसलिए पटती थी कि डेविसकी चातुरी, मक्कारी और धूर्तताका प्रभाव उसपर किंचित न पड़ पाता था। डेविसके साथ उसकी पत्नी और दो युवक पुत्र भी थे। किन्तु चेरी सर्वथा अकेला था। पत्नीको मरे कई वर्ष हो चुके थे। बच्चे वहीं इंग्लैंडमें थे। भारतमें वह अकेला आया था। उम्रमें भी पचासा नाँघ चुका था। दुबले-पतले किन्तु, प्रखर बुद्धिवाले इस रेजिडेण्ट-से डेविसके मिलने-जुलनेका एक कारण यह भी था कि चेरी गवरनर जेनरलका विश्वासी और प्रिय पात्र था। अतः ऐसे कामके व्यक्तिको मिलाये रखनेमें ही डेविस अपनी कुशल मानता था।

चेरी घरपर ही था। डेविसके घोड़ेकी आहट लगते ही उसने खिड़कीसे सिर निकाल कर झाँका और सदाकी भाँति मधुर मुस्कानसे अतिथिका स्वागत किया। डेविस बाहर घोड़ा छोड़कर भीतर चला आया और पूर्ण परिचितकी भाँति अभिवादनकर एक कुर्सीपर बैठ गया जिसके सामने टेबुलपर कुछ कागज बँधे पड़े थे।

'यह कैसे कागज हैं...यहाँ खुले हुए ?'

'सआदत अली खान्, शायद आप उसे भूले न होंगे; अवधका नवाब....उसीसे सम्बन्धित कुछ कागज हैं बनारसकी जमीनके बाबत'—चेरीने लापरवाहीसे कहा।

'...और वजीर अली—? उसका क्या हुआ ?' बात काटकर डेविसने पूछा।

'कैसा ? किस सम्बन्धमें आप बातें कर रहे हैं ?'

'उसके कलकत्ते जानेकी।'

'अभी गवरनर जनरल तैयार नहीं हैं।'

'मैं एक बार फिर कहता हूँ। आप इसपर विशेष ध्यान देकर गवर-नर जनरलको लिखें। वजीर अलीकी शक्ति बढ़ रही है। आखिर किसी दिन वह इतनी प्रबल हो उठेगी कि हमारे और आपके लिए एक खतरा बन जायगी।'

चेरी हँसा, मानो डेविसकी बातें उसके लिए सारहीन हैं और वह उन्हें उतना महत्त्व नहीं देना चाहता जितना डेविस देता है। उसकी आँखें, जिनपर भौंहोंकी उजली रेखा चमक रही थी, हँस उठीं। रेजिडेण्टने एक विश्वास और शानभरी दृष्टि डेविसपर डाली और फिर इसी ओर देखने लगा।

'आप शर्बत पीयेंगे ?' चेरीने पूछा।

'धन्यवाद, अभी नहीं।'

'हुक्का मँगवाऊँ ?'

'कुछ नहीं। मूड़ाडीहकी नीलकी कोठीके अधिकारी जान ब्राकवे को भेंट हमारे पड़ोसी होम्ससे हुई थी। अभी रास्तेमें होम्स मुझसे मिला था और बतला रहा था कि उधर देहातोंमें बाबू लोग अपनी तैयारीमें लगे हैं। अपने निजी सेवकोंकी संख्यामें वे नित्य वृद्धि करते और शस्त्र-संग्रह करते जा रहे हैं। उन सबका अखाड़ा वजीर अलीके यहाँ लगने लगा है।'

'वजीर अलीपर आपका इतना सन्देह क्यों है ?' चेरीने पूछा।

'किसी भी ऐसे राजकुमार या प्रभावशाली व्यक्तिको जो कुछ दिनों पूर्व जीवनकी सबसे बड़ी शक्तिका उपभोग कर चुका हो, उसे उसके अधिकारोंसे वंचित कर आहत सर्पके समान अपने निकट रखनेमें क्या आप खतरा नहीं मानते ? लखनऊसे बनारस कितनी दूर है ? क्या वजीर अली लखनऊमें बिताये अपने जीवनके सौभाग्यशाली दिनोंको भूल जायगा ? मेरी बात मानिये और उसे यहाँसे शीघ्र हटवा दीजिये।'

'सोचूँगा। आपका कहना भी उचित और सारपूर्ण है—' चेरी अभी बातें समाप्त कर ही रहा था बाहर कुछ हिन्दुस्तानी आदमियोंका उच्च स्वर सुनायी पड़ा। दरवाजेके खुले मार्गसे पालकीसे उतरे एक पंडितजी कमरेमें घुसे। पंडितजी नयनसुखकी मिरजई पहने थे। ललाट-पर भस्मका त्रिपुण्ड और पैरोंमें लकड़ीके बने खड़ाऊँ जिसकी खूँटियोंपर चाँदी मढ़ी थी। ब्राह्मणकी उम्र प्रायः पचपनके होगी। बड़ी-बड़ी

मूछें आधी पक चली थीं। फिर भी चेहरा भरा और शरीर गठा था। आँखें बड़ी-बड़ी प्रभावशालिनी थीं। देखनेसे ही उनके उच्च वंश, शिक्षा और सम्पन्नताका पता लग जाता। उन्हें देखते ही चेरी अपनी कुर्सीसे उठ खड़ा हुआ। अभ्यासके अनुसार हिन्दीमें बोला—'पालागी महाराज ! आवाऽऽ, बैठऽऽ।'

कमरेमें एक चौकी कोनेमें धरी थी जिसपर कुशाका आसन बिछा था। पंडितजी आसनपर जा विराजे। डेविसकी ओर मुँहकर, जो इस ब्राह्मणके प्रवेश और चेरीकी मुद्रामें विनययुक्त परिवर्तन देख कुछ विस्मित सा हो रहा था, चेरीने कहा—'सम्भवतः, आप इन्हें पहचानते नहीं। मैंने आपको अपना गुरु बनाया है। आपका नाम पंडित ताराशङ्कर है। आप अच्छे ज्योतिषी और पंडित हैं। मैं आपसे संस्कृत और ज्योतिष पढ़ रहा हूँ।'

फिर आगत ब्राह्मणकी ओर देखकर हँसते हुए कहा—'ये हमारे मित्र और इस जिलेके कलक्टर और जज हैं। आपका नाम तो आप जानते होंगे।

पंडित ताराशंकरने हँसनेका प्रयासकर डेविसको देखा; किन्तु पहली ही दृष्टिमें दोनोंके हृदयोंने भाँप लिया कि यह आदमी अच्छा नहीं। दोनों ही एक दूसरेसे सतर्क रहनेका संकल्पकर बाह्य रूपसे शिष्टाचारका अभिनय करने लगे।

'हिन्दुस्तानी ज्योतिष उतना शुद्ध नहीं जितना हमारा गणित—' डेविस बोला।

'यह आप कैसे कह सकते हैं?'—पहले ही प्रहारसे तिलमिला उठे ताराशङ्करने भारतीय गणितका स्थान सर्वोपरि सिद्ध करनेकी मुद्रा दिखानेका प्रयासकर उच्च स्वरमें कहा—'हमारा भारतीय ज्ञान अगाध है, महासमुद्र-सा। इसके एक-एक विभाग अनन्त हैं।'

'किन्तु पंडित जी, क्या आप बता सकेंगे कि आपका मकर संक्रान्ति पर्व इस वर्ष किस दिन पड़ेगा?'

'यह तो पञ्चाङ्ग देखकर बताया जा सकता है।'

'क्या गतवर्ष भी यह त्यौहार इसी दिन पड़ा था'—डेविस आँखोंकी भौंहें मरोड़कर अपनी सफलता और तर्कशक्तिका प्रदर्शन कर रहा था।

'यह क्या आवश्यक है? दिन कोई भी हो सकता है, सप्ताह भी कोई हो सकता है।'

'हाँ और क्या? महीना भी कोई और हो सकता है। चाहे माघ हो या पूस, संक्रान्तिसे काम'—डेविस ने कठोर व्यंगकर ब्राह्मण ताराशंकर का हृदय हिला दिया। ताराशङ्कर कुछ कह न सके। चुपचाप उस वाचाल और चतुर डेविसका मुँह ताकते रह गये।

'किन्तु हमारे यहां ऐसा नहीं है। हमारा गणित पूर्णतः शुद्ध है। आपकी संक्रान्ति भले किसी दिन पड़ती हो, किसी सप्ताह या महीनेमें हो, किन्तु हमारे गणितके अनुसार उसकी तारीख चौदह जनवरी ही होगी। आपका त्यौहार आगे पीछे हो जाय, परन्तु हमारा चौदह जनवरी अटल है।'

धूर्तताके सम्मुख सरलता परास्त हो गयी। हिन्दुस्तानका अल्प शिक्षित व्यक्ति इंग्लैंडके चतुर और वाक्कुशल शासकके जालमें फँस गया। वह बगलें झाँकने लगे। आज सबेरे ही सबेरे इस 'कौवे' के एक साधारण-से प्रहारसे पराजित होनेके विचारसे वह जमीनमें धँस गये। ग्लानि, घृणा और मूक पश्चातापसे उनका मन तड़प उठा।

चेरीने उनकी यह दशा देखी तो विषय-परिवर्तनके लिए बोला—'खैर, मारिये गोली इन बातोंको। यह वर्ष हमारा कैसा रहेगा? कृपाकर बताइये। इस वर्ष तो मुझे कहीं जाना न पड़ेगा?' कहकर उसने हथेली फैला दी।

ताराशङ्करने चेरीकी हथेलियोंको उलटा-पलटा। फिर रेखाओंको ध्यानसे पढ़नेका प्रयास करते हुए बोले—'इस वर्ष आपको जाना होगा। कहाँ जाना होगा, यह तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु कुछ लक्षण हैं ऐसे....।'

डेविसका मन डोल उठा। पदोन्नतिकी भावना लहरें लेने लगी। अपने भविष्यकी जिज्ञासा प्रबल हो मचलने लगी। हाथ

फैलाता हुआ बोला—'हमारा भी देखें। मेरे लिए क्या क्या लिखा है ?'

'मैं एक ही व्यक्तिका हाथ एक दिन देखता हूँ। आपका हाथ कल देखूँगा, आज नहीं।' कहकर मानो उसकी चोटको कुछ राहत दे रहे हों, मुस्कुराकर बोले—'मैं गरीब ब्राह्मण हूँ। ज्योतिषको रोजगार नहीं बनाया; अन्यथा अबतक सोनेकी इमारत खड़ी कर लिये होता। जहाँ आप ऐसे यजमान हैं वहाँ लक्ष्मीका अभाव ? किन्तु मेरा यह पेशा नहीं। कल या किसी दिन आऊँगा तो देख दूँगा।'

चेरी ताराशङ्करके इस उत्तरसे खिलखिला उठा। ऐसा जान पड़ा मानो वह इसी उत्तरकी आशा करता था। और डेविस इस साधारण हिन्दुस्तानी पंडितके तिरस्कार और उपेक्षासे मर्माहत हो जल-भुन उठा। जिलेका सर्वोच्च अधिकारी और उसका अपमान। गरीब ब्राह्मणका यह दुस्साहस। उसने बूटकी नोकसे कमरेकी फर्शको कई बार रगड़ा, किन्तु चेरीके गुरु होनेकी बातका ख्यालकर चुपचाप यह गरल पी गया।

'अच्छा अब चलूँ। मेरी बातपर अवश्य ध्यान दें। वजीरअली लड़का है तो क्या उससे सावधान ही रहना चाहिये।'

'मैं भी इसे समझता हूँ। लिखूँगा. गवरनर जनरलको भी सूचित कर दूँगा। अच्छा; नमस्कार।' बिदाईका अभिनन्दन कर जब डेविस अपने घोड़ेपर सवार हो, पंडितकी पालकी और कहारोंपर एक स्पर्धाभरी दृष्टि डालता हुआ चला गया तो चेरीने गंभीर हो कहा—'समय बहुत ही बलवान है।'

१०

ज़िन्दगीके थपेड़ोंमें

वह भी क्या दिन थे। आह! क्या कभी लौटकर आ सकते हैं? यदि आ सकते तो वजीर अली अपना सर्वस्व देकर भी उन्हें खरीद लेता और फिर जीवन भर यह आगत विपत्तिके दिन हँसी-खुशीसे झेल लेता; किन्तु काश! आदमी कितना बेबस है, कितना कमजोर, और जमाना कितना क्रूर! कितने दिनोंकी बात ही है! कुल चार ही साल तो बीते। ऐसा लगता है मानों वह उच्छृङ्खल जवानी मौसमी परिन्दे सी निकल गयी। क्या मस्ती थी, क्या शवाब था! वालिद साहब लाख सिर पटका किये, मगर वह मनमानी करके ही रहता। दिन-रात कबूतर और मुर्गे लड़ाता। गोमतीके तटपर नावोंकी बहार लेता। कितने मौजके दिन थे।

एक दिन जनाब बन्दे अली खाँ साहब आये। वालिद साहबसे रब्त-जब्त थी ही, मेरा निकाह पढ़ा दिया गया। लड़की यों भी खूबसूरत थी। मैंने कई बार गुलमुहरको देखा था। वाकई गुलमुहर थी। शादीकी बारात थी या कोई मेला। लखनऊने अपनी जिन्दगीमें वह नजारा न देखा होगा। आतिशबाजीके फव्वारों और झरनोंसे

शहर रौनक हो उठा था। चर्खियोंकी शान निराली थी। महीनों तक हँसी-खुशी बिखरती रही। खैरातका फाटक खुल गया था। अशर्फियाँ और मुहरें पानीके भाव बहाये गये और आज मेरे एक-एक खर्चका हिसाब लगाया जा रहा है। गिन-गिनकर मुझे पेन्शन दी जाती है। हाय ! वह भी क्या दिन थे !

बारात जा रही थी। मैं हाथीपर था। हाथीकी सजावटपर तीन लाख खर्च हुए थे। बादमें पता लगा, बारातकी चमक-दमकमें बीस लाख रुपये खर्च किये गये थे। अब्बा थे, वह पैदल जा रहे थे। अमीरों और सरदारोंने लाख समझाया—हुजूर ! हाथी पर सवार हो लें, लेकिन वह भी थे कि जिदपर अड़े रह गये। यही कहते थे कि वजीर अली आजका बादशाह है। वह नौशा है। उसकी बारातके आगे पैदल चलनेमें ही हमारी शोभा है, गर्व है। महीनों, राग-रंगकी जो लहर मचलती रह गयी, उसकी मस्ती क्या भूली जा सकती है ? मगर मैं कितना बदनसीब हूँ, कितना गुनहगार। बादशाह बीमार थे। मुझे बार-बार चेताया करते थे, समझ ले; लेकिन मेरी आँखोंपर पर्दा जो पड़ा था। आखिरी हद तक उनकी बात न मानी। वह कहते रह गये कि इन फिरंगियोंका एतबार नहीं। इनसे रास्ता बना लो, सँभल जाओ लेकिन यहाँ तो फकीरी लिखी थी मुकद्दरमें। हारकर एक दिन घबड़ाकर उन्होंने कह ही दिया था—'फर्राशका लड़का अपनी अस-लियत पर आ गया।' वह क्यों न कहते ? आखिर मैंने भी तो इन्तहा कर दी थी। नौकरोंसे मातम मनवाता। खुद तो काले कपड़े पहिनता, औरोंको भी पहनाता और सियापा कराता। उनका कमजोर बूढ़ा दिल कैसे यह सब बर्दाश्त करता ? बीमार पड़े और एक दिन आँखें मूँद लीं।

उन्होंने आँखें मूँद लीं या मेरी किस्मत अंधी हो गयी ? उनके जाते ही आज मैं यहाँ बेबस बनाकर बेपरके परिन्देकी तरह फेंक दिया गया हूँ। यही नहीं, आज मेरी पैदाइश बाजारकी बातका हवाला बन गयी है। अम्मी जानपर यह तोहमत लगायी गयी है। वाहरे

फिरंगी, मारते हो ऐसी कि रुलाई न फूटे। दिलमें ही ऊबकर आदमी मर जाय! क्या मैं सचमुच फर्राशका लड़का हूँ? बादशाह आसफुदौलाका सगा बेटा नहीं? अवधका शाहजादा नहीं? मसनदका हकदार नहीं?

वजीर अली निराशा, शोक और ग्लानिके घोर तमसाछन्न रात्रिमें भटक रहा था। कहीं मार्ग सूझता न था। हताश हो उसकी आत्मा रो उठी—आज मेरा कोई साथी नहीं, कोई संगी नहीं। लखनऊसे उठाकर बनारस फेंक दिया गया, इस तरह गोया कि मसला हुआ फूल हूँ, रास्तेका काँटा हूँ। आज मेरा कोई मददगार नहीं। हिन्दुस्तानके इस लम्बे-चौड़े मैदानमें क्या नवाबों और राजाओंका नाम लेनेवाला कोई नहीं रह गया? क्या उनके सगे भी उनकी इस विपत्तिमें सहायता नहीं कर सकते? पर करेंगे क्यों? हमने ही उनके साथ कौन-सा नेक सलूक किया है जिससे उनका दिल पसीजे। हाय! यही तो दुनिया है। सब कुछ अपनी आँखोंसे देख लो वजीरअली। तुमने सुख, वैभव और ऐश्वर्यकी चकाचौंधकारी ज्योति देखी थी—आज भूख, उत्पीड़न और नरककी ज्वालामें दहकते पापोंको भी देख लो।

वजीरअली अपने निवासस्थानके पिछले भागमें बैठा था। कबीरचौराके जिस हिस्सेमें यह भवन था उसके चारो ओर लम्बा-चौड़ा बाग था जिसमें फलके और अन्य वन्य वृक्ष लगे थे। बीचमें बरसाती नाला बहता था जो बंगलेका आलिंगन करता जाता। विलासी निर्माताने नालेको उद्देश्यसे ही भवनसे सटाकर निकाला था। बागमें पूर्ण सन्नाटा था। पत्थरके एक स्वच्छ आसनपर बैठा वजीरअली इन्हीं चिन्ताओंमें डूब उतरा रहा था कि सहसा किसीने पीछेसे आकर उसकी आँखें मूँद लीं। वजीरअली क्षण भरके लिए चकपकाया; फिर हँसकर उसका हाथ पकड़ लिया—'मेरी मलिका! मेरा दिल!'

'ऊँ हूँ, नाम बताओ, यों नहीं।' आँखोंको उसी प्रकार बन्द रखते हुए उसने कहा—'गौहर! मेरी शान्ति, मेरी खुशी।' उसने अपनी हथेलियोंसे टटोलकर गौहरकी कलाई पकड़ ली और उसके मुलायम हाथोंको

हटाकर सहलाता हुआ बोला—'गौहर गमकी इन काली रातोंमें मुझे अकेले जिसका सहारा है क्या उसके स्पर्शको भी मैं नहीं जान पाऊँगा? यह स्पर्श, यह पुलक बेहोशीसे भी मुझे होशमें ला सकती है।'

'क्या कह रहे हैं आप। आपकी तबियत कैसी है? चेहरा उतरा है। आँखें उदास हैं। मुँहपर न हँसी है, न रौनक। यहाँ अकेले बैठे-बैठे क्या कर रहे थे?'

'अपनी बदकिस्मतीपर आँसू बहा रहा था। मैं मर्द हूँ, लेकिन क्या कर सकता हूँ। परकटे परिन्दे-सा तड़फड़ा रहा हूँ, कोई मुझपर दया करनेवाला नहीं।'

गौहर पास ही चबूतरे पर बैठ गयी। चबूतरेपर बगलमें ही खड़े मौलश्री वृक्षकी डाल लटक रही थी। उसके नीचे संध्या बेलामें गौहरका यौवनमंडित मुख मण्डल अपूर्व ज्योति से जगमगा उठा। वजीर अली अपने स्थानसे उठा। चबूतरेपर उसकी बगलमें जा बैठा और टकटकी बाँधकर उसके नेत्रोंमें देखने लगा, मानो अपने हृदयकी अशान्तिका समाधान उसमें ढूँढ़ रहा हो।

'दयाकी भीख माँगते हैं कायर, डरपोंक; और सिपाही हँसते-हँसते तलवारके घाट उतर जाता है। आप खुद आगे बढ़ें, मददगार पीछे आयेंगे।' गौहरके गोरे मुखपर एक अलौकिक ओज चमक उठा। वजीर अली उसके मुँहकी ओर ताकता रह गया। इस युवतीका वाह्य सौन्दर्य ही उसने देखा था और उसपर मुग्ध हो गया था। आज उसका हृदय भी उसने देख लिया। सन्ध्याकी एकान्त नीरवतामें जब वजीर अपने विगत सुखकी स्मृतिसे खिन्न हो विह्वल हो उठा था, इस सुन्दरी रमणीकी प्रोत्साहन-भरी वाणीने उसपर औषधि-सा काम किया।

'दिलवर! मैं तुम पर कुर्बान हूँ। आज मेरे हाथ खाली हैं, अवधकी मसनद नहीं। मैं तुम्हें क्या बख्शीश दूँ?'

'मैं मागूँ?'

'भिखारी वजीर आज तुम्हें दे ही क्या सकता है गौहर ? तुम्हें बख्शीश देने लायक कोई चीज मेरी निगाहमें नहीं है।'

'है, आप केवल हाँ कहें।'

'तब माँगो।'

'देना पड़ेगा।'

'दूँगा।'

'तों माँगती हूँ। मैं आपको माँगती हूँ। मुझे अवधका नवाब नहीं चाहिये। मैं मसनदकी ख्वाहिशगार नहीं हूँ। मुझे अपनी झोपड़ीमें शान चाहिये, मेरी जिन्दगी आरामसे गुजर जायगी।'

गौहर देखनेमें जितनी छोटी है, वास्तवमें वह वैसी नहीं। उसमें प्रगल्भाओंकी वाचालता, वृद्धाओंका अनुभव और हितैषियोंका प्रेम है। वजीर अलीने ठंढी साँस ली और उसने अपने दोनों हाथ बढ़ा दिये। गौहर दो पग पीछे हट गयी।

'किसीकी सहायता माँगनेकी जरूरत नहीं। अभी हमें अपनी ही तैयारियाँ करनी चाहिये। लखनऊमें हमारे जो आदमी हैं उन्हें संघटित करना, मराठोंके वकीलके मार्फत पेशवा दरबारसे हमें बातें करनी चाहिये। आसपास कोई काम न देगा। बङ्गालमें एक आदमी है ढाकाके नवाब। उन्हें पत्र लिखिये।'

यह साधारण परिवारकी एक सामान्य युवती है अथवा कोई कुशल राजनीतिज्ञ; वजीरअली जान न सका। उसने अबतक केवल विलासकी पुतलियाँ देखी थीं, उनके यौवन-सरोवरका हिल्लोल देखा था, किन्तु गौहरके मानस तलमें निहित इस अमूल्य निधिको सहसा इतने निकट पाकर वह हर्ष, विस्मय और अनेक नवीन भावोंसे चकित हो उठा। मस्तीसे लड़खड़ाते पैरोंसे उठा और संध्याकी उस क्षीण आभामें जब रातकी अँधियारी आकाशकी छोरसे उतर रही थी, उसने दोनों बाहुओंमें कसकर गौहरका आलिंगन किया और उसके अधरोंपर अपने प्रेमकी मुहर लगा दी।

'नीचे भाई साहब बैठे हैं। आप उनसे मिल लें'—अपनेको छुड़ाती हुई गौहरने कहा और वह दूर हट गयी।

'कौन, इज्जत अली? अभी तक तुमने क्यों नहीं कहा? कब आये?

कर्मासे आये हैं। उन्होंने ही तो मुझे भेजा था। यहाँ आयी तो देखा, आप अजीब गमगीन हालतमें बैठे थे। मुझसे न रहा गया तो आपको चौंका दिया। अब आप नीचे जायँ।'

यह कबाबमें हड्डी कैसी? वजीर अली कुढ़-सा गया। इज्जत अलीका इस समय आना उसे अत्यन्त बुरा लगा। गौहरको वह छोड़ना न चाहता था। किन्तु इज्जतअलीको प्रसन्न रखना भी आवश्यक था। उसकी सहायताकी उसे अत्यन्त आवश्यकता थी—'यहीं बुलवा लो।' कहकर वजीरने सामने देखा। बागके द्वारपर एक बाँदी खड़ी थी। गौहरने ताली बजाकर उसे इज्जतअलीको बुलानेका संकेत किया। जबतक इज्जत अली आये, गौहर दूर हट गयी। वजीर अली अपने पूर्व स्थानपर जा बैठा।

इज्जतको देख उसकी छोटी बहिनने सिरका कपड़ा आगे खींच लिया, किन्तु वह उठी नहीं। वजीरने उसे चबूतरेपर ही बैठनेका संकेत किया। सलाम कर इज्जत बहिनके निकट जा बैठा।

'कहो, क्या समाचार लाये। कुछ सफलता मिली?—पूछा वजीरने।

'सफलताकी पूछते हैं। हुजूर आपकी भेंटसे ही जगतसिंह खुश हो उठा। बादशाहको नजर हो और कोई अपनी खुशकिस्मत न सराहे?'

क्या कह रहे थे?

'मैंने जाते ही अशर्फियाँ, तलवार और ढाल नज़र कर आपका पैगाम सुनाया। उन्होंने बड़े ध्यानसे सुना। वहाँ और भी कई बाबू लोग थे। एकका नाम भवानीशङ्कर था। शायद वह नरायनपुरके जमींदार हैं। हुजूरके कदमोंमें वे लोग जल्दी ही हाजिर होंगे। उन्होंने हर तरहसे साथ देनेका वायदा किया है और इतमिनान दिलाया है कि

बादशाहकी मसनद वापस लानेके लिए वह हर कदम कोशिश करेंगे। बाकी वह खुद हाजिर हो बयान करेंगे।'

'खुदाका शुक्र ! या परवरदिगार ! मेरे मालिक ! तेरी मेंहरबानी ! वजीरकी बिगड़ी बना दे।' फिर ठहरकर बोला—'और हाँ, वारिसअली का कुछ पता लगा ?'

'जी हाँ, वह भी लौट आया। राजा उदितनरायन डरपोंक है। उसका दिल तो यों ही धुक-धुक करता है। वह फिरंगीसे लड़ना तो दूर, बोलना भी नहीं चाहते। साफ जवाब दे दिया।'

'अजीब नामर्द है। खैर, कोई बात नहीं इज्जत। इसीमें दोस्त और दुश्मनकी परख होती है। क्या यह आँधी हमेशा रहेगी ? बहता पानी आया और चला गया... ।'

'दिल छोटा न करें। हम तैयार हैं। आप इशारा कर दें, हम जन्नत और दोज़ख तक की दौड़ लगा देंगे, दुनिया क्या चीज है।'

अचानक महलके बाहर शामका गजर बज उठा। 'नमाजका वक्त हो गया, आप उठें। भाईजान, आप आराम कर लें'—गौहरने दोनोंसे कहा और फिर सहसा संकुचित हो उठी।

अभी इस घरमें आये उसे कितने दिन हुए ही, किन्तु गौहरका यह बदला भाव देखकर इज्जत खुश ही हुआ। निशाना ठीक बैठा है। दवा काम कर गयी। अपनी सफलता पर वह फूल उठा—इसी तरह यह योजना भी फलवती हो जाती। वजीर अलीको उसकी मसनद मिल जाय तो वह क्या होगा ? कल्पना लोकमें उड़ता-सा वह उठ खड़ा हुआ और वजीरअली को सलाम करता तेजीसे बाहर निकल गया।

आगे आगे गौहर और उसके पीछे वजीर जनानखानेमें इस प्रकार चला गया मानो मायाकी शक्तिसे खिंची कामना चंचल हो बलात् उसके पीछे-पीछे चली जाती हो।

११

प्रेमका उदय

प्रातःकाल हो रहा था। गंगा पारका आकाश लाल हो उठा था। तटवर्ती वृक्षोंपर बसेरा लेने वाले पक्षी जाग उठे थे और उनकी चुहचुआहट चारो ओर फैल रही थी। पेशवाके मन्दिरसे भोरसे ही भैरवी की मादक स्वर-लहरी बिखेरती हुई शहनाई वातायनको मस्तीसे विह्वल कर रही थी। नौबतखानेका विशाल ढोल अपनी गंभीर गड़गड़ाहटसे उषा-कालिक सन्नाटा मुखरित कर सोये नगरको मानो जगा रहा था।

ऐसे समय त्रिलोचन घाटकी सीढ़ियोंसे दो नवयुवतियाँ गंगा-स्नान करने नीचे उतरीं। उनमें एक युवती लम्बी छरहरी, एकहरे बदनकी गौरवर्णा सुकेशी थी और दूसरी श्यामा, किन्तु स्थूलांगी थी। वय दोनोंकी एक ही थी, दोनों ही षोडशी थीं। यद्यपि पूर्ण प्रकाश न होनेसे दोनोंकी सहज कान्ति स्पष्ट न दिखायी देती, फिर भी गौरवर्णा तन्वंगी युवतीके नेत्र विशाल, फटे-फटे और चंचल थे। उसकी नासिका लम्बी और कुछ आगे निकली-सी थी। ओंठ पतले थे जिनपर दाँतोंकी उज्वल पंक्ति कभी-कभी चमक उठती। दूसरी युवती सिरपर घूँघट डाले थी जिससे उसका चेहरा दिखायी न पड़ता था।

एक हाथमें धोती और दूसरेमें ताँबेकी कलशी लिये दोनों नीचे उतरीं। मढ़ीकी छतपर जाकर कलशी और धोती रखा। ज्यों ही नीचे उतर रही थीं कि मढ़ीमेंसे एक कठोर आवाज आयी—'कौन है ?'

'मैं हूँ भइया, त्रिबेणी ! आज रात तुम यहीं रह गये ?'—त्रिवेणी ने उत्तर दिया। परिचित स्वर सुनकर उसी व्यक्तिने कहा—हां, बहिन, यहीं रह गया। अभी क्यों आ गयी ? कुछ देर बाद आतीं।'

'सबेरा हो गया है, कोई हर्ज नहीं; फिर तुम तो हो ही।'

'मैं तो हूँ ही। भंगड़के रहते किस माईके लालकी हिम्मत है जो सामने आये। बोटी नोचवा लूँगा। आरामसे नहा लो। महाराजजी आ गये ?

'हाँ आ गये। कल ही आये हैं।' युवतियाँ नीचे जलमें उतरीं। दूर गंगा तटपरके अन्य घाटोंपर साधुओं और विरक्त महापुरुषोंके कंठसे निःसृत श्लोकावली वायु-तरंगोंपर तैरती हुई सुनायी पड़ रही थी। अनेक मन्दिरोंमें आरती हो रही थी। दूरके घाटोंसे आते हुए बाजोंके नादमें अपनी एकान्त वार्ता छिपाकर दोनो बातें करने लगीं। किन्तु यदि वह वह ध्यानसे देखती तो उन्हें पता चलता कि भंगड़की मढ़ीमें बैठा एक और व्यक्ति भी उनकी चुहलभरी गुत वार्ता सुन रहा था। वह गंगाधर था। रातको भंगड़के साथ उसकी मढ़ीमें ही रह गया था। आधी रातको ही भंगड़ने उसे जगाया, नित्य कर्मसे निवृत कराकर गंगामें गोता लगाया, मढ़ीकी छतपर हजार डंड बैठक लगायी, तब कहीं जाकर विश्राम लिया। मढ़ीमें छिपे इस दूसरे व्यक्तिकी उपस्थितिसे अनभिज्ञ दोनों युवतियाँ अपनी गतिमें बढ़ती जाती थीं। भंगड़ उनकी दृष्टिमें निरा पागल था। उसके सामने बातें करनेमें किसी प्रकारके संकोचका अनुभव उन्हें न होता।

'अच्छा मान लो, तुम्हारे पिताजी न तैयार हुए तब ?'

'तब मैं क्या कर सकती हूँ; लेकिन अन्नपूर्णा मेरा मन कहता है, बाबा इस सम्बन्धपर राजी हो जायँगे'—त्रिवेणी बोली।

'क्यों ?—उसकी सखीने उसका दिल टटोलनेके लिए पूछा—

'क्यों न तैयार होंगे ? वह भी ज्योतिषीके बेटे हैं, फिर राज ज्योतिषीके। अच्छा कुल है, प्रतिष्ठा है; देखनेमें भी हृष्ट-पुष्ट हैं ! फिर क्या चाहिये ? पिताजी तो राजी हो ही जायँगे।

'और तू ।'

त्रिवेणीका मन हुआ कि कह दे—पगली मैं तो उसी दिन राजी हो गयी जिस दिन पहले-पहल उन्हें देखा था। किन्तु डाँटती हुई बोली—'चुप, मुँहजली.... ।'

'देखो, सबेरे-सबेरे गाली मत दो। चार पहरका दिन बीतना है। मुँहमें आग लगे तुम्हारे.... ।'

'अच्छा मेरे ही, किन्तु उन्हींके हाथों। यह भी कह दे सखी, गंगामें खड़ी है। बासी मुँह कही गयी बात सच होती है। तेरा आशीर्वाद निष्फल न होगा।'

'तो क्या तू उनसे प्रेम करने लगी है ? देख त्रिवेणी, यह भूल न करना.... ।' अन्नपूर्णा कुछ और कहती, किन्तु उसकी बातें बीच ही में काटकर त्रिवेणीने उत्तर दिया—'प्रेम करना भूल नहीं, वह नारीका अधिकार है। इसे वह बड़े यत्नसे सुरक्षित रखती है, और उचित पात्र देखकर उसके हाथों सौंप देती हैं। किन्तु वह ऐसा तभी करती है जब वह उसे आत्मसात् कर लेती है अथवा उसमें स्वयं ही आत्मभूत हो जाती है। तब वहाँ अधिकार-कर्त्तव्यका झगड़ा नहीं रह जाता।'

'परन्तु तू यह क्यों भूल जाती है कि तू अभी अविवाहित है, कुमारी। और कुमारी कन्याका पर-पुरुष प्रेम अनुचित है।'

'ठीक कहती हो। विवाहके पूर्व प्रेम अनुचित है, चरित्र हीनता है। हमारे काव्यों और इतिहासमें विवाहके पूर्व प्रेमके सैकड़ों उदाहरण प्रमाण रूप हैं। यही प्रेम बादमें पतिव्रत बन जाता है। तब आदर्श और मर्यादा बनकर स्त्रियोंका आभूषण और श्लाघ्य गुण हो जाता है।'

'अच्छा भाई मान लिया। तू ठहरी पंडितकी बेटी और स्वयं भी पंडिता हैं, शास्त्र-पुराण बाँचनेवाली। मैं तुमसे बतकुच्चन नहीं करती। कौन सबेरे-सबेरे खोपड़ी खराब करें।' कहकर अन्नपूर्णा कुछ क्षणोंके

लिए मौन हो गयी। वह पानीमें शरीर मल-मलकर धोने लगी; किन्तु त्रिवेणीका मन कहीं और उड़ रहा था। उसकी चेष्टाएँ असंयमित देख अन्नपूर्णाने कहा—'अरे डुबकी तो लगा, कबतक खड़ी-खड़ी सोचती रहेगी।'

'अयँ, ठीक कहती है।'—त्रिवेणी बोली।

अन्नपूर्णाने त्रिवेणीकी प्रेम-विह्वलता देखी तो तड़प उठी। क्यों न यह रमणी उस पुरुष-रत्नके लिए व्याकुल हो उठे। सत्रहवाँ साल बीत चुका, अठारहवाँ लगा है। ब्याह हो गया होता तो दो बच्चे भी हुए होते। पर किस्मत कैसी खोटी है? पहले साल शादी ठीक हुई तो दादी चल बसीं। दूसरी बार ब्याह तय हुआ तो तेल-हल्दीके ही दिन माँ परलोक सिधारीं। तीसरा प्रयास हुआ तो बातें चलते हीं भाई चल बसा। क्या हर बार विवाहकी बात आरम्भ करते ही एक-एक आदमी इसी तरह उठता जायगा? अन्नपूर्णा भयसे काँप उठीं।

उसे इस प्रकार ठिठकी और स्तम्भित देख त्रिवेणीने चुटकी ली—'बोलती क्यों नहीं? तू किस चिन्तामें पड़ गयी? क्या खुद उनसे अपना ब्याह रचाना चाहती है? सच कह तो ठीक करूँ?'

'डूब नहीं मरती इसी पानीमें।'

'मैं क्यों मरूँ?'

'अच्छा मरेगी नहीं तो इसी तरह बकेगी। हाँ, ठीक तो है, तू क्यों मरेगी। मर जायगी तो हमारे सिपाही बाबू क्या करेंगे? रो-रोकर जान दे देंगे?'

'त्रिवेणी निकलती है जलसे या नहीं?'—मढ़ीमें बैठे-बैठे उनकी बातें सुनकर कुढ़ते हुए भंगड़ने रोषयुक्त स्वरमें डाँटा। यद्यपि उसे युवतियोंके संकेतका अर्थ ज्ञात न हुआ और न वह जान ही सका कि उसके पास यह जो गंगाधर बैठा है, जगत सिंहका सन्देश लेकर आने-वाला—वही इन युवतियोंकी वार्ताका विषय है। जान पाता तो क्या करता, भगवान जाने।

युवतियाँ जलसे निकलीं। ऊपर जाकर वस्त्र बदला। धोतियाँ कचारीं, कलशीमें जल लिया और चुपचाप मंथर गतिसे सीढ़ियोंपर चढ़कर चक्करदार गलीमें विलीन हो गयीं।

गंगाधरको लगा जैसे एक सितार बज रहा था, अपूर्व मादक गतिसे, स्वर्गीय लयमें, और उसका तार टूट गया हो; मानो संसारकी वाचालता विनष्ट हो गयी, समस्त प्रकाश लुप्त हो गया। वह व्याकुल हो उठ खड़ा हुआ—'मैं चलता हूँ। मुझे जाना भी दूर है। सवेरा हुआ। तुम अभी आ जाना।'

'जाते हो? जाओ। बाबू साहेबसे कह देना—अंग अंग कटकर गिर पड़ेगा, तब कहीं कोई भंगड़को पकड़ सकता है। सत्रह गोली खाकर भी मैं उनकी मदद करूँगा। न्यायीका पक्ष लेना, अन्यायीका मुकाबला करना, यही मेरा धर्म है। कह देना, वह चिन्ता न करें। मालिक परमेश्वर हैं। तुम चलो, मैं आ रहा हूँ।'

'अच्छा, जय गंगा मैया की, जय बाबा विश्वनाथ।'

गंगाधरने तलवार उठायी और उन्हीं सीढ़ियोंसे होता, जिधर त्रिवेणी और उसकी सहेली गयी थीं, ऊपर चला गया।

मढ़ीमें सन्नाटा छा गया। भंगड़ने दरवाजा खोल दिया। उसे ज्ञात हुआ मानों गंगाके उस पार उस तटपर भी कोई स्त्री स्नान करने आयी हो। प्रातःकालकी बेलामें वह शायद कोई भजन गा रही थी। बहुत ध्यान देनेपर सुनायी पड़ा—चाकर रहसूँ बाग लगासूँ नित उठ दर्शन पासूँ। वृन्दावनकी कुञ्जगलिनमें तेरी लीला गासूँ···मने चाकर राखोजी।

गायिकाके स्वरसे पता चला मानों उसमें अपार वेदना भरी हो। पार जानेके लिए डोंगी खोली और चल पड़ा।

घाटपर पेशवाका मन्दिर था। मन्दिरमें शिव, उमा और गणेश की प्रतिमाएँ थीं। मन्दिरकी आरती हो चुकी थी। और पूजारी चला गया था। चारो ओर सन्नाटा और सूनसान था। मन्दिर खाली पड़ा था। हाँ, घाटकी ओर छतपर एक वृद्ध मराठा

पुरुष सितारपर संस्कृतका कोई पद गा रहा था। त्रिवेणीने उसका आलाप सुना, किन्तु मराठा पुरुषने संगीतमें मग्न होनेसे उनका आना न जाना।

त्रिवेणी और अन्नपूर्णाने दर्शन किये, मन्दिरकी परिक्रमा की और घरकी ओर चलीं। अन्नपूर्णाका घर पास ही था, वह गलीमें घुस गयी।

त्रिवेणीका मन बार-बार एक बातपर चौंक उठता था। अन्नपूर्णाने उससे कहा था—'तू कुमारी है। क्या कुमारीका पर-पुरुष प्रेम अनुचित नहीं? ठीक कहती थी। मैं कुमारी हूँ। अभी उनसे विवाहकी कौन कहे, विवाहकी बातें भी नहीं चली हैं; ऐसी दशामें उनका चिन्तन, स्मरण उचित नहीं। यह कुमारियोंकी मर्यादाके विरुद्धाचरण है। किन्तु सहसा उसके मनमें एक नवीन भाव जाग उठा। मैं कुमारी अवश्य हूँ, परन्तु वह ठीक पर-पुरुष भी तो नहीं है। यदि प्रेम दृढ़ और सत्य हो तो वही पर-पुरुष अपना बनाया जा सकता है। इसी कुमारी-प्रेमने दमयंतीको नलसे, ऊषाको अनिरुद्धसे मिला दिया था। कालान्तरमें वही प्रेम पूज्य हो गया। वास्तवमें प्रेम कुमारी बालिकाका वह दिव्य उपहार है जिसे वह अपने पवित्र शरीर और निर्मल हृदयके पात्रमें रखकर अपने प्रियतम पतिके चरणोंमें समर्पित कर देती है। वहीं यह प्रेम धन्य हो जाता है। तब मुझे भी अपना व्रत सुदृढ़ और साधना पक्की कर लेनी चाहिये। देखूँ, वह जाते कहाँ हैं?'

त्रिवेणी आगे बढ़ी। पास ही विष्णु-मन्दिर था। इच्छा हुई, दर्शन करती चले। किन्तु ज्यों ही मन्दिरके प्रांगणमें पैर बढ़ाया कि उसे काठ मार गया। उस प्रभात कालमें शीतल वायुकी लहरोंमें भी उसका सुकुमार शरीर पसीने-पसीने हो उठा। उसने एक बार दृष्टि उठाकर सामने देखा-वही तो—आँखें चार हुईं और उसने नजरे झुका लीं।

मन्दिरमें आज क्या उसके हृदयका देवता साक्षात आकर खड़ा हो गया है! वह क्या करे? चलकर चरणों पर गिर पड़े? किन्तु उसके पाँव उठ न सके। वह जड़वत खड़ी रही।

गंगाधर उसी भाँति निर्निमेष नयनोंसे उसे निहार रहा था, मानो यौवन, सौन्दर्य और सरलताकी इस माधुरीको वह पीकर भी तृप्त न हो पा रहा था। मंदिरमें किसीको आहट तक न लगती। वास्तवमें मंदिर सूना था। विरला ही इसमें दर्शन करने आते। फिर इतने तड़के कौन आता था।

'उस दिन नाम पूछा था। मैंने तो बता दिया, किन्तु तुमने अपना नहीं बताया?' गंगाधरने बातें शुरू करनेके विचारसे पूछा।

त्रिवेणी गड़ गयी। शरीर कंटकित हो उठा। वह क्या बताये, यह भी पूछनेका कोई तरीका है?

'मैं उसी दिन पूछना चाहता था, पर तुम भीतर चली गयीं।'

'आप भी तो चले गये।'

तब क्या मुझे रुकना चाहिये था? त्रिवेणी मुझे रोकना चाहती थी। हाय! मैं कैसा पागल हूँ। गंगाधर अपनी मूर्खतापर खीझ उठा।

'मैं सोचती थी आप क्या समझते होंगे? पिताजी घरपर नहीं थे, इसीसे····। अब आ गये हैं। उनसे बातें कीजिये।' कहकर बिना उसकी ओर देखे त्रिवेणी मन्दिरके बाहर चली गयी।

गंगाधर जड़वत् खड़ा रह गया।

सहसा गंगा पारसे वायुके साथ उड़ती एक नारी कंठका क्षीण स्वर सुनायी पड़ा—सूली ऊपर सेज हमारी सोना केहि विधि होय····।

शूली ऊपर सेज हमारी····।'

यह कौन गा रही है? मानो स्वयं करुणा जाग उठी हो, वायुके कण-कणमें मिल गयी हो—फिर वही गीत····वही स्वर····।

सूली ऊपर सेज हमारी···· ·· सोना केहि विधि होय।

गगन मंडल पर सेज पियाकी मिलना केहि विधि होय।

उसी गीतके लयसे लय मिलाकर गंगाधरने कंठ खोलकर गाया—

हे···री····मैं तो प्रेम दीवानी मेरा दर्द न जाने कोय····

फिर लपक कर आगे बढ़ गया।

भंगड़के बीच धारतक पहुँचनेतक वह गीत सुनायी पड़ता रहा। फिर सहसा मन्द होने लगा। और धीरे-धीरे शान्त होता हुआ बिलकुल नीरव हो गया। ऐसा लगा मानो गायिकाने तटसे मुँह फेर लिया हो। भंगड़ जब उस पार पहुँचा तब तक गायिका दूर जा चुकी थी। उसने मनमें सोचा, महिला कटेसर गाँवकी रही होगी। नहाने आयी थी और अब नहाकर चली गयी।

वह तो चली गयी, किन्तु उसके गीतकी मर्मिकता, हृदयको तड़पा देनेवाली उसकी करुणा, कण्ठमें वेदना और आत्माकी संवेदनापूर्ण पुकार अब भी वायुमें थिरक रही थी। नहाते समय भंगड़ने सोचा कि मेरी ही भाँति यह रमणी भी वियोगिनी मालूम होती है। तभी उसके स्वर में इतनी व्यथा इतनी संवेदनशील माधुरी है।

फिर मन उधरसे हटाकर उसने उसी स्थानपर स्नान किया जहाँ उसके अनजानमें मंगला गौरी अभी कुछ ही देर पहले स्नान कर और उसके लिए मंगल कामना कर घर चली गयी थी।

स्नान-ध्यान कर भंगड़ नावपर चढ़ा और इस पार अपनी मढ़ीकी ओर लौट आया।

गंगाधरके जानेके दो घण्टे बाद भंगड़ ऊपर आया। तब तक सूर्यकी स्वर्णिम किरणें तटवर्ती मकानोंके शीश छूती वातायनमें फैल चुकी थीं। शहरमें चहल-पहल शुरू हो गयी थी। पानी भरनेवाले कँहार कंधेपर पीतल-ताँबेके गगरा लिये गलियोंमें आवाज देते आने लगे थे। मालिनें सुगन्धित पुष्पोंके गजरे लिये अपना डगरा पसारे शोर मचा रही थीं। गंगा-स्नानकर आनेवाले सन्यासियों, मराठा-विधवाओं और वृद्ध पुरुषोंका क्रम बढ़ता जा रहा था। भंगड़ पण्डित रामवल्लभ शास्त्रीके घरकी ओर मुड़ा।

गलीमें मुड़ते ही शास्त्रीजीका घर पहला था। फाटकके भीतर घर पक्का था, तिमंजिला; पर ऊपर खपरैल थी। नीचे सुन्दर बगीचा और चौड़ा मैदान था जिसमें अनेक फूलवाले पौधे, तुलसी और दूसरी झाड़ियाँ तथा नीम, कटहल और आमके पेड़ लगे थे। घरके सामने एक पक्का

कुआँ था। उसकी जगतपर चन्दनकी एक चौकीपर कुशासन बिछाये रामवल्लभ शास्त्री अभी-अभी अपनी प्रातः कालिक संध्या-पूजनसे निवृत्त हो बैठे किसी पड़ोसीसे बातें कर रहे थे। भंगड़को देखा तो वहींसे हँसते बोले—'अरे आओ आओ, आज बड़े सबेरे कैसे दर्शन दिया।'

'महाराज ! हम तो संसारके क्षुद्र जीव हैं, अनेक मायामें लिपटे। दर्शन तो आपका करना था। रात रह गया था मढ़ीपर। जा रहा था रामकटोरा बाबू जगतसिंहके यहाँ, बुलवाया है। सोचा, शास्त्रीजीका भी दर्शन करता चलूँ।'

'क्या आज्ञा है ? कहें।'

'आज्ञा कुछ नहीं। त्रिवेणीका विवाह कर दें। अब यह वर्ष न जाने दें।' भंगड़के स्वरमें आत्मीयता स्वयं झलकने लगी थी।

'सोचता मैं भी यही हूँ। कई वर्षों से इसी उधेड़-बुन में पड़ा हूँ, पर करूँ क्या ?'

'करना क्या है ? वह तो कभी न कभी करना ही है।'

'तुमसे क्या छिपाऊँ ? मैंने उस अभागी लड़कीकी कुण्डली देखी है। विवाहके वर्ष भर बाद ही वह विधवा हो जायगी।' राम-वल्लभ शास्त्री मानो अपनी भविष्यवाणीकी भयंकरतासे दबकर मौन हो गये।

भंगड़को काटो तो खून नहीं। उसने इस उत्तरकी आशा न की थी। अब क्या कहे ? आया था शास्त्रीको उपदेश देने। अब आप ही बगलें झाँकने लगा।

रामवल्लभने फिर कहा—'मेरा गणित झूठा नहीं हो सकता। कई बार हिसाब लगाकर मैंने देखा है। एक ही उत्तर आता है और वह ध्रुव है। इसीसे उसका विवाह नहीं करता।'

'आप तो पंडित हैं, विज्ञ, ज्ञानी ब्राह्मण; मैं भंगड़ आपको क्या ज्ञान सिखाऊँ ? हाँ, सुना है प्राचीन युगमें इसी प्रकार सावित्रीको भी शाप था। किन्तु जब सावित्री अपनी उजड़ती माँगकी लाली

वापस ला सकती थी, तो त्रिवेणी क्यों न अपना पति जिला लेगी। आप उसमें वह विश्वास तो लायें, तलवारपर धार तो चढ़ा दें।'

'किन्तु वर कहाँ है? ऐसी अभागी लड़कीसे विवाह करना कौन युवक पसन्द करेगा? एक बात और है, मैं किसीको धोखेमें रखकर विवाह नहीं करना चाहता। फल यह होता है कि वरके पिता तैयार नहीं होते।'

कोई हर्ज नहीं। वर भी मैं ही ढूँढ़ूँगा और कन्या-दान भी दूँगा। मैं उसे कन्याके साथ अपनी आयुका शेष अंश भी दे डालूँगा।

'भगवान तुम्हारा भला करें।' रामवल्लभने कहा। वह खड़े हो गये थे।

जय विश्वनाथ! कहकर भंगड़ उठा। रामवल्लभ के करुणार्द्र हृदयपर एक गहरा प्रभाव डालकर वह जगतसिंहसे मिलने चला। मंदाकिनी होते हुए कबीरचौरा आया। देखा, माधोसामियाका बाग मानो नयी जवानी पाकर खिल उठा हो। दरवाजेपर पहरा, नौबत, झूमते हाथी, सिपाहियोंकी भीड़....मुसलमान उमरावोंका आना-जाना लगा था। भंगड़को नवाबके सम्बन्धमें सुनी हुई बातें याद आ गयीं। कुछ देर तक खड़ा-खड़ा उस क्षीण शक्तिकी अन्तिम ज्योति देखता रहा और फिर लम्बे पाँव रास्ता काटकर रामकटोरा की राह बढ़ गया।

जगतसिंह अपनी कोठीमें थे। सारनाथकी ईटों, मसालोंसे बनी हुई यह कोठी अपने निर्माताके वैभवका प्रदर्शन कर रही थी। चेतसिंहका अनुसरण करनेवाले उनके प्रतिस्पर्धी जगतसिंहने अपनी इस नयी बस्तीका नाम जगतगंज रख दिया था। आसपास अनेक घर ब्राह्मणों और दूसरी जातियोंके बसा दिये। वरुणा नदीके इस घाटपर कुछ व्यापार होताही था, जगतगंजकी बस्तीसे रोजगारियोंको कुछ लाभ हो गया। चेतगंजके पास जगतगंज बसाकर जगतसिंहकी व्याकुल आत्माको कितनी शान्ति मिली, इसे अन्तर्यामीके सिवा कौन जाने?

जगत सिंहकी कोठी तिमंजिली और सुन्दर थी। उसके एक ओर

रामकटोराका तालाब, पीछे कुण्ड, और दाहिनी ओर लम्बे नाले थे जिनके पास नन्देश्वर ग्राम था। कोठीमें हाथीखाना, अश्वशाला, गोशाला, मर्दाना कोठी, जनानी कोठी, मन्दिर आदि अनेक भाग उसके निर्माताके ऐश्वर्य की घोषणा कर रहे थे।

भंगड़ लम्बे बरामदेसे होकर एक विशाल कमरेमें घुसा। कमरेमें फर्शपर बेशकीमत कालीनें बिछी थीं। ऊपर छतसे शीशेके बड़े-बड़े झाड़-फानूस और हण्डे लटक रहे थे। दीवारोंपर कुछ पुरुषों और महात्माओंके तैल चित्र लगे थे। एक सुन्दर आसनपर बैठे जगत सिंह कुछ लिख रहे थे। भंगड़ने देखा उम्रने आशाकी ज्योति भी समाप्त कर शरीरपर अपनी छाप लगा दी थी। आँखोंके नीचे गहरी रेखा, चिन्तातुर उदास मुख, सजल घटा-सी उमड़ी निराशा, जगतसिंहको करुणा-धारासे अभिसिंचित कर रही थी। भाव-विभोर हो वह अपने दुर्दिनके उच्छ्वास छन्दबद्ध कर रहे थे।

भंगड़को देखा तो बड़े आदरसे पास बुलाया। 'अरे कोई है ?' आवाज दी। कुछ देर बाद एक वृद्ध सेवक हाजिर हुआ। 'कहाँ हैं गंगाधर, दीहासिंह वगैरह। भेजो उन्हें।' कहकर जगतसिंहने भंगड़से कहा—'मेरे बुलानेका उद्देश्य तो गंगाधरने आपको सुनाया ही होगा। फिरंगीकी हालत देख रहे हैं। दिन-दिन उनकी शक्ति बढ़ती जा रही है। बनारस तो उनके कब्जेमें आ ही गया था, अब लखनऊको भी उन्होंने पालतू कुत्ता बना दिया। वजीर अलीको गद्दीसे उतार यहाँ ला पटका है।'

भंगड़के मानस नेत्रोंके सम्मुख कबीरचौराका वह दृश्य एक बार फिर लहरा गया।

'अब हमलोगोंकी एक राय है। नवाब भी तैयार हैं। सब मिलकर तैयारी करें। अवसर पाते ही धावा बोल दें और अपनी भूमि उनसे छीन लें। आप हजारों जवानोंके उस्ताद हैं। आपके अखाड़ेसे मेरी योजना हजारों नवयुवकोंके दिलमें उत्साह पैदा कर उन्हें इस राहपर ला सकती है।'

'मैं आपका गुलाम ठहरा। जो भी आज्ञा देंगे भंगड़ उसे कर दिखायेगा। फिरंगी तो दुश्मन है ही, मुझे पकड़नेके लिए पाँच सौ रुपयोंका इनाम रखा गया है, पर किसकी मजाल है जो सामने आये।'

दोनोंमें अभी बातें हो ही रही थीं कि गंगाधर और दीहासिंह भी आ गये। चारोंने मिलकर एकान्तमें परामर्श किया। घण्टों तक विचार होता रहा, और जब भंगड़ वहाँसे चला तो दिन डेढ़ पहर बीत चुका था। कोठीके बाहर गंगाधर उसे पहुँचाने आया। पोखरोंके बीच पतली पगडण्डी से चल भंगड़ जब ऐतरनी-बैतरनीके नालेकी ओर मुड़ा तो उधर दूर तक पूर्ण सन्नाटा था। दोनोंके हृदयकी धड़कनें भी स्पष्ट सुनायी पड़ रही थीं।

आसपास खेतोंमें कुछ गायें चर रही थीं जो रह-रहकर अपने दूरस्थ बच्चोंको और आगे न जाने देनेके लिए अथवा किसी अन्य अज्ञात भावना-वश डों-डों चिल्लाकर बुला लेतीं। उनकी ओर दृष्टि डालकर भंगड़ने गंगाधरसे कहा—'आज मैंने दो जीवोंको देखा जो सम्भवतः संसारमें सबसे अभागे प्राणी हैं।'

'कौन-कौन हैं वे?' कुतूहल भरे स्वरमें गंगाधरने पूछा।

'एक तो यह जगतसिंह और दूसरी रामवल्लभ शास्त्रीकी बेटी त्रिवेणी।' 'कहकर भंगड़ इस प्रकार मौन हो गया कि गंगाधर सहसा समझ न सका कि उसे हो क्या गया। रामवल्लभ शास्त्रीकी बेटी! दोनों नामोंमें इस नामने उसे अधिक आकृष्ट किया क्योंकि जगत सिंहके साथ-साथ रहनेसे वह उनका दुर्भाग्य जान चुका था। फिर जगत सिंह स्वयं भी तो अनेक बार खुद अपनेको ही अभागा कह चुके थे। किन्तु यह रामवल्लभ शास्त्रीकी बेटी अभागी कैसे हो गयी? उनका मन त्रिवेणी-के दुर्भाग्यका रहस्य जाननेके लिए तड़प उठा।

'तुम पूछोगे क्यों? मैं बताता हूँ। तुम्हारे चले आनेके बाद आज सुबह मैं शास्त्रीजीके घर गया था। क्यों, जानते हो? तुम्हारे सामने वह जो दोनो लड़कियाँ गंगा-स्नानको आयी थीं, भोरमें, उनमें बड़ी त्रिवेणी है, शास्त्रीजीकी कन्या।

सरल भंगड़ क्या जाने कि यह गंगाधर उस त्रिवेणीका पूर्ण परिचय ही नहीं जानता, बल्कि परिचयकी सीमाके बहुत आगे जाकर वह अपना हृदय भी उसे दे चुका था।

'उस लड़कीका विवाह नहीं हो पा रहा है। कोई तैयार नहीं होता। पंडितजी कह रहे थे, विवाहके वर्ष भरके भीतर ही वह विधवा हो जायगी। ऐसे लक्षण हैं उसके, भाग्यकी रेखा की। तो फिर भला ऐसी अभागी लड़कीके साथ कौन अपने बेटेका व्याह करेगा, तुम्ही सोचो।' भंगड़ चुपचाप कहता बढ़ता चला जा रहा था।

उसके एक-एक शब्द गंगाधरके हृदयपर हथौड़ेकी चोट कर रहे थे। मर्माहत हो वह काँप उठा। शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। सारी कामनाएँ क्षणभरमें डगमगा गयीं। निरभ्र आकाशसे अप्रत्याशित वज्रपात! गंगाधरका शरीर घूमने लगा—'जरा रुक जाओगे इस वृक्षके नीचे। मैं कुछ सुस्ता लेता।'

'नयी जवानी मंझा ढील'''। कोस भर चलनेमें ही यह हालत। तुम क्या लोहा लोगे फिरंगीसे। चलो, वहीं अपने स्थानपर आराम किया जायगा। चलते ही बताता हूँ''''।' कहकर वह आगे बढ़ गया। किन्तु गंगाधर कुछ बोल न सका। मंत्रमुग्ध पशुकी भाँति वह चुपचाप उसका अनुसरण करने लगा।



१२

दरदकी मारी बन-बन डोलूँ...

नारी जीवन की सर्वोत्तम निधि, पतिका सौभाग्य खोकर विपन्ना मंगलागौरी अपने ही मायकेमें कलमुँही बन बैठी। उसका लोक-विख्यात सौन्दर्य ही अब उसके दुर्भाग्य का प्रधान कारण बताया जाने लगा। स्त्रियोंमें उसे लेकर नित्य कुछ न कुछ चर्चा चलती। व्यंग्य, तिरस्कार, अपमान और वेदनासे जर्जर मंगलाने मुहल्लेमें मिलना जुलना भी छोड़ दिया। उसकी भक्ति-प्रियता और भजन-कीर्तनसे चिढ़कर भावजों तथा उनकी सहेलियों और मिलनेवाली गाँवकी स्त्रियोंने मंगलाका नाम मीरा रख दिया था। मंगला प्रायः मीरा के पद गाया करती। एकान्त ही अब उसके लिए प्रिय हो गया जहाँ वह शान्तिसे बैठकर चुपचाप आँसू बहाया करती, कभी अपने दुर्भाग्य पर विचार करते-करते उस हृदयहीन युवकके ध्यानमें तन्मय हो जाती जिसने केवल एक दिन धूमकेतु-सा सम्मुख उपस्थित होकर उसके जीवनको नरकतुल्य बना दिया था। हाय! तुम कहाँ हो? नाथ, आकर एक बार तो अपनी मंगलागौरीकी दुर्दशा देख लो। एक बार तो इस पतित जीवन को धन्य कर जाओ।

उस दिन तुम बोले क्यों नहीं ? तुम्हारी सारी वाचालता, समस्त कवित्व शक्ति, सम्पूर्ण प्रतिभा कहाँ चली गयी, कहाँ खो गयी थी। तुम चुप क्यों रह गये थे ? उन गँवार देहाती स्त्रियोंकी बातोंका उत्तर क्यों नहीं दे दिया ? क्या तुम उनके उत्तर नहीं दे सकते ? ऐसा कौन-सा कठिन प्रश्न पूछा था उन्होंने ? ससुरालमें सालियाँ और दूसरी स्त्रियाँ और भी अधिक दुरूह प्रश्न करती हैं, समस्याएँ देती हैं, कविताएँ कहलाती हैं। फिर तुम तो कवि थे। वाणी ही तुम्हारी निधि थी, तुम्हारी शक्ति। क्या इस दासीके घर आनेके समय उसे कहीं और छोड़ आये थे ?'

मंगलागौरी विचारोंके जालमें उलझ जाती तो बैठे-बैठे दिन बिता देती। सूर्य डूब जाता। आकाशसे उतरकर अंधकार पृथ्वीपर छा जाता। फिर भी मंगला चुपचाप सिर लटकाये अपने घरकी छत पर अकेली बैठी बिसूरती रहती। स्मृतिकी लड़ियोंकी कड़ी टूटती रहती। उनमें एक-एक मोती पिरोना और उन्हें भी इस बारीकी और कोमलतासे कि उनमें कहीं ठेस न लगे, इस सावधानीमें उसे विशेष प्रयत्न न करना पड़ता। समय पता नहीं कैसे भागता जाता था। जब रातका सन्नाटा चारो ओर छा जाता और घर भरके प्राणी खा लेते तो घरकी दासी आकर उसे झकझोर देती—'अरे उठो। क्या कर रही हो यहाँ अँधेरेमें अकेली ? चलो खाकर सो जाओ।'

मंगला चुपचाप उठ जाती। भावजें जो कुछ परोस देतीं, उसे खा लेती। फिर जाकर अपने कमरेमें दीपक जलाती। आह ! रातका समय है। स्वामी न जाने कहाँ होंगे ! कैसे होंगे ! उन्हें प्रकाश तो चाहिये ही। तब वह चमक कर उठती। दीवालपर बने दीवटपर रखे दीपकको जला देती। सावधानीसे पलंग बिछाती। गद्देदार बिछौना लगाकर उसपर उज्वल चादर लगाती, दो तकिये रखती। सिरहाने धूप-बत्ती जलाती और पलंगके पायताने कुशासन बिछाकर उसपर बैठ जाती। बड़ी इच्छा होती, जोरसे गाये, किन्तु घरवालों-के भय और लोक-मर्यादाके विचारसे छातीपर पत्थर रखकर चुप-

चाप रह जाती। मनका ऊफान तब दूसरी दिशा में उठता। कल्पना के क्षेत्रमें मन दौड़ने लगता। कभी तो लौटेंगे उसके भी कुञ्जबिहारी। आकर उसका हाथ पकड़ लेंगे और कहेंगे—मंगला मुझे क्षमा करो। मुझसे अपराध हो गया है। उस दिन इस शैय्या का सौभाग्य पलटेगा। वही रात मंगलाकी सुहागरात होगी। परन्तु वह कब आयेंगे? कौन जाने। इसी तरह उस प्रेमाकुला हतभाग्य राधाने भी अपने प्रियतम श्रीकृष्णके चरणोंकी सेवामें रत होकर उनकी प्रतीक्षामें सैकड़ों रातें बिता दीं।

सचमुच सैकड़ों-हजारों रातें बीत गयीं। मंगलाका पति न लौटा। यौवनका स्रोत असमय सूखा जा रहा था। मंगलागौरी गाँवमें सबसे दयनीय, दुखी प्राणी बन गयी।

ऐसे ही समय, जब मंगलागौरी अपने हताश जीवन के दिन मौन अर्चना में और रातें आँसुओंसे भिगो कर बिता रही थी, अचानक एक दिन मामा यदुनाथ सिंह उसके घर आये। बहुत दिनोंपर आये थे। इस दीर्घकालमें कितना विराट परिवर्तन हो चुका था। घरके पुराने स्वामी-स्वामिनी बदल चुके थे। मंगलाकी माता और पिता काल-कवलित हो चुके थे। भाई-भावजों का राज्य था। अभागी मंगला भी उनके आश्रयमें अपने दिन किसी न किसी प्रकार काट रही थी।

मामाने उसे देखकर कहा—'मंगला बेटी, यदि इच्छा हो तो चल। अगले महीने मैं काशी जा रहा हूँ।'

'काशी?'—मंगलागौरी चमक उठी—'काशी जा रहे हो मामा?'

'हाँ बेटी, वहाँ मेरे एक परिचित हैं। उनके द्वारा वहीं एक नौकरी मिल गयी है राजाकी फौजमें। आरामसे दिन बीत जायँगे बाबा विश्वनाथके दरबारमें। नित्य गंगाजीके दर्शन होंगे। चल, तेरी मामी भी चल रही है। इसी बहाने काशीवासका अवसर मिल जायगा।'

काशीवास ! यौवनमें ही काशीवास ! सौभाग्यके दिनोंमें ही साधना ! कितना क्रूर उपहास था । फिर भी मंगला गौरीने स्वीकृति दे दी । उसने स्वीकृति अपनी ओरसे तो दे दी, किन्तु भाई-भावजोंसे पूछना भी जरूरी था । भावजोंको क्या आपत्ति हो सकती थी । काशीवासका नाम सुनकर उन्होंने हर्ष, पुण्यकी मर्यादा, मंगलाके सौभाग्य, दूर जानेका खतरा आदि सुख-दुख दोनोंकी लपेटमें अपनी स्वीकृति चतुरतापूर्वक प्रकटकर दी । भाइयोंने सुना तो उन्हें कुछ पीड़ा हुई दुलारी बहिनकी यह दशा देखकर । अब आँखोंके भी सामनेसे उसके दूर हों जानेकी बात स्मरणकर वे सचमुच दुखी हो गये ।

बड़े भाईके सामने जाकर मंगला एक ओर खड़ी हो गयी, मानो कोई अपराधी हो । कुछ देर तक चुप रहकर और कहनेके लिए साहस बटोरकर उमड़ते आँसुओंसे भींगी पलकोंको नीचीकर बोली—'भइया, बहुत दिनों तक तुमने दुलार किया । यदि कहते तो मामाके साथ काशी चली जाती ।'

'काशी चली जाती ! क्यों ?' भाई चकराया । वह कुछ पूछे, इसके पूर्व ही भावजने कहा—'सुना न, मंगला काशी जाना चाहती है । उसे काशीवास करना भी चाहिये । बड़े भाग्यसे यह संजोग मिलता है । गंगाजीका दर्शन, विश्वनाथका पूजन, कोई तकलीफ तो नहीं है । सब शुभ ही शुभ है मगर······ ।'

'चुप भी रहो'—भाईने डाँटा । उसका स्नेह शील हृदय आज अचानक आघात पाकर मर्माहत हो चुका था । उसे मौन देखकर मंगलाका साहस बढ़ा—'मामाकी नौकरी वहाँ लग गयी है, राजाकी फौजमें । यदि कहो तो मैं भी चली जाऊँ ।'

कैसे कहे ? यही तो कठिन है । लड़की पिताको अधिक प्यारी होती है । प्रायः सभी पुत्र इसका अनुभव करते हैं । फिर दुलारी बहिनका निर्वाह करना पिताकी मृत्युके अनन्तर भाइयोंका प्रधान कर्त्तव्य हो जाता है । जिसके कारण बचपनमें अनेक बार पिता द्वारा उन्हें प्रताड़ना

सहनी पड़ी थी, वे अपमानित होते थे। अपने अधिकारोंसे वंचित किये जाते थे, बहिनके सामने लज्जित होते थे, वही न जाने कैसे धीरे-धीरे उनके हृदयके कोनेमें आकर चुपचाप समस्त स्नेहकी अधिकारिणी बन बैठी थी, इसका पता न था। फिर पुत्रका कर्त्तव्य भी तो है। पिताकी प्रिय वस्तुओंको प्यारसे रखना, शत्रुओंसे बदला लेना। घरका मालिक बड़ा लड़का पिताकी प्रतिमूर्ति होता है। क्या वह मंगलाको काशी चले जाने दे?

कई दिनों तक वितर्क चलता रहा। अन्तमें स्वीकृति मिल गयी। अगले मास मंगलागौरी अपने मामा यदुनाथ सिंहके साथ काशी चली आयी। भवानी सिंहको राजा उदित नारायणके यहाँ नौकरी मिल गयी। वह सिपाहियोंका जमादार बना दिया गया। गंगाके पूर्वी तटपर बालुका प्रदेशके पीछे, वृक्षोंकी पंक्तिसे घिरे कटेसर गाँवमें उसे रहनेके लिए स्थान मिला। कलकत्तासे पेशावरतक जानेवाली सड़क पर, राजघाटके सामनेसे मुगलसराय तक चौकसी करना उसका काम था।

कटेसर गाँव न बड़ा था और न उसे छोटा ही कहा जा सकता था। सामने त्रिलोचन घाट, गायघाट, पंचगंगा और मणिकर्णिका घाट पड़ते। नित्य ही सबेरे शाम शहर के मनचले युवकों, रईसों और 'बहरी अलंग' का मजा लूटनेवाले बाँके जवानोंका दल नावोंसे गंगा-पार कर गाँवमें आता। कुछ आसपासके बगीचोंके कुएँपर भाँग छानते, निपटते, दूध पीते, गाँवके अहीरोंसे दूध खरीदकर ले जाते और फिर नावसे लौटकर गंगाकी बीच धारामें कूदकर स्नान करते घर लौट जाते। गाँववाले भी दूध, घास, उपले आदि सौदा-सुल्फ लेकर नावसे गंगापार कर शहर जाते। भोर होनेके पूर्वसे ही यह व्यापार आरंभ होकर रात दस-ग्यारह बजे तक चलता। इससे गाँवमें आना-जाना बना रहता।

मंगलाको काशी नगरीमें न रहनेका दुःख तो अवश्य हुआ

क्योंकि बाबा विश्वनाथका दर्शन वह नित्य कर पानेसे वंचित हो गयी। परन्तु करे क्या ? परवश थी। मामाने उसे अकेले उस पार शहर जाकर दर्शन-पूजन करनेकी अनुमति तो न दी, किन्तु नित्य गंगा-स्नान के लिए और पर्व आदि विशेष अवसरोंपर उस पार भी जाकर दर्शन आदि करनेके लिए उन्होंने छूट दे दी। मंगला इतने से ही सन्तुष्ट थी! नवीन वातावरणमें उसके अशान्त मनको कुछ शान्ति-सी मिली। मन नयी जगहके आकर्षणमें उलझ गया।

जैसलमेर और काशीमें बहुत अन्तर था। कहाँ वह रेगिस्तानी और पहाड़ी स्थान और कहाँ यह मैदानी प्रदेश जिसे गंगा अपनी अमृत तुल्य जल-धारासे सींचती। मंगलाने घरके किनारे एक दुमंजिले घरमें अपना वास बनाया। घर दो मंजिलका कच्चा-पक्का दोनों था। ऊपर खपरैलकी पाटन थी। बाहर खुला बारजा भी था। कमरेमें उसने पलंग बिछाया, शुभ्र श्वेत गद्दे बिछाकर चदरा और तकिये लगा दिये, मानो किसी पाहुनकी खातिरीके लिए पलंग लगा दी हो। परन्तु उस पर सोती न थी। बिस्तर लगा रहता और वह कमरेकी फर्शपर एक कुशासन या जाड़ेके दिनोंमें कम्बल बिछाकर लेट रहती।

पूजा पाठका विधान बढ़ गया। उसका अधिकांश समय अपने देवताकी पूजा करने और शेष समय गाँवकी छोटी लड़कियोंको पढ़ानेमें बीतने लगा। धीरे-धीरे सयानी लड़कियाँ भी जुटने लगीं। फिर तो ब्याही, कुँवारी, सधवा और विधवा, सभी उसकी सहेलियाँ बन बैठीं। गाँवकी युवतियोंमें मंगलागौरी सबकी जिह्वा और सबके दिलोंमें जा बैठी। उसके भजन कटेसरकी गलियों, अमराइयों और आकाशमें गूँजने लगे। काशी आकर मंगलाने अपने विगत जीवनको, अपनी वेदनाको भुलानेकी बड़ी चेष्टा की, वह सब कुछ तो भूल गयी, किन्तु उस मूर्तिको न भूल सकी जिसे उसका दरिद्र हृदय अक्षय निधि-सा समेटकर अपने अन्तरालमें छिपाये था और किसीके भी सम्मुख प्रकट

करनेमें हिचकता। वास्तवमें अब वह जितना ही सतर्क रहती, उतनी ही उसकी सुधि तीव्र हो चली। जैसलमेरमें तो भावजों और अन्य पड़ोसियों द्वारा उसके पतिकी चर्चा एकाध बार हो ही जाती थी जिससे वह स्वयं भी थककर ऊब चुकी थी और सुनना नहीं चाहती थी। किन्तु यहाँ वह चर्चा उठानेवाला कोई न था। कोई भी उस क्रूर पती और उसके दुर्भाग्यकी कहानी न जानता था; अतः मंगला स्वयं इस प्रिय दीपको स्मृतिकी बाती जलाकर स्नेह से जलाती रहती।

१३

बात शायद बैठ जाय

विवाहके वर्ष भर बाद ही विधवा हो जायगी, अर्थात् उसके पतिकी मृत्यु हो जायगी! तब भला ऐसा कौन मूढ़ होगा जो इस अभागी कुल-क्षणीसे विवाह करनेके लिए तैयार हो? वरके पिता यह रहस्य सुनते ही भयभीत हो चुपचाप सिर झुका लेते और जहाँ भी एक बार ब्याहकी बातें चल जातीं वहाँ फिर दोबारा जानेका अवसर न आता।

गंगाधरका मन आश्विनके आकाशकी भाँति चंचल हो उठा था। एक निगूढ़ वेदनासे व्याकुल हो उसका मानस मेघ-मण्डलकी भाँति मूक स्वरमें तड़प उठता। वह क्या करे? आँखोंमें त्रिवेणीके मोहक रूपकी मधुर छाया अब भी उसी तरह नाच रही है; मनके दर्पणमें उसकी मर्मभेदी चितवन रह रहकर कौंध उठती। कान उसकी ही वाणी सुन रहे थे। परन्तु मस्तिष्क अपना कार्य कर रहा था। परम्परा और संस्कारके पहरेदार अपनी कठोर चेतनासे उसे दहला देते। वह किस मुँहसे यह प्रस्ताव पिताजीसे करे? सुनकर भला वह क्या कहेंगे! क्या कोई हिन्दू युवक अपने विवाहकी चर्चा अपने पितासे स्वयं चलाता है? हमारे यहाँ यह रिवाज तो नहीं है। कितना निर्लज्ज और विमूढ़

समझेंगे वे मुझे। एक तो ब्राह्मणका पुत्र होकर भी शास्त्रकी जगह शस्त्र ग्रहण करनेसे यों ही रुष्ट हैं, फिर स्वयं अपने विवाहकी बातें चलाकर तो जीवन भरके लिए मुँह न देखनेकी भीषण प्रतिज्ञा सुननी पड़ेगी। फिर जब उन्हें त्रिबेणीके दुर्भाग्यकी बात मालूम होगी, तब वह क्या क्षण भरके लिए भी अपनी सम्मति दे सकते हैं ? कदापि नहीं। तब क्या हो ? क्या करूँ ?

वह बड़ी देर तक इसी उधेड़ बुनमें नाना जालोंमें उलझता, निकलता और फिर फँसता रहा।

एक उपाय है—सहसा उसने सोचा—यदि बाबू साहबसे कहलाऊँ तो ? शिवनाथ सिंह कुँवर साहबसे कह सकते हैं। कुँवर साहब पिताजीसे कह दें। क्या वह इतना भी नहीं कर सकते ? और क्या उनकी बात पिताजी कभी टाल सकेंगे। मैं तो नहीं समझता। एक बात और। त्रिबेणीके पिता भी अपनी कन्याके अभाग्यकी बात पिताजीको न बतायें। ठीक हैं। इसके लिए झंगड़को ही सधाना होगा। परन्तु उसका मन अचानक फिर रुक गया—यह मैं क्या सोच रहा हूँ ? पिताजीसे भी क्या त्रिवेणीका भविष्य छिपा रह सकता है ? जो सारे संसारका भविष्य बताता है, वह त्रिवेणीका भविष्य नहीं जान सकता है। पिताजीकी योग्यता और पाण्डित्यमें अविश्वास करना पाप है। फिर वह तो समर्थ है हीं। वह सब कुछ जान लेनेपर इस विवाहकी स्वीकृति कदापि नहीं दे सकते। एक बात और फिर मेरा ही मन उस हतभाग्य कुलक्षणाके प्रति क्यों इतना व्याकुल और विवश हो रहा है ? उसके साथ विवाह करते ही वर्षके भीतर ही मेरी मृत्यु हो जायगी। तब क्या जान-बूझकर इस आगमें गिरूँ ? अपनी मृत्युका उपाय आप करूँ ? लेकिन मैं कर ही क्या सकता हूँ। मैं तो केवल एक निमित्तमात्र हूँ, साधन भर। करनेवाला तो कोई और है। वही सबका नियामक है, वही कर्त्ता है, वही संहारक है। यदि वह यही चाहता है तो क्या मैं बच सकूँगा ? नहीं। प्रभु ! यदि तुम्हारी यही कामना है तो यही हो। यदि वास्तवमें मेरी मृत्युके दिन निकट आ रहे

हैं तो मुझे मरना होगा, मरूँगा। मरनेसे भय क्या? कमसे कम त्रिवेणी-की माँग तो जगमगा उठेगी।

माँग जगमगा उठेगी! कितने दिनों तक? यह बरसातका पानी क्या रुक सकेगा? हाय! क्या यह सौभाग्य वह समेटकर बचा पायेगी? फिर वही अन्धकार; विधवाका दुखद जीवन। मैं मरकर भी उसे सुखी नहीं कर सकता! तब क्या उसे भूल ही जाऊँ?

यही उचित है। उसे भूल जानेमें ही दोनोंका कल्याण है। अब वह भविष्यमें फिर कभी त्रिवेणीसे मिलनेका प्रयास नहीं करेगा। चित्से उसका ध्यान हटा देना चाहिये। मनको बलपूर्वक अब दूसरे विषयों में लगाना होगा।

अपने संकल्पके अनुसार गंगाधरने लाख उपाय किये कि वह त्रिवेणीको भुला दे, परन्तु वह उसे जितना ही भूलनेका प्रयत्न करता, उसकी मनोहर मूर्ति उसके सामने आ खड़ी होती। आँखें उसे ही देखतीं, कान उसकी ही वाणी सुनते, मन उसमें ही रमा रहता, हृदय उसके उपस्थित न रहने पर भी उसकी उपस्थितिका अनुभव करता, स्वप्न उसे ही लेकर आते; वह एकान्तमें आती, बातें करती और फिर न जाने कब, कहाँ अप्सराओं सी विलीन हो जाती शून्य में। गंगाधर अपलक आँखें फाड़कर रास्ते पर उसे देखता रह जाता। उसे मूर्तिवत् स्तब्ध देखकर लोग कहते—गंगाधरका दिमाग कुछ सनक रहा है। यथार्थका एक धक्का कल्पनाके मनोरम किलेको ध्वस्त कर देता और फिर वही निबिड़ निराशा हाहाकार कर उठती।

कई दिन इसी तर्क-वितर्क में बीत गये। वह कुछ भी निर्णय न कर पाया। आज भी उसी चिन्तामें खोया-खोया-सा कपड़े बदल रहा था कि कमरेके बाहर आँगनमें किसीकी आवाज सुनायी पड़ी। गंगाधर-ने झाँककर देखा। उसे कोई अन्य न दिखायी पड़ा। केवल उसके पिता ताराशङ्कर पत्थरकी चौकी पर बैठे पार्थिव पूजनसे निवृत्त हो बैठे थे।

गंगाधरके पिता ताराशङ्कर ज्योतिषी थे। अँगरेज अफसरोंके यहाँ भी जाते-आते थे। आमदनी अच्छी थी। प्रतिष्ठा भी ऊँची। मकान था तो कच्चा पक्का दोनों, परन्तु बड़ा था। भीतर आँगनसे लगा मरदानख़ाना था। इस मरदानखानेको एक दीवारघरके शेष भागसे पृथक कर देती। इस हिस्सेमें कूँआ, नीबू-अमरूद और केलेके कुछ पेड़, फूल-पौधे और कुछ तरकारियाँ लगी थीं। देखनेमें पण्डितका बैठका रईसोंके घर-सा लगता। बैठकखानेका कमरा मिट्टी और चूनेसे पुता था।

ताराशङ्कर इसी आँगनमें पत्थरकी एक चौकी पर कुशासन बिछा कर पालथी मारे बैठे थे। आस-पास कोई और न था, परन्तु गंगाधरने स्पष्ट सुना, कोई कह रहा था—'कई दिनों से आने की सोच रहा था, पर मौका मिलता न था। आज···।'

'कोई हर्ज नहीं, घर आपका है। हर समय खुला है। बैठे बैठाये आपके दर्शन मिले। यह उत्तर उसके पिताका था। अब उसने बाहर निकलकर सावधानीसे देखा—अरे ये तो भंगड़ और शिवनाथ हैं। उसने उन दोनोंको पहचान लिया, परन्तु वे उसे देख भी न पाये। उसने अपनेको छिपा लिया और बैठकके आगेकी ओसारीमें छिपकर उन लोगोंकी बातें सुनने लगा।

'पण्डित रामबल्लभ शास्त्रीको तो आप जानते ही होंगे'—भंगड़ बोला।

'वाह, यह भी क्या कहा आपने! वह मेरे मित्र ठहरे।' ताराशंकर ने उत्तर दिया।

'ठीक; उन्हींकी कन्या, त्रिबेणीके लिए...संभवतः आपने उसें देखा भी होगा उसीके ब्याहके लिए...।'

'हाँ-हाँ, उसका ब्याह तो कर ही देना चाहिए। देखा है, देखा है। लड़की सयानी हो चुकी है।

'इसीलिये तो और चिन्ता है। शास्त्रीजीने गंगाधरको अपना जामाता बनाना और उसे कन्यादान करनेका मन्तव्य प्रकट किया है।

वह स्वयं आते, परन्तु आपसे संकोचके कारण न तो कुछ कह सके और न मिलते ही हैं। आप कहें तो उन्हें यहां लाया जाय, लेकिन एक शर्त है।'

'शर्त सब ठीक है। घर उनका है। वह हमारे सिर-माथे।'—सहसा रुककर कुछ सोचते हुए बोले—शर्त क्या है?'

'आनेपर वह निराश न लौटें।'—भंगड़ बोला और एक मार्मिक दृष्टि ताराशङ्करपर डालकर चुप हो गया।

'यह तो भाई बड़ा धर्म-संकट है। देखूँगा, लाओ उन्हें।' मन ही मन ताराशङ्कर गर्वित हो उठे—रामवल्लभशास्त्री अपनी कन्या उनके पुत्रको देंगे। इतना प्रख्यात व्यक्ति मेरे घर आये, वर देखने। क्या हर्ज है। यह विवाह कर लेना चाहिये।'

उधर गंगाधर सोच रहा था—ठीक ही तो। वह आये और पिताजी उन्हें वापस कर दें तो क्या यह उनके जैसे पण्डितके लिए अपमानजनक नहीं। इसीसे पहले पूछवा लिया है। लगता है भंगड़ उधरसे कोशिश कर रहा है।

अब वह भीतर न रुका रह सका। कमरेसे बाहर निकला। इस प्रकार देखने लगा मानो उसे इन दोनों आदमियोंके आनेकी कोई खबर ही न हो और वे अचानक उसके सामने पड़ गये हों। मुँह बनाकर पूछा—'क्या बात है? कुँवर साहबने बुलाया है क्या?'

'हाँ, बुलाया है। अभी चलो।' शिवनाथ सिंहने कनखियोंसे देखते हुए कहा। गंगाधर ताड़ गया। उसने शीघ्रतासे कपड़े बदले। हथियार लिये और उन दोनोंके साथ चलनेके लिए तैयार हो गया। उसका मन बाहर चलकर भंगड़से सारा रहस्य पूछनेको आतुर हो रहा था। क्षणभर बाद भंगड़ने ताराशङ्करसे आज्ञा माँगकर बिदा ली और वे तीनों बाहर चले आये। गंगाधरका दिल बाँसों उछल रहा था।

१४

उद्योगका आरंभ

सबेरे बड़े जोरोंकी वर्षा हुई थी। दिनभर बदली छायी रही। अब भी आकाशमें दौड़ते हुए मेघोंसे जलकी फुहारें गिर रही थीं। संध्या होनेमें अभी देर थी। सूर्य यद्यपि दिखायी न देते, परन्तु उनके प्रकाशसे बादलोंमें आवृत रहनेपर भी वातावरणमें एक चमक थी। लगभग चार-पाँच बजेका समय था। जगतसिंह अपनी हवेलीसे निकले। उनके साथ उनका सहायक ब्राह्मण गङ्गाधर और तलवारिया शिवनाथसिंह थे। तीनों हवेलीसे नीचे आये। अस्तबलसे तीन घोड़े आकर पहलेसे ही तैयार थे। वे घोड़ों पर बैठे और शहरकी ओर चल पड़े।

शहरमें वर्षा ऋतुके कारण सावनी समा जगह-जगह से दिखायी पड़ती। मुहल्ले-मुहल्ले नीम-इमलीकी डालोंमें झूले पड़े थे जिनपर ससुरालसे बुलायी गयी—लड़कियाँ झूलतीं। रात हो जानेपर जब दिखायी देनेका प्रश्न न रहता, घरकी बहुएँ भी—बाहर निकल आकर झूलतीं। पेंग मारतीं और कजलीके मनोहर लयसे

मुहल्लेका वातायन गुञ्जित कर देतीं। इधर कई दिनोंसे कजलीका जोर बढ़ रहा था।

रास्तोंके अगल-बगल दूहों और खण्डहरोंपर भी घास उग आयी थी। चारोंओर पृथ्वी हरी हो गयी थी। वर्षाके कारण वृक्षोंकी पत्तियाँ नहाकर धुल गयी थीं और अनोखी चमकसे नाच उठती थीं। हवाके झोकोंमें लहराती टहनियाँ बड़ी भली लगतीं। रामकटोराके रास्ते होकर तीनों सवार नाटी इमली आये और वहाँसे कबीरचौराकी ओर घूम गये। अब यह स्पष्ट हो गया कि वे कबीरचौरा मुहल्लेमें माधवस्वामीके बागमें नवाबकी कोठीपर जा रहे थे।

जगतसिंह जब नवाबकी कोठीपर पहुँचे तो अँधेरा कुछ घना हो गया। यद्यपि सूर्यास्त अब भी न हुआ था, फिर भी आकाशमें सघन काले मेघोंके छा जानेसे प्रकाशकी हलकी रेखाएँ जो बादलों का व्यूह छानकर किसी प्रकार आ पाती थीं, अब रुक गयीं। पक्षियोंने भी उस दिन कुछ जल्दी ही अपने घोंसलोंकी ओर प्रस्थान कर दिया। पेड़ोंपर चिड़ियोंका दल अपनी भाषामें शोर करने लगा।

घुड़सवारोंका दल देखते ही फाटकपर खड़े पहरेदारने अदबसे सलाम किया। जगतसिंहके संकेत करनेपर शिवनाथसिंहने कहा—'भीतर खबर करा दो कि कुँवर जगतसिंह हुजूर नवाब साहबसे भेंट करना चाहते हैं।'

पहरेदारने दूसरे तिलंगेसे कहा। उसने तीसरेसे कहा और तीसरेने चौथे से। इस प्रकार लगभग पन्द्रह-बीस मिनट लग गये। नवाबको सूचना मिली तो उसने आज्ञा दे दी। तब तक बाहर फाटकपर नजर-भेंटके लिए उपहार लानेवाले सेवक भी थाल सजाये हाजिर हो गये। पहरेदार उन्हें कोठीके दूसरे हिस्सेकी ओर ले गया, जहाँसे तिलंगे उन्हें आगे लिवा गये। उनके चले जानेके बाद जगतसिंह अपने साथियों सहित कोठीमें ऊपर गये।

कोठीके लम्बे-चौड़े दालानमें फानूस जल रहे थे। अन्धकार होता देख नौकरोंने सर्वत्र रोशनी कर दी थी। गुलाबके सद्यः खिले पुष्प-सा

सुकुमार वजीरअली आरामकुर्सीपर गद्देके सहारे अधलेटा पड़ा था। दीवारोंपर दोहरी तलवारें ढालोंपर सजाकर टँगी थीं। जगतसिंहने एकबार उड़ती-उड़ती किन्तु पैनी नजरसे देखा—नवाबकी कोठी वैभव और प्रदर्शनके लिहाज़से किसी प्रकार कम प्रभावशाली न थी। सोने-चाँदीके गंगा जमुनी कामोंकी छटा चारोंओर बिखर रही थी।

वजीरअली उठा और उसने मुस्कुराते हुए जगतसिंहका स्वागत किया। जगतसिंहने उसे झुककर सलाम किया। जगतसिंह पास ही रखी गद्दीदार कुर्सीपर बैठे। उनके सहायक कुछ दूर हटकर एक चौकी पर बैठे। कुछ देरतक औपचारिक तथा इधर-उधरकी बातें होती रहीं। इसके बाद वजीरअलीने विषयकी स्थापना करते हुए कहा—जो मेरी हालत है, वही आपकी, और वही हालत करीब-करीब देशके सभी सरदारों और बाबुओंकी है। यह हालत तबतक बनी रहेगी जबतक मुल्कमें अँगरेजी राज है।'

'बहुत ठीक कहते हैं सरकार! हम तो मुल्कसे अँगरेजी राज्यको निकाल फेकनेके लिए बहुत पहलेसे प्रयत्नशील हैं। इसी उद्देश्यके कारण मेरे भाई राजाचेतसिंहको कम्पनीसे लड़ना पड़ा, परन्तु आपसकी फूटके कारण उन्हें असफलता मिली जिसके परिणामस्वरूप यह राज्य, अपनी मातृभूमि और ऐश्वर्य छोड़कर उन्हें बाहर, दूर....सिन्धियाकी शरणमें जाना पड़ा, पता नहीं वह इस समय किस हालतमें हैं।'

'मेरा इरादा पक्का है। मुझे आपकी मदद चाहिये। आपकी मदद-से मेरी ताकत बहुत बढ़ जायगी। मैं चाहता हूँ कि आप बनारसके तमाम बाबुओंको अपने यहाँ बुलाकर उन्हें समझाइये और इस इरादेमें हाथ बटानेके लिए कहिये....।'

'सब तैयार है हुजूर! हमने बहुत पहले ही यह योजना बनायी थी, किन्तु अपनी शक्ति सीमित होनेसे हम अपना कार्य आरंभ करनेमें डरते थे। अब हुजूर भी तैयार हैं। अब तो हमारी छाती दूनी हो गयी। हम अपने मुल्कसे तो अंगरेजोंको निकालकर ही रहेंगे।

'यह काम आप जितना आसान समझते हैं, उतना नहीं है। इस इरादेको पूरा करनेके लिए काफी बड़ी ताकत होनी चाहिये, सेना और हथियार होने चाहिये, तोपखाना होना चाहिये; और हमारे पास है क्या ? कुछ नहीं।........मगर आप घबड़ायें नहीं। उसका भी मैंने इन्तजाम कर लिया है। ढाकाके नवाबसे मेरी बातें हो चुकी हैं। उनके दरबारमें मैंने अपना आदमी भेजा है। इज्जत अली ढाका गया है। अगले महीने तक वह लौट आयेगा। खुदाकी रहमत हुई तो तोपखाने के साथ काफी गोला-बारूद हमें मिल जायगा। इधरसे हम हमला करेंगे, उधर ढाकासे जमनशाह....।'

'छपरामें मेरे कई रिश्तेदार हैं। उन्होंने पहले भी कईबार कहा था। वे सब हुजूरके इशारेपर पचास हजार जवान दमभरमें तैयार कर सकते हैं।'

'तो आप उन्हें तैयार कीजिये।'

लगभग घण्टे भर योजनाएँ बनतीं रहीं। दोनोंने अपनी अपनी योजनाएँ प्रस्तुत कीं और मिलकर एक नये कार्यक्रमकी भूमिका बनी। जब अगले कदमका निश्चय हो गया तो उसकी तैयारीमें लग जानेका वचन दे जगतसिंह उठे। जब वह चलने लगे तो वजीर अलीने अपने दीवानको आवाज दी और उससे कुछ कहा। जब वह कुछ क्षणोंमें लौटकर आया तो उसके साथ दो सेवक भी थे। उनके हाथोंसे लेकर वजीर अलीने एक उम्दा पोशाक जगतसिंहको दी। दूसरे आदमीके हाथमें थाल थी जिसमें एक पगड़ी रखी थी। उसे उठाकर नवाबने जगतसिंहके सिर पर रख दी और तीसरे के हाथसे तलवार लेकर उन्हें देते हुए कहा—यह हमारी ओरसे आपकी खिलअत है। आजसे आप मेरे दोस्त और सरदार हुए। इस बदकिस्मती और विपत्तियोंसे भरे दिनोंमें इस नाचीज भेंटको ही कबूल करें। अल्लाहने अगर कोई अच्छा दिन दिखाया तो यह बनारसका राज्य इज्जत···· सब आपके ऊपर कुर्बान कर दूँगा····लेकिन अभीसे क्या कहूँ। कहते हुए उसकी आँखें सजल हो गयीं, कण्ठ आर्द्र।

जगतसिंहने उसे आदरपूर्वक सलाम किया और चलने लगे। वजीर अलीने उनके दोनों साथियों शिवनाथसिंह और गंगाधरको भी इनाम दिये। अँगूठियाँ और मोतीकी मालाएँ दोनोंको दी गयीं। उन्होंने सिर झुकाकर नवाबका अभिवादन किया।

जब सब निकलकर बाहर आये तो रात हो चुकी थी। आकाशमें बादल छाये हुए थे। वर्षा नहीं हो रही थी, परन्तु आकाश साफ भी न था। कभी-कभी मेंघोंके फट जानेसे दो-चार तारे टिमटिमाते हुए झलक जाते परन्तु शीघ्र ही दौड़ लगाते हुए दूसरे मेघ खण्डसे वे ढँक जाते। रात लगभग साढ़े आठका समय था।

'क्यों पण्डित महाराज! इस अंधेरेमें आसानीसे चल तो सकते हो न?'

'मैं तो सरकार, इससे भी घना अँधेरा हो, तो तब भी आँख मूँद कर शहरके किसी रास्तेसे जा सकता हूँ। कहीं गढ़े-तालमें नहीं गिर सकता पूछिये शिवनाथ बाबूसे····।'

'मुझसे क्यों पूछेंगे? क्या मैं कोई नया आदमी हूँ।'

'खैर, पण्डित इस अगले लग्नमें विवाह कर लो। पता नहीं कैसा वक्त आयें'—जगतसिंह ने गंगाधर से कहा।

'मेरे करने न करनेसे क्या होगा? आप तो जानते हैं। पिताजी मानें तब तो?'

'मैंने उनसे बातें करली हैं। वह प्रायः तैयारसे हैं। केवल उधरसे प्रस्ताव आने भरकी देर है। तुम बाबू साहब कल भंगड़को पकड़ो। अखाड़ेपर मिले या त्रिलोचन घाटपर····जैसे भी हो पकड़कर उसे शास्त्रीजीके पास भेजो। वह शास्त्रीजीको उभाड़कर गंगाधरके घर लावे। बस बात ठीक है।'

'मैं कल ही यह काम कर लूँगा—' शिवनाथ बोला।

'तब अगहनमें गंगाधरका ब्याह भी हो जावेगा। पण्डितका घर

बस जायगा, नहीं तो कबतक यह भूतों-सी जिन्दगी बिताते रहेंगे ?' जगतसिंहने कहा; बातों ही बातोंमें रास्ता कट गया। वे ऊँचे नीचे, सँकरे रास्तों और पतली पगडण्डियोंके सहारे चलकर अपनी कोठी तक आ गये।

आकाशमें तब बिजली जोरसे चमकने लगी थी और उसके बाद ही भीषण गर्जन होने लगा था।



१५

शास्त्रीजी फँस गये

तीव्र पुरवैयाके साथ घनघोर वर्षा हो रही थी। पानी टूटनेका नाम न लेता था। सड़कों और गलियोंसे बहकर आता हुआ जल निर्जन घाटकी सिढ़ियोंसे गिरकर प्रपातका दृश्य बना रहा था। आज सबेरेसे जो वृष्टि शुरू हुई थी, वह अभी तक होती जा रही थी। घाटपरसे झरनेके समान वेगसे कूदता हुआ जल गिरकर गंगामें आ रहा था जिसके साथ मुहल्लेकी बहती हुई चीजें भी उतरातीं—डूबतीं बहती चली आ रही थीं।

बाहर निकलनेका गँव न था। घाटपर आज पूर्ण सन्नाटा था। एक भी आदमी दिखायी न देता। पटरा और छत्ता हटाकर पण्डे भी चले गये थे। नहानेवालोंकी कमीसे आज न तो घाटपर बुढ़िया तेल-वाली थी। और न तम्बोलो। चारों ओर उदासी-सी छायी थी। कभी-कदाचित दो-एक ब्राह्मण इस भयानक वातावरणमें भी स्नान तथा संध्या-पूजनके लिए आते और अपना कार्य शीघ्र समाप्त कर चले जाते। घाटपर फिर वही सन्नाटा छा जाता था। भंगड़ एक बजड़ेमें बैठा आँखें ऊपर गड़ाये किसीकी बाट देख रहा था। वर्षाके

कारण आज दिन भर बाजार बन्द था और उसकी भाँग भी आज जवाब दे चुकी थी। नशा चटख रहा था। नावपर उसके अलावा एक मल्लाह भर था। जब नहीं रहा गया तो उसने कहा—'गंगू अब त नाहीं रहल जाता है। मालिक तू उप्पर जा। अब तऽ आज नावैपर हँड़ियाँ चढ़ी, अऽ ऐ बरसातमें माईके धारापर पकौड़ी कटी।'

गंगू भी आज दित भरसे बेकार था। पानीके कारण कोई ग्राहक आया नहीं। घाटपर भी डुबकी न लगा सका। हाथ खाली थे, अण्टी सूनी। मगर भंगड़ने जब पकौड़ियोंका नाम लिया तो वर्षाकी झड़ीमें गरम-गरम चटपटी चीजोंके स्मरण मात्रसे ही गंगू माझीकी जीभमेंसे राल टपकने लगा।

'त गुरु तोहूँका कहबऽ। ल जात हई। भींजब चाहे गिरब, लियाइब सब सामान। अब आज बदरी गरमाएके चाही।'

'लेकिन ठहर तो, यह कौन आ रहा है छाता लगाये, हाथमें कमण्डल और कुशासन लिये, देख तो·····' भंगड़ने घाटपरसे उतरते एक व्यक्तिकी ओर संकेत कर 'गंगू मल्लाहसे कहा। गंगूने वर्षाकी झड़ीमें आँखें फाड़कर देखा—आनेवाला व्यक्ति छाता लगाये था। बगलमें कुशासन दबाये और हाथमें कमण्डल लिये वह सीढ़ियोंपर यत्न और परिश्रम पूर्वक पैर जमाता धीरे-धीरे उतर रहा था। सीढ़ियों-परसे गिरते जलके वेगके कारण उसके पाँव उखड़ जाना चाहते थे। यदि वह सावधानीसे न उतरता तो जल प्रवाहके कारण बह जाता, इसलिए सीढ़ियोंके किनारे मन्दिरों और मकानोंकी दीवार पकड़कर आहिस्ते-आहिस्ते उतर रहा था। जब वह कुछ नीचे उतरा तब गंगूने पहचान लिया। त्रिलोचन घाटके रामबल्लभशास्त्री थे। संध्या करनेके लिए आ रहे थे।

शास्त्रीजी किसी प्रकार सीढ़ियोंके बगलमें बनी दीवालोंका सहारा ले नीचे उतरे। गङ्गाका मटमैला पानी मढ़ियोंके ऊपर चढ़ आया था। सामने कटेसर गाँव तक पानी घुस गया था। गङ्गाकी धारापर कहीं बड़ी-बड़ी चाँदरें पड़ती कहीं चक्कर खाते हुए पानी वेगसे नीचे तलकी

ओर पैठा जाता था। बीचमें वायुके थपेड़ोंके कारण उत्ताल तरंगे गर्जन करती लहर रही थीं जिनके ऊपर आकाशसे गिरती बूँदें स्वप्नका संसार निर्माण कर रहीं थीं।

शास्त्रीजीको देखते ही भंगड़ने उन्हें जोरोंसे आवाज देते हुए प्रणाम किया—शास्त्रीजी, दण्डवत, पण्डितजी पाँव लागूँ।'

शास्त्रीजीने सामने देखा—गंगा जलमें कमल पुष्प-सा उठा हुआ बजड़ा लंगरसे बँधे रहनेपर भी लहरोंपर खेल रहा था बजड़ेके नीचे कमरेकी खिड़कियाँ खुली थीं जिससे भंगड़ झाँक रहा था। पण्डितजीको अपनी ओर ताकते देखकर उसने फिर कहा—'डुबकी लगाकर नाव पर ही चले आइये। यहाँ छायेमें बैठकर शान्तिसे संध्या-वंदन कीजिये।

शास्त्रीजीने देखा, घाटपर एक भी छत्ता न था। कहीं सूखेमें बैठकर संध्या करना सम्भव न था। अतः उन्होंने चटपट भंगड़का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अपने सूखे कपड़े और पूजनका सामान पानीमें हलकर उन्होंने भंगड़को थमा दिया। यद्यपि जलमें काफी शीतलता आ चुकी थी, और तेज हवाके कारण शरीरके रोम-रोम भँभर आ रहे थे, फिर भी उन्होंने जमकर स्नान किया। जब नहा चुके तो नावपर चढ़कर कपड़ा बदला और भीतर कोठरीमें चले गये। भंगड़ने पहलेसे ही उनके पूजनके लिए सामान तैयार कर आसन बिछा दिया था। शास्त्रीजी पूजापर बैठ गये।

जब वह पूजन प्रायः समाप्त कर चुके तब भंगड़ने गंगूसे कहा—अब पठ्ठे तू जोऽ। छलकके तनी ऊपरसे सब सामान लेतऽ आवऽ।'

गंगूने अण्टी खोली। कुछ पैसे पड़े थे। उन्हें गिना और लपककर नावसे उतर गया। गिरते हुए जलकी अविरल धारासे लड़ता हुआ वह वेग पूर्वक ऊपर चला गया और गलियोंमें जाकर अदृश्य हो गया।

भंगड़ने तब मतलबकी बात छेड़ी—'पण्डित ताराशङ्करसे मैंने कहा था। कुँवर जगतसिंहने भी कहा था। अब वह त्रिवेणीके व्याहके

लिए तैयार हैं। आप देर न करें। कल ही चलिये।'

'भाई चलनेको मैं चल सकता हूँ, परन्तु यदि उन्होंने जवाब दे दिया तो। फिर त्रिवेणीका दुर्भाग्य····विवाहके वर्षके भीतर ही उसे वैधव्य-योग लिखा है। ज्योतिषी होकर ताराशङ्कर क्या इस बातको न जानेंगे? यदि वह न जानें, तब भी क्या इसे छिपा लेना मेरे लिए उचित होगा?'

'सब उचित है। कन्याका पिता यदि यह आदर्श देखने लगे तो संसारकी हजारों-लाखों दोषी लड़कियाँ कुँवारी रह जायगीं।'

'रह जायँ। तब क्या केवल कन्याके विवाहके लिए ही इतना बड़ा प्रपञ्च फाँदा जाय?'

'जरूर; बिना विवाहके त्रिवेणी रहेगी कैसे? विवाह नारी जीवनका आवश्यक अंग है। फिर कन्यादानका पुण्य! पण्डितको भी बताना होगा?'

'मुझे ऐसे कन्यादानका पुण्य नहीं चाहिये जो मरुस्थलमें क्षणिक वर्षा करनेवाले अस्थिर लघु मेघ खण्डकी भाँति लुप्त होकर दीर्घकालके लिए दारुण-ज्वाला और भयंकर हाहाकारके संसारकी सृष्टि कर दे। भंगड़! वैधव्य नारीके लिए अभिशाप है, कौमार्य्य उसकी पवित्रता। फिर कुछ ठहरकर वह बोले—'और त्रिवेणी अपनी यह पवित्रता आमरण बनाये रखेगी, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। मेरी पुत्री शिथिल चरित्रा नहीं हो सकती क्योंकि मैंने स्वयं आजतक जानमें कोई पाप नहीं किया है।'

भंगड़ चुप हो रहा। क्षणभर बाद उसने कहा—'आप ठीक कहते हैं। ताराशङ्कर तैयार हैं। वहां ये बातें उठेंगी ही नहीं। आप केवल चल चलें। बातें तो हम करेंगे। फिर एक बात जानते हैं? सम्भवतः आप नहीं जानते। त्रिवेणी—गङ्गाधर भी परस्पर परिचित हैं। वे भी विवाहके इच्छुक हैं; किन्तु आपकी स्वीकृति बिना चुप हैं। अब देर मत कीजिये। लोहा बिलकुल लाल है, गरम। उसे पीटकर अपना काम बना लीजिये।'

'स्वीकार है। तो कब चलोगे?'

'जब आप तैयार रहें।'

'दो पहरमें भोजनके बाद।'

'ठीक है। मैं घरपर दर्शन करूँगा।'।

रामवल्लभ कुछ देर तक रहे, फिर चले गये। उनके जानेके बाद जब गंगू सारा सामान एक बन्द कनस्तरमें लेकर लौटा तो भंगड़ने एक अंगड़ाई लेकर कहा—'एक-एक श्वाँसमें कितनी व्यथा भरी है गंगू! हमारे विगत कार्योंका प्रभाव अपनी ही छाती फाड़कर निकलता है। किन्तु यह प्राण इतना अधम है कि तब भी शरीर नहीं छोड़ता। आह! कितनी आग है भीतर।'

मूर्ख गंगू कुछ समझ न सका। यह नशेबाज भंगड़ दिन-रात ऐसी ऊलजलूल बातें बका करता है, यही सोचकर वह चूल्हा सुलगाने लगा। उधर भंगड़ने भी सिलौटी उठायी और भाँग पीसने लगा।

———

१७

अँखिया से निदिया हेराइल...

मंगलागौरी गायको सानी दे उसकी नादके पास खड़ी थी। गाय चुपचाप नादमें मुँह डाले सानी खा रही थी। मंगलागौरी पास ही बँधे उसके बछड़ेको अपनी बड़ी-बड़ी आँखें फाड़कर देखती जो कभी अपनी कोठीमें रखी सानी खाते-खाते अचानक अपनी माताकी ओर मुँह घुमा कर देखता और दूध पीनेका अवसर होता जानकर देर हो जानेके कारण अभीतक न आनेवाले अहीरके लिए आतुर हो बाँ-बाँ चिल्ला रहा था। गाय भी रह-रहकर नादसे अपना मुँह निकालकर पुत्रको देखती और उसी स्वरमें बों-बों चिल्ला उठती। माँ-बेटेके इस अर्थ-विहीन स्वरकी भाषा तो मंगलागौरी न जानती थी, किन्तु उसने भली-भाँति उसका अभिप्राय जान लिया। उन्हें सांत्वना देनेके लिए वह कभी बछड़ेको प्यारसे सहलाती और कभी गायको चुमकारती, कभी पड़ोसकी नन्हीं बालिका और अपनी सहेली मुन्नीसे बातें करने लगतीं।

दिन ढल चुका था और सूर्य डूब चुके थे। अभी अन्धकार पूर्णतः छाया न था। आकाशमें चमगीदड़ोंके झुण्ड दल बाँधे कहीं दूर फल [illegible] ते दिखायी देने लगे थे। अबतक तो ग्वाला

आ जाता था। आज आया क्यों नहीं? मंगलागौरी सोचती और तत्काल ही उसका ध्यान अपनी मामाकी ओर फिर जाता। वह भी तो आज सबेरेके गये थे दिन बीत चुका था, परन्तु वह घर नहीं आये थे। ऐसा तो कभी न होता था। इस प्रकार वह कभी गायब न रहा करते। कहीं जाना भी होता तो घर बताकर जाया करते। वह इन्हीं उलझनोंमें फँसी उतरते अन्धकारमें आँखें फाड़े रास्तेकी ओर ताक रही थी कि नन्हीं मुन्नीने कहा—'गाओ बहिन वह गीत जिसे तुम हमेशा गाया करती हो। माँ कहती हैं तुम्हारे मुँहसे उस गीतकी कड़ी सुनकर उन्हें रोना आता है। रोना क्यों आता है मंगला बहिन?'

किन्तु मंगलाका ध्यान उधर न था। पास ही उसे कुछ आहट लगी। जैसे कोई मना रहा हो। फिर पता चला जैसे कई आदमी दौड़ रहे हों। वह कुछ डरी। सतर्क हो दरवाजे पर जा खड़ी हुई। उसने दरवाजेके दोनों पल्ले हाथसे पकड़ लिये जिससे जब जरूरत पड़े वह उन्हें बन्द करले। मुन्नी अपने घरके दरवाजेके भीतर हो रही। उसने वहींसे आवाज दिया—'गाओ बहिन वह गीत—शूली ऊपर सेज हमारी।'

गाय अचानक चौंकी। पूँछ उठाकर और कान खड़े कर उसने भयभीत हो इधर-उधर देखा, फिर मानो बचनेके लिये भागनेका उपक्रम करने लगी हो, उसने झटका दिया और खूँटा उखाड़कर पगहा समेत भागी। मंगलाने दरवाजेपरसे गायको भागते देखा तो उसे पकड़ लेनेके लिए बाहर निकली। लपककर गायका पगहा थाम लिया और उसे बाँधने जा रही थी कि कोई भागता-दौड़ता उसके घरके पीछेकी गलीसे आया और गायकी नादके पाससे होकर आगे भागा। क्षणभर के लिए उसने पलटकर मंगलागौरीकी ओर देखा। उसकी उस दृष्टिमें किन भावोंका पारावार लहरा रहा था, मंगला यह उस समय जान न सकी। जब वह चला गया तो अचानक उसे लगा जैसे वे बिजली-सी चंचल भयातुर वे आँखें उससे कुछ याचना कर रही थीं। किन्तु उससे वह चाह भी क्या सकता था? सहसा उस व्यक्तिके चले जानेके बाद

दो सिपाही भागते दौड़ते आये। चारो ओर निगाह दौड़ाते हुए उन्होंने पूछा—'इधरसे कोई भागा है, अभी जो यहाँ आया था।'

मंगलाने चाहा बता दे, अभी क्षणभर पहले ही तो गया है, लड़-खड़ाकर गिरते-पड़ते, बेतहाशा भागते। सहसा उसकी कामातुर आँखें स्मरण होते ही मंगलाके हृदयाकाशमें एक अजीब बिजली सी कौंध उठी और उसका समस्त शरीर श्वेदसिक्त हो उठा। जैसेलमेरमें अपने मायके विवाहके मण्डपमें भी उसने एक बार ऐसी ही चमकदार आंखें देखी थीं। उसके पतिने एक बार इस तरह हृदय छेद देनेवाली मार्मिक दृष्टिसे देखा था। तब क्या यह भागनेवाला वही था। वही तो लगते हैं। वैसी ही तो नाक, वही लम्बाई। तब वह एक झलककी कल्पना एक स्वर्गीय स्वप्नके दृश्य-सा दिखायी देने लगी।

अभी उन दोनों सिपाहियोंके गये दो क्षण बीते होंगे कि उसके मामा यदुनाथसिंह हाथमें बन्दूक लिये दौड़ते आये। मङ्गलागौरीको देखकर पूछा—'क्या इधरसे ही गया है?'

'कौन गया है मामा? किसे पूछ रहे हो? मङ्गलाने सब जानते हुए भी अधीर हो मनका संशय मिटा लेनेके लिए पूछा।

'और कौन, वह साला भंगड़। आज बच गये बेटा। अच्छा फिर कभी। देखूँगा कैसे बच निकलते हो? आज तो हाथमें आये पाँच सौ रुपये निकल गये। मामाने उदास होकर कहा।

मङ्गला चकित हो विमूढ़-सी उसीकी ओर ताकती रह गयी। उसकी समझमें कुछ न आया। यदुनाथने खुद ही कहना शुरू किया—भङ्गड़को गिरफ्तार कर लेनेके लिए पाँच सौ रुपयोंका इनाम है बेटी। जिस दिन पकड़ लूँ पाँच सौ रुपये मिल जायँ। शहरमें किसी सिपाही या अफसरकी हिम्मत नहीं होती कि शैतानके सामने आये। है बलाका तेज, मगर यदुनाथसिंहसे बचकर निकलना टेढ़ी खीर है।'

'उन्होंने किया क्या है मामा? मङ्गलाने व्याकुल हो पूछा। आज उसके प्राणोंमें न जाने कहाँकी व्याकुलता व्याप्त हो गयी थी।

'सूअर आदमी है ! भाँग, गाँजा, मदक, चण्डू, चरस, कोकीन, शराब क्या बचा है उससे। सिपाही कहते थे कि नशेके लिए वह अपनी जीभमें बिच्छूसे डंक मरवा लेता है। मगर तलवारका पक्का है। कई खून कर चुका है। दाताराम नागरका साथी है, बद-माश····गुण्डा।'

बदमाश····गुण्डा····भाँग-गाँजा-मदक-चण्डू-चरस कोकीन शराब···· घृणासे एक बार मङ्गलागौरीका मन भर उठा। सहसा करुणा और ममत्वके प्रचण्ड वेगमें घृणाका घेरा ढह गया। मनमें अपार प्रेमका तूफान लहरने लगा। वह किस लिए नशा खाते हैं। अचानक उसका मन कहीं और दौड़ गया। हृदयके क्षुब्ध आकाशमें एका-एक बिजली कौंध उठी— 'क्या वह अकेले हैं मामा? या घरमें और भी कोई है? भला उनके घरवाले उन्हें क्यों यह सब काम करने देते हैं?'

'घरमें कौन बैठा है? बिलकुल अकेला है। पता चला है, वह भी तो मारवाड़का है, अपने ही देशका है। जो किसीसे नहीं सर होता वह अपनेसे होता है। मगर है मारवाड़ का खून !'

मारवाड़का, बिलकुल अकेला! मङ्गलागौरीका मन भीतर ही भीतर ज्वालामुखी-सा सुलगने लगा था। स्वाँस छातीकी हड्डियाँ तोड़ बाहर निकल आना चाहती थी। पलकोंपर आँसुओंका द्वन्द्व चल रहा था। रुकते हुए गलेको साफकर मङ्गलाने साहसकर कहा—'मामा, तुम उनके पीछे मत पड़ो।'

'पागल! आखिर दूसरा कोई उसे पकड़ लेगा। तब यह आती हुई पाँच सौ की थैली क्यों जाने दूँ। तू कुछ समझती नहीं। उसे तो मरना ही है। फिर अपना भाग्य क्यों न बना लूँ। बेटी, यही संसार है। किसीका महल ध्वस्त होता है और कोई उसीपर नयी अट्टालिका बनवाता है। संसारमें सौभाग्य-दुर्भाग्यका चक्र चला ही करता है। इसके लिए भावुकतामें पड़कर अपना भविष्य बिगाड़ना मूर्खता है। भावुकता विनाशकी सीढ़ी और दूरदर्शिता विकासका माध्यम है।'

मंगलागौरी उत्तर न दे सकी। उसे जड़वत् खड़ी देखकर यदुनाथ सिंह हँसता हुआ चला गया—'तेरा मस्तिष्क खराब हो गया है।' मनमें कहा—'पति-वियोगके कारण यह कुछ पागल-सी हो गयी है। इधर कुछ दिनोंसे इसका दिमाग अधिक बिगड़ रहा है। देखूँ, क्या करती है ?'

यदुनाथके गये देर हो गयी। मंगला न जाने किन सुधियोंमें खोयी वहाँ मूर्त्तिके समान स्थिर खड़ी थी। वह न जाने कब तक कल्पना-लोकमें उड़ती रही। तब अचानक आकर मुन्नीने उसे झकझोर कर जगा दिया—जीजी, आज इमलीको डालमें झूला पड़ा है। रातमें माँ, भाभी और मुहल्लेकी सब लड़कियाँ झूला झूलेंगी। तुम चलोगी कि नहीं ?'

मंगलागौरीकी चेतना लौटी— बोली-'चलूँगी'।

रात हो चुकी थी। आकाशमें तारे चमक रहे थे। करीब साढ़े सात बजेका समय रहा होगा। अन्धकार घना हो गया था। बदली नहीं थी, और हवा ठण्डी थी। कहीं आस-पास पानी बरसा था। स्त्रियोंने उस दिन शीघ्र ही घरवालोंको खिला-पिला दिया। सब कामोंसे निवृत्त हो मुहल्ले भरकी लड़कियाँ और बहुएँ झूलेपर जुट पड़ीं। मुन्नी मंगलाके पीछे पड़ गयी थी। उसे भी जाना पड़ा।

लड़कियोंमें अनेक कुँवारी थीं और कुछ ससुरालसे लौटी थीं। कुमारियोंमें पति प्राप्त करनेकी बलवती कामनासे उत्पन्न अनेक काल्पनिक सुखकी भावनाएँ मँड़राती; विवाहितोंमें सावनकी इस रमणीय रातमें पतिका वियोग दुस्सह व्यथा उत्पन्न करता; किन्तु मर्यादाने दोनोंको बाँध रखा था। उल्लास और वेदनाकी तरंगे मर्यादाके आवरणमें स्पष्ट लक्षित न होती।

लड़कियोंने मंगलाको गानेको कहा। उसके स्वरकी धूम गाँव-भरमें थी। परन्तु वह गाये क्या ? उसकी अन्तर्वेदनाका रहस्य किसे ज्ञात था ? सहसा रात्रिकी नीरवतामें गङ्गा तटसे आती किसी पुरुष-कण्ठसे निकले गीतकी कड़ियोंने सबका ध्यान खींच लिया। पुरुष

कजली गा रहा था। या तो वह गाँवके बाहर गङ्गा-तटके आसपास था, या कहीं किसी नावपर, क्योंकि उसकी आवाज बहुत साफ और शब्द बिलकुल सुनायी दे रहे थे। लगता जैसे उसके कण्ठसे व्यथाकी लहर निकल रही थी। वह गा रहा था—

अँखियासे निंदिया हेराइल, अरे साँवलिया···

मङ्गलागौरी पसीनेसे तर हो उठी। उसने आँचलसे ललाट और मुँह पोंछा मुन्नीने कहा—'जीजी, तुम भी गाओ। कुछ जवाब दो उसका।'

मङ्गला चुप थी। पुरुष-कंठसे निकली स्वर-लहरी गाँवमें आयी—

जबसे बलम परदेस सिधारे····अँखियाँसे निंदिया हेराइल···अरे साँवलियाँ····

मङ्गला चुपचाप झूलेसे उतर पड़ी। स्त्रियोंने उसे बहुत बुलाया, समझाया, परन्तु वह न रुकी। घर आकर अपनी कोठरीमें चली गयी। उसने दरवाजा बन्द कर लिया और साफ बिछे पलंगके पायताने भूमिपर बैठकर धीरेसे कहा—'अब क्या इस जीवनमें भेंट न होगी नाथ? एक बार क्षमा कर दो। केवल एक बार अभिमान छोड़कर अपनी दासीके हाथ पकड़ लेते। मैं स्वर्गको लात मार देती।'

सहसा मनने कहा—क्या उनसे कम अभिमान तुझे है? पगली तू स्वयं क्यों नहीं उनके पास जाती? उस रात जागकर और हजारों प्रकार सोचकर मङ्गलाने यही निष्कर्ष निकाला कि यदि प्रेम नारीका कर्त्तव्य है, उत्सर्ग उसका धर्म है तो अभिमान उसके पैरोंकी वह अटूट जंजीर है जिसे तोड़ देना उसके लिए सरल नहीं।

गायक तब भी गा रहा था—

अँखियासे निंदिया हेराइल····अरे साँवलियाँ—

जबसे बलम परदेस सिधारे····अँखियासे निंदिया हेराइल····अरे साँवलिया।

१८

आग और हत्या

कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा था। माघ मासकी दीर्घ रात्रि घने तुषारका कम्पनकारी आवरण त्यागकर पौ फटनेसे प्राचीमें उत्पन्न हलकी आभामें जम्हाइयाँ लेकर मुँह धोने लगी। शीतल वायुके झोंके बर्छीकी नोकसे शरीरके रोम-रोमको भेद रहे थे। घरसे बाहर निकलनेका साहस न होता था। मुसलमान नागरिक मुल्लाओंके बार बार आवाज देनेपर भी कमरेकी खिड़कियाँ खोलना न चाहते थे और अपने बिस्तरपर पड़े रजाईकी गरमाहटका आनन्द कुछ और देरतक उठा लेनेकी सोच जागकर भी करवटें बदल रहे थे। उस दिन मकर संक्रान्ति थी; हिन्दुओंका खिचड़ी त्यौहार। आकाशमें कुछ बादल छा गये थे। वर्षाका भय बढ़ रहा था, फिर भी हिन्दू नागरिक बड़े भोरसे ही गङ्गा-स्नानके लिए घरसे निकल रहे थे। सड़कोंपरसे होकर आती हुई उनके भजनोंकी स्वर-लहरी पवन-तरंगों पर तैरती हुई दूरतक फैल जाती थी।

दुश्चिन्ताओं और योजनाओंका भार लिए व्यग्र और व्याकुल वजीर अली रात सो न सका। नींद आंखोंसे उड़ चुकी थी। पलकें

झँपी भी नहीं। मुर्गेकी आवाज सुनकर उठा। खिदमतगारको आश्चर्य हुआ। वजीरने उसे इज्जत और वारिसको बुला लानेके लिए भेजा। रातमें हुई हरकारेकी बातोंसे इज्जत भी परेशान था। वह भी जा चुका था। बाहर नवाबके खिदमतगारकी बोली सुनी तो बाहर निकल आया। सेवककी बातें सुनकर उसने वारिसको जगाया। थोड़ी देरमें सारा बेड़ा जाग गया। माधव स्वामीका वह शून्य बाग सहसा कोलाहलके आवर्तमें जा डूबा। कोठीके बाहर दरवाजे पर नौबत झड़ने लगी।

देखते-देखते सूर्य उदय हुआ। वजीर अली मरदानखानेकी ऊपरी मंजिलसे उतरा; वह कुछ उदास और चिन्ताग्रस्त-सा लग रहा था। आँखोंमें न तो पहले सी चंचलता थी और न शरीरमें वह स्फूर्ति। चेहरे पर निराशाके साथ ही क्रूरताकी रेखाएँ उसी प्रकार खेल रही थीं जैसे सफलताकी कोई आशा न देखकर भी हठी मनुष्य अपनी जिद पर अड़कर पाशविक कृत्यके लिए उतारू हो जाता है।

सिपाहियोंको तैयार रहनेका हुक्म रातको ही दे दिया गया था। सब लोग प्रातः कर्मसे निवृत्त हुए ही थे कि बाहर फाटक पर नगाड़ा जोर-जोरसे बजने लगा। आज इतने तड़के इस प्रकारकी तैयारियाँ देख आते-जाते लोग चकित हो कोठीपर विस्मयभारी दृष्टि डालते और सन्देह भरी बातें करते आगे निकल जाते।

वजीर अली बाहर निकला। उसके लिए एक हाथी पहलेसे ही तैयार कर दिया गया था। वह उस पर जा बैठा। इज्जत अली और वारिस अली दो घोड़ों पर सवार हो हाथीके दो ओर हो गये। उनके पीछे सिपाहियोंकी भीड़ हो गयी। जितने सिपाही उसके साथ हमेशा चला करते थे, आज उनकी संख्यामें कोई वृद्धि न हुई थी। हमेशाकी तरह संख्यामें वे लगभग ढाई-सौ थे; परन्तु आज वे सब हथियार लिए थे। सबके पास बन्दूकें, तलवार और भाले-बर्छे थे। सड़कपर इस प्रकार नवाबको सैनिक ढंगसे निकलते देखकर आने-जानेवाले नागरिकोंमें भय छा गया। किसी भयंकर अनिष्टकी

आशंकासे भीत हो वे शीघ्रतापूर्वक पैर बढ़ाते गलियों में जा छिपते थे।

कबीरचौरासे चलकर वजीर अली अपने दल-बल सहित जगतगञ्ज आया। जगतसिंह वहां पहलेसे ही तैयार बैठे थे। उनके सहायक शिवनाथ सिंह, बहादुर सिंह, भवानी सिंह, गङ्गाधर और लगभग दो सौ जवान हथियार लिए कोठीके बाहर दालानमें बैठे नवाबके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। भेंट होनेपर वजीर अलीने जगतसिंहसे कहा—आज ही वह शुभ मुहूर्त है, मैं सिकरौल चल रहा हूँ। आप शहरकी स्थिति सँभालेंगे।'

जगत सिंहने उत्साहके साथ आशाभरी आंखोंको ऊपर आकाशकी ओर उठाया और अंगुलीसे दिखाते हुए कहा—'वह, सबका मालिक ऊपर बैठा है। वही हमारी सहायता करेगा। हमें अवश्य सफलता मिलेगी।'

'अच्छा तो मैं चला। अपने आदमियोंको होशियार रखियेगा....।'

'सब ठीक है। मैंने सारी योजना बना ली है। आप बेफिक्र रहें....।'

हाथी शानसे सूँड़ हिलाता और अपने घण्टोंके स्वरसे वातायनको गुँजाता हुआ सिकरौल मुहल्लेकी ओर बढ़ गया। उसके पीछे नवाब-के सिपाही भी चले गये। जगतसिंहके आदमी उनके जानेके बाद नन्देश्वर मुहल्ले तक बढ़कर वरुणा तटपर एक नालेमें जा छिपे।

जाड़ेका प्रातःकाल सूर्यकी धूपमें खुलने लगा था। अङ्गरेज अफसरोंके बङ्गलोंके सामने घासके मैदानोंपर धूप फैल चुकी थी। उनमेंसे अनेक बङ्गलोंसे बच्चे निकलकर अपनी धायों और सेविकाओं-की देखरेखमें धूप खा रहे थे। आकाशमें यद्यपि अब भी बादल छाये थे, किन्तु वे फट गये थे। धूप-छांहकी इस क्रीड़ामें बालक सर्दीकी तीव्रता भूल कुछ कालके लिए उलझ गये थे।

सिकरौलकी अङ्गरेज बस्तीमें वे पहुँचे ही थे कि उन्हें हाथीपर सवार जिलेका कलक्टर और जज डेविस हवाखोरीके लिए जाता

दिखायी पड़ा। नवाब और ज़जमें परस्पर अभिवादन हुआ; परन्तु डेविसको वजीर अलीकी आजकी तैयारीपर सन्देह न हुआ। उसे सिपाहियोंमें कोई नवीनता न दिखायी पड़ी, सिवा इस बातके वे आज अधिक सटकर चल रहे थे और अन्य दिन छितराये रहते थे। हँसकर डेविस गर्वपूर्वक सिर उठाये आगे चला गया और वजीर अली चेरीके बङ्गलेकी ओर बढ़ गया।

चेरी अभी अपने बङ्गलेके बाहर निकला न था। वह भीतर कमरेमें आग जलवाकर उसकी मन्द आँचमें गर्मीका आनन्द लेता हुआ हुक्का पी रहा था। अचानक उसके जमादारने कुछ डर भरे स्वरमें घबड़ाते हुए कहा—'हुजूर, नवाब साहब आ रहे हैं....।'

'तो आने दो। इतना घबराता क्यों है?'

'सरकार, उनके साथ आज हथियार बन्द सिपाही हैं। मुझे नवाब साहबको तैयारी देखकर डर लगता है....।'

'मूर्ख, जा अपना काम कर। हमें इतना डरकर नहीं रहना चाहिये।'

जमादार सलाम कर बाहर चला गया। कहनेको तो चेरीने अवश्य कह दिया था कि हमें डरकर नहीं रहना चाहिये। परन्तु तत्काल ही प्राण-रक्षाके भयसे वह चिन्तित हो उठा। इधर कई दिनों-से वह नवाबके सम्बन्धमें अनेक अफवाहें सुन रहा था। उसकी तैयारी और विद्रोह करनेकी धमकियोंकी खबरें भी उसे मिल रही थी। उधर शहरका जज डेविस भी उसे सावधान रहनेको कह रहा था। उन सब बातोंकी मिली-जुली भावनाने उसके मनपर क्षणभरके लिए अधिकारकर भयका सञ्चार कर दिया था। किन्तु यह प्रभाव क्षणिक था। दूसरे ही क्षण चेरी सम्हल गया। उसने सोचा—क्या इस प्रकार प्रभावहीन और पदच्युत राजपुरुषोंकी धमकियोंसे भयभीत होकर हमें भाग जाना चाहिये? इस प्रकार सात समुद्र पार आकर हम यहाँ अपना राज्य नहीं कायम रख सकते? प्राणोंका भय साम्राज्य रक्षाकी

कर्त्तव्य भावनासे प्रबल नहीं। सेवकों और सिपाहियोंके रक्तसे ही साम्राज्यकी भूमि सींची जाती है जिससे उसकी नींव सुदृढ़ होती है। हमारी हड्डियोंके ढांचेपर भी यदि हमारा साम्राज्य यहां खड़ा हो सके तो उसके लिए हमें त्रस्त न होकर तैयार रहना चाहिये। और यदि मृत्यु हो ही गयी तो यह हमारी कीर्तिको और दीर्घायु ही करेगी।

अभी वह सोच ही रहा था कि बाहर बंगलेके द्वारपर अपार मनुष्यों के स्वरका कोलाहल सुनायी पड़ा। चेरीने समझ लिया कि नवाब आ गया है। उसके साथके आदमियोंको देखनेके लिए और उनकी शक्तिका अनुमान लगानेके लिये उसने कमरेकी खिड़की खोली और उससे देखा, बाहर सड़कपर काफी सिपाही खड़े थे। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। उनमें अधिकांश तो वे ही थे जो पहले भी प्रायः नवाबके साथ यहाँ आया करते थे। किन्तु आज सबके हाथोंमें शस्त्र थे। कुछ सिपाही हाथोंमें जलती मशालें भी लिये थे। उसने समझ लिया कि उद्धत और मूढ़ नवयुवक वज़ीरअलीके मनमें कुछ आवेश आ गया है और उसीके वशीभूत उसने मेरे सम्मुख प्रदर्शन करना चाहा है। इसी बातपर वह मन ही मन हँसा। मूर्ख! इसी ताकतपर पहाड़से टकराने चला है? चींटीको पंख निकल आये हैं। लगता है, उसका अन्त निकट है। लेकिन नहीं। हमें अपनी ओरसे कोई ऐसा कार्य न करना चाहिये जिससे अशान्ति हो। इस छोकरेके लिए बातोंकी मीठी गोली ही कारगर होगी। क्रोधको क्रोधसे नहीं जीता जा सकता।

सहसा वजीरअली अपने मुसाहिबों सहित भीतर घुसा। उसके साथ कुल तीन आदमी थे—इज्जतअली, वारिसअली और उसका श्वसुर फैज़ बेग़। उन्हें देखकर चेरी अपनी कुर्सीसे उठ खड़ा हुआ। आगे हाथ बढ़ाकर उसने नवाबसे हाथ मिलाया और हँसते हुए उसका स्वागत किया। अपने पास ही रखी दूसरी कुर्सीपर उसने नवाबको बैठाया और अन्य तीनोंको दूसरी कुर्सियोंपर बैठनेको संकेत किया। जब सब बैठ गये तो मुस्कुराते हुए रेजिडेण्टने कहा—'हुजूरका हरकारा कल शामको आपका पैगाम लाया था। मुझे बड़ी खुशी हुई। आज

आपको सबेरे-सबेरे अपने पास देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता है। कहिये मैं आप लोगोंकी कैसी सेवा करूँ?

वजीरअलीने एक बार इस विकट व्यक्तिके मुख-मंडलपर दृष्टि डाली और फिर अपने साथियोंकी ओर ताकने लगा। उसकी समझमें न आया कि वह चेरीकी बातोंका क्या उत्तर दे। फिर चित्त संयतकर उसने कहा—'शुक्रिया! आज मैं एक जरूरी बात करने आया था।' कहते-कहते अचानक उसकी आंखोंमें क्रूरता छा गयी। उसके जबड़े एक दूसरेको जोरसे दबाने लगे। मुँहपर कठोरता नाचने लगी। मनमें प्रतिहिंसाकी भावना वेगसे लहराने लगी। उसने अपनेको सँभालना चाहा, किन्तु क्रोध एक बार उठकर दबनेके बदले बढ़ ही रहा था।

आवेश उत्साहकी वह लहर है जो मनुष्यको स्वाभाविक अवस्थासे उठाकर प्रबल मनोभावोंके आवर्तमें फेंक देती है। मनस्थिति अतिशय चंचल होते ही मनुष्य आत्मनियंत्रण खोने लगता है। वीर-भाव होनेसे कभी-कभी साहसके साथ दूरदर्शिताके संयोगसे लक्ष्य सिद्धि हो जाती है, किन्तु क्रोधमें प्रतिहिंसाकी भावनाके संयोगसे प्रायः मनुष्य पदच्युत हो जाता है। वजीरअली इस समय राजनीतिके चातुरीपूर्ण हथकंडोंको भूल क्रोधके सामान्य धरातलपर उतर आया था जिसके साथ प्रतिशोध की भावना भी अधिक बलवती हो चुकी थी। अब उसे अपनेपर नियंत्रण रखना कठिन हो रहा था। रह-रहकर उसका हाथ अपनी तलवारकी मूठपर चला जाता किन्तु चेरीने इसे लक्ष्य न किया। उसने सहज स्वरमें आदरपूर्वक कहा—'बातें पीछे होंगी; पहले हुजूरका आतिथ्य तो करना चाहिये। आज बड़ी सर्दी है। कुछ गरम चाय या काफी पीया जाय कहकर उसने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी मिस्टर ईवानको आवाज दी। ईवान बगलके कमरेमें था। वह जाग गया था और कलकत्तासे आयी किसी मिसिलके पन्ने उलट रहा था। रेजिडेण्टकी आवाज सुनकर उठा। उसके कमरेमें जाकर उपस्थित लोगोंको सलाम किया। तब रजिडेण्टने उससे कहा—'मिस्टर ईवान, नवाब साहबके लिए गरम चायका प्रबन्ध करो।' कहते हुए चेरी उठा। वजीरअली

और उसके तीनों साथियोंकी ओर देखकर बोला—'अब हमें नाश्ता-घरमें ही चलना चाहिये। यदि कष्ट न हो तो····।'

वजीर अलीको नाश्ता करनेमें कोई रुचि न थी। वह जिस लक्ष्यको लेकर आया था उसकी सिद्धिके अवसरकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने चेरीकी बातोंका प्रतिवाद न किया। धीरेसे बोला—'कोई हर्ज नहीं। चलिये, भीतर ही चला जाय। आपके नाश्ता घरमें बैठकर जल-पान करनेमें हमें बहुत आनन्द मिलता है····।'

सब उठकर नाश्ता वाले कमरेमें गये। कमरेके बीचमें एक गोल बड़ा-सा टेबुल हरे रंगके ऊनी कपड़ेसे ढँका रखा था। टेबुलके बीचमें एक शीशेका सुन्दर फूलदान रखा था जिसमें सबेरे ही बागके मालीने ताजे फूल लाकर लगा दिये थे। टेबुलके चारो ओर चमड़ेसे मढ़ी गद्देदार नक्काशीकी हुई आबनूस और सागौनकी—लकड़ियोंकी बहुमूल्य कुर्सियाँ सजाकर रखी थीं जिस पर सब लोग बैठ गये। रेजिडेण्ट चेरीकी बगलमें एक ओर वजीर अली और दूसरी ओर उसका सचिव ईवान बैठा। अन्य लोग सामने बैठे। चार सेवक, जो सब मुसलमान खानसामा और बावर्ची थे, उनकी सेवामें लगे थे।

थोड़ी ही देरमें गरम हलुवा, घीमें ताजे भूने नमकीन काजू और अन्य पदार्थ बहुमूल्य तश्तरियोंमें देशी और विलायती ढंगपर करीनेसे सजाकर ले आये जाने लगे। चाँदीके एक पात्रमें चाय आयी। चाय इस देशमें नयी पेय थी। अंग्रेज जातिमें इसका प्रचलन अधिक था। बात यह थी कि यूरोपमें भारतवर्षसे चाय भेजी जाती थी जहाँ शौकीन लोग इसे पानीमें उबालकर पीते थे। वहाँकी नकलपर भारतवर्षमें भी अँग्रेज अफसर चाय पीने लगे। चेरीने एक प्यालीमें चाय उड़ेलकर अपने हाथोंसे नवाबकी ओर बढ़ाया, किन्तु उसने स्वीकार न किया। भारतमें लोग चाय पीना पसन्द नहीं करते थे। अन्य लोगोंने एक-एक प्याली चाय ली। वे जब जलपानकी वस्तुओंको धीरे-धीरे खाने लगे तो वजीर अलीने अचानक ऊँचे स्वरकर गरजना शुरू किया—'आप लोगोंकी बातोंका कोई विश्वास नहीं रह गया। इस—गयी-गुजरी

हालतमें भी हम हिन्दुस्तानके लोग अपनी बात पर जान दे देते हैं; मगर आप लोगोंका भरोसा नहीं ।'

'क्या हुआ नवाब साहब ! किसने आपके साथ विश्वासघात किया है ?' चेरीने हँसकर पूछा ।

'और कौन ? सन जान शोर साहब, लार्ड मार्निंगटन, आपके गवर्नर जेनरल । जहाँ सबसे बड़े अफसरकी यह हालत हो; वहाँ छोटे कर्मचारियोंका क्या कहना ?'

'क्यों क्या किया उन्होंने ?'

'वाह, जैसे आप जानते नहीं । आप भी तो थे उस समय । पिछले साल गवर्नर जेनरल लार्ड मार्निंगटन साहबने लखनऊमें मुझे हर साल ६ लाख रुपये पेंशन देनेका वादा किया था । मैंने कहा कि इसे कागज पर लिखकर दो तो उन्होंने लिखा नहीं । अब तो वह विलायत चले गये हैं । मैं अपना रोना किससे कहूँ । मुझे लखनऊसे बनारस ला पटका । मेरी सल्तनत छीन ली, हुकूमत ले ली, मेरी इज्जत धूलमें मिला दी और यहाँ लाकर मुझे तीन ही लाख रुपये देने लगे । अब सुनता हूँ कि मेरी यह पेंशन भी आधीकी जा रही है और मुझे रहनेके लिए कलकत्ते भेजा जा रहा है । मगर यह सुन लीजिये, मैं जाहिल, गवार या बच्चा नहीं हूँ । मैं हरगिज, हरगिज कलकत्ता नहीं जा सकता । मैं यहीं बनारस रहूँगा और ६ लाख रुपये बतौर पेंशन लूँगा । इससे कममें मेरी गुजर नहीं हो सकती ।'

चेरी चुपचाप वजीर अलीकी बातें सुन रहा था । वह उसके उद्दीत स्वरसे ही जान गया था कि नवाब क्रोधसे भरा है । इस समय शान्ति नीतिसे ही काम लेना चाहिये ।
क्योंकि तनिक भी कड़ाई दिखानेपर नवाब हिंसापर उतारू हो सकता है । वह सोच रहा था, नवाबकी बातोंका उत्तर दूँ । उसके कुछ बोलने के पहले ही वजीर अलीने फिर उसी स्वरमें चिल्लाना शुरू किया—'कलकत्ता वापस लौटते समय सरजान शोरने कहा था कि हताश मत होइये । मैं आपकी सहायता करूँगा । परन्तु देखता हूँ सहायता करनेको कौन

कहे, मेरी प्रार्थना भी कोई सुनना नहीं चाहता। दूसरे, सर जान इस समय कलकत्तेमें हैं भी नहीं। ऐसी हालतमें मैं क्या करूँगा वहां जाकर। मैं कलकत्ता नहीं जाऊँगा।'

वजीर अली अपना क्रोध प्रकट कर ही रहा था कि वारिस अली अपनी जगहसे उठा। वह धीरे-धीरे बढ़कर चेरीकी कुर्सीके पास आ गया और एक कुर्सी लेकर वहीं बैठ गया। उसे निकट पाकर वजीर अलीकी आंखें चमक उठीं। वारिसने उसे कुछ संकेत किया जिसका उत्तर वजीर अलीने संकेतसे ही दिया। उनका अभिप्राय था कि ठहरो, शीघ्रता न करो। तब फिर पोलिटिकल एजेण्ट की ओर मुँहकर और उसे अपनी ओर आकृष्ट कर नवाबने कहना शुरू किया—'बात यह है कि मैं इस समय तख्तसे उतारा हुआ बदनसीब इंसान हूँ। भला मेरी बात कौन सुनेगा। बात तो सुनी जाती है उस बूढ़े सआदत अली की क्योंकि वह आप लोगोंको मनमानी रुपये देता है। यह काम मैं नहीं कर पाता, इसलिए मैं पागल कुत्ते सा भूँकता रहता हूँ, कोई ध्यान नहीं देता।'

पागल कुत्ता! चेरी मन ही मन हँसा। हां, पागल कुत्ता ही तो, उससे अधिक कुछ भी नहीं।

अब वजीर अलीने अपनी बांई आंखसे वारिस अलीको कुछ समझाया। वह संकेतका अर्थ समझ गया और अपनी कुर्सीपरसे उठा। पलक झँपते भरमें उसने चेरीकी कमीजका कालर अपनी मुट्ठीमें धर पकड़ा और उसका गला दबाने लगा। इस बीच इज्जत अली भी विद्युत-वेगसे उसके पास जा पहुँचा और उसने पीछेसे चेरीको दबाया। वह अपनी कुर्सीपर छटपटाने लगा। इस अप्रत्याशित आक्रमणसे वह घबरा गया और अपने सहायक ईवानको सहायताके लिए बुलाने लगा। ईवानके वहां पहुँचनेके पहले ही वजीर अलीने अपनी तलवार निकाल कर खींच ली और चेरीपर उसे चला दिया। चेरी पहले तो जोरसे हल्ला मचाकर आसपास तकके लोगोंको 'चौंका दिया। वह अपनी कुर्सी छोड़ उठ खड़ा हुआ और षड़यन्त्रकारियोंके

चंगुलसे निकल भागनेके लिए बेगसे खिड़कीके पास जाकर बाहर कूदने लगा।

चेरी जिस खिड़कीके बाहर जाना चाहता था, उसके आगे लम्बा बरान्दा था। इसी बरान्देको लांघकर वह बाहर बगीचेमें चला जाना चाहता था। अपने प्रयासमें सफलता की बात वह सोच ही रहा था कि वजीर अलीने उसपर अपनी तलवार चला दी। आगे भागते हुए चेरीकी गरदनपर तलवारकी धार वेगसे गिरी। उसका सिर धड़से अलग हो बरान्देकी फर्शपर जा गिरा और वेगसे छटपटाकर नाचने लगा। रुण्ड और मुण्ड दोनोंकी कटी धमनियोंसे रक्तकी अजस्रधार भूमिपर बह चली जिससे वहांकी भूमि लाल हो उठी।

पोलिटिकल एजेण्ट मारा जा चुका था। अब क्या था? जिस यज्ञका कार्य उन्हें करना था उसका श्रीगणेश निर्विरोध और सफलता-पूर्वक हो ही गया। अब उन्होंने दूसरोंपर दृष्टि उठायी। निकट ही था कि चेरीके सेवक गण हल्ला कर अपने अङ्ग रक्षकों आदिको बुलाते, किन्तु उसके पूर्व ही वजीर अलीके साथियोंने उन्हें जा पकड़ा।

इज्जत अलीने चेरीके सचिव ईवानको पकड़ा। अपने स्वामीके इस प्रकार वधसे वह स्तब्ध हो आंखें फाड़कर देख रहा था। क्षण भरके लिए उसकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी। वह क्या करे, समझमें न आया। उसे पता न था कि चेरीके बाद आक्रामक उसपर भी हमला कर देंगे। उसने सम्भवतः सोचा हो कि पोलिटिकल एजेण्टके व्यवहारसे नवाब नाखुश था; हो सकता है इसीलिए उसने उससे अपना वैर निकाला हो। अपने संकटपर उसका ध्यान नहीं गया था। वह चुपचाप अपलक यह दृश्य देख प्रस्तर-मूर्त्ति सा ठिठका खड़ा था कि इज्जत अलीने उसकी कमरमें हाथ डालकर उसे पकड़ लिया। अपने छूरेपर हाथ रखकर वह छूरा निकालने लगा जिससे ईवानको मारता। उसकी नीयत भाँपकर ईवानने उसकी कलाई पकड़ ली। ईवान जवान और तगड़ा था। उसके प्रतिरोधसे इज्जत क्षणभरके लिए रुका और फिर उससे भिड़ गया। दोनो ही व्यक्ति परस्पर

गुँथ गये। अचानक चेरीका एक सेवक इब्राहीम वहाँ आया। उसने ईवानको शत्रुओं द्वारा घिरा देखकर वह उनपर टूट पड़ा। उसके टूटते ही ईवानको मौका मिला और दुर्बल पड़ते हुए इज्जत अलीसे अपनी कलाई छोड़ाकर भागा। वह कमरेके दरवाजेसे निकल भागा और बाहर बारामदेमेंसे होकर मैदानमें आया। किन्तु अभागा वहाँ भी, न बच सका। नवाबके कुछ घुड़सावर सिपाहियोंने उसे देख लिया और उसपर वे टूट पड़े। इतने आदिमियोंके एक साथ टूटनेसे ईवान चकरा गया। क्या करता? सबने उसे चारों ओरसे घेर लिया और उसपर शस्त्र चलाने लगे। ईवानने कुछ कहा नहीं, चुपचाप प्रभुका नाम लेता रहा। अचानक उसकी पीठपर तलवार गिरी। अभी वह इस वारसे सँभला भी न था कि दूसरे वारने उसका भी काम समाप्त कर दिया। दूसरे आदमियोंने अन्य लोगोंको, जो भीतर कमरे में थे, अपनी तलवारोंके घाट उतार दिया।

कैप्टन कनवे जो इधर कुछ दिनोंसे चेरीके ही साथ रहने लगा था, दुर्भाग्यवश घोड़ेपर चढ़ा बाहरसे आ रहा था। सम्भवतः वह प्रातः-काल हवाखोरीमें जाता और अब वहाँसे लौट रहा था। उसके पीछे उसका सहायक भी घ.ड़ेपर था। दोनोको देखते ही बाहर सड़क तथा मैदानमें खड़े वजीर अलीके शस्त्रधारी सिपाहियोंमेंसे किसीने गोली चला दी। एक साथ तीन-चार फायर हुए जिनसे कैप्टन कनवे और उसका सहायक दोनो घोड़ोंसे गिरकर ढेर हो गये।

चेरीकी हत्याकर यह दल आगे बढ़ा। कुछ ही दूरपर पुलिस दफ्तर था। पुलिस अफसर राबर्ट ग्राहम समाचार सुनकर चेरीके बङ्गलेकी ओर दौड़ा आ रहा था कि वजीर अलीने उसे गोली मार दी। ग्राहम वहीं ढेर हो गया।

माघ मासकी शीतल वायु हत्या और विद्रोहकी ज्वालासे उष्ण हो गयी थी। वजीर अली और उसके साथियोंके सिरपर हत्याका पाप चढ़कर नाच रहा था। उनकी आँखोंमें खून उतर आया था। चेरीके बङ्गलेमें अब सिवा हिन्दुस्तानी देशी सेवकोंके कोई भी अंगरेज

जीवित न था। देशी नौकरोंका वध करना व्यर्थ समझकर अब वे डेविसके बङ्गलेकी ओर चले।

डेविसका बङ्गला चेरीके बङ्गलेसे लगभग दो फर्लाङ्ग दूर था। सड़क सीधी गयी थी। डेविस जिस समय सबेरे हाथीपर सवार हो घूमने निकला था, रास्तेमें वजीरअलीको अपने दल-बलके साथ आते देखा। वजीर अलीपर उसे आरम्भसे ही सन्देह था, आज भी सन्देह था, किन्तु उसे यह विश्वास न था कि आज वजीर अली कृत संकल्प हो अपनी योजनाको साकार करने जा रहा था। इसीलिए उसने मुस्कुराकर उसका अभिवादन किया था। थोड़ी देर घूमनेके पश्चात् जब वह लौटकर अपनी कोठीपर वापस आया तो देखा शहर कोतवाल फैयाज़ खाँ बारामदेमें बैठा अधीरता पूर्वक उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। डेविसको फाटकमें घुसते देखकर ही वह अपनी जगहपर खड़ा हो गया और उसने कलक्टरको सलामी दी। पास पहुँचकर डेविस हाथीसे उतारा और अपने कमरेमें चला गया। फैयाज अली खाँ पीछे-पीछे उसी कमरेमें घुसा। उसकी आकृति कुछ घबरायी हुई सी थी। आँखें मानो किसी आतङ्क से भरी थी। उसकी यह अवस्था देखकर डेविसने पूछा—'कहिये, क्या खबर है? कैसे चले इस वक्त?'

'हुजूर बड़ी बुरी खबर है। पता चला है कि नवाबके आदमी छपरा से लौट आये। वहाँ जगतसिंहके एक रिश्तेदारने जमींदारों और बाबुओंको उभाड़कर विद्रोहके लिए तैयार कर लिया है। ढाकेके नवाबके भाई भी उनकी गिरोहमें शामिल हैं। बाहर इन लोगोंने काफी दौड़-धूपकर खतरनाक गिरोह कायम कर लिया है। इन सब बातोंसे नवाबका मन आसमानपर चढ़ गया है। आज बड़े सबेरे लगभग ढाई सौ हथियारबन्द जवान लेकर वह पोलिटिकल एजेण्ट साहबके बँगलेकी ओर गये हैं। मुझे नवाब साहबकी नीयतमें शुबहा होता है....।'

'ठीक कहते हैं। मुझे भी सन्देह हो रहा है। अभी आधा घण्टे पहले मैंने उसे दो-तीन सौ आदमियोंके साथ आते देखा। वह चेरी

साहबके बंगलेकी ही ओर जा रहा था। पता नहीं इस आदमी के दिमागमें क्या फितूर है ?'

'वह सरकार जरूर कोई-न-कोई खुराफात करेंगे। मुझे खुफिया तौरपर पता चला है कि, शास्त्रीने आजका मुहूर्त बताया था। ज्योतिषी-की बात मानकर ही नवाबने आज अपना मंसूबा पूरा करनेके लिए यह तैयारीकी है। आप''''।'

'ठहरिये किसीको भेजकर चेरी साहबको इत्तला कर दूँ। वह होशियार हो जायँगे तो यह लौंडा उनका कुछ नहीं कर सकता, मगर जब वह खुद सँभलें तब तो। आज एक सालसे समझा रहा हूँ कि, इस छोकरेपर विश्वास मत करो और इसे जल्द ही बनारससे धता-बासठ करो। मगर उन्होंने अपने आप यह रोग पाल रखा है; मैं करूँ क्या ?' कहकर डेविसने एक कागज और कलम दावात उठायी। शीघ्रता से एक पत्र लिखा जिसमें वजीर अलीके बुरे मंसूबोंका उल्लेख कर उससे सतर्क रहने के लिए आगाह कर दिया। दरबानको बुलाकर उसने चिट्ठी दी और शीघ्र ही चेरी साहबको देकर और उनका उत्तर लेकर आनेके लिए कहा। दरबान चिट्ठी लेकर दौड़ा गया। डेविस अधीरतासे उसके लौटनेकी प्रतीक्षा करने लगा। बाहर बारान्देमें निकल आया। कोतवाल फैयाज अलीखाँ भी उसीके साथ बाहर चला आया। दोनों बारान्देमें बैठे और चेरीकी कोठीकी ओर आँखें फाड़-फाड़ देखने लगे।

सहसा वजीर अली और उसके साथी पहलेसे भी तेज गतिसे दौड़ते हुए उसी ओर आते दिखायी पड़े। वह कोई युक्ति निकाले और सुरक्षाकी कोई व्यवस्था करे, इसके पूर्व ही वह सशस्त्र दल उसके बंगलेके दरवाजेपर आ धमका। उनमेंसे कई घुड़सवार सड़कसे होकर आनेके बदले बंगलेका घेरा नाँघकर भीतरी मैदानमें घुस आये। एक सन्तरी कोठीसे लगभग पचास गज फासलेपर खड़ा पहरा दे रहा था। सिपाही उसपर फायर करने लगे। देखते-देखते वह हतभाग्य सन्तरी लड़खड़ाकर गिरा और 'हाय भगवान' कहता हुआ ठण्ढा हो गया।

तब जोरोंसे चिल्लाकर वजीर अलीने कहा—जो बहादुर जवान इस कलक्टर डेविसका गला काटकर मेरे पास लायेगा उसे एक हजार अशर्फियाँ, इनाम मिलेगा और सल्तनत वापस मिलनेपर जागीर बख्शी जायगी।' उसकी घोषणा सुनकर कई सिपाही फड़क उठे।

समय खोनेका न था। जीवन-मरणका खेल सामने होने लगा था। डेविसने घरके भीतर ऊपर जानेवाले कमरेमें जाकर अपनी पत्नीको आत्म-रक्षाके लिए तैयार हो जानेको कहा। उसके परिवारमें उसकी पत्नी, दो छोटे बच्चे, एक पुर्तगाली धाय, तथा दो मुसलमान औरतें खिदमतगार थीं। वे सब भागकर कोठीके ऊपरवाली छतपर चली गयीं। अब उसने अपनी रक्षा करना चाहा, परन्तु ध्यान आया कि बन्दूक तो नीचे बैठकमें ही छूट गयी है। वह बन्दूक लेनेके लिए नीचे उतरा, परन्तु आगे बढ़ते ही देखा कि नीचे उतरनेके रास्तेपर ही एक शत्रु-सिपाही बन्दूक ताने खाने खड़ा है। नीचे जाना सम्भव न था। अतः वह पीछे हटा। देखा, कमरेमें एक भाला रखा था। डेविसको याद आया, एक दिन वजीर अलीने ही उसे वह भाला स्वयं भेंटमें दिया था। यह भाला छ फुट लम्बा था और इसका त्रिकोणात्मक फल लगभग बीस इंच लम्बा और तीव्र धारका घातक फलक था। उसने उसीको उठा लिया और शत्रुओं की प्रतीक्षा करने लगा।

डेविसका मकान दोमंजिला था और ऊपर खुली छत थी। नीचेसे ऊपरकी मंजिलमें जानेके लिए गोल घुमावदार सीढ़ियाँ बनी थीं। वह ऊपर वाले कमरेके दरवाजेसे कुछ आगे निकलकर खड़ा हो गया और शत्रुओंके उपर बढ़नेकी बाट देखने लगा। क्षण भरमें दो सिपाही ऊपर चढ़ने लगे। डेविसने दोनोंको बारी-बारीसे भालेकी नोकसे मार डाला। उसे इस प्रकार सीढ़ीपर ही लम्बा भाला लेकर डटे देखकर वजीरअली-के सिपाहियोंने सोचा कि वे आसानीसे ऊपर नहीं चढ़ सकते, तब वे बाँसकी एक सीढ़ी उठा लाये और उसको सहायतासे ऊपर चढ़नेका प्रयास करने लगे।

कुछ ही मिनटोंके बाद बागियोंका दूसरा दल सीढ़ियोंपर ऊपर

चढ़ने लगा। उन्हें आते देख डेविसने जी कड़ा किया और भाला तान-कर आगे बढ़ आया। उसने देखा भीड़में वजीरअली भी था। वह भी ऊपर आना चाहता था। उसके हाथमें नंगी तलवार थी। जब वह कुछ सीढ़ियाँ ही नीचे रह गया जहाँ तक डेविसका भाला नहीं पहुँच पा रहा था। डेविसको सामने खड़े देखकर नवाब उसे डाँटने और गालियाँ देने लगा—'बदजात, कायरों-सा घरमें छिपा है। उतर आ नीचे। सूअर राजनीतिकी चाल चलता है! आज तुझे तेरे गुनाहों की सजा देने आया हूँ।'

डेविस भयसे थरथरा रहा था। उसके मस्तकपर पसीनेकी बूँदें झलकने लगी थीं। आंखोंमें भय छा गया था। चेहरा विवर्ण हो रहा था। फिर भी किसी प्रकार साहस बटोरकर भाला लिये सीढ़ियोंके ऊपर खड़ा था। उसने देखा कोतवाल भीड़मेंसे जिन्दा बचकर निकला-भागा जा रहा था। उसे जोरसे आवाज दी—'फैयाज खां, कैम्पसे सेना भेजवाओ। जल्दी भागो।'

फैयाजको भागते देख कुछ सिपाही उसके पीछे दौड़े। इधर इज्जतअली एक सीढ़ी और चढ़ा। अब डेविसका भाला उसके शरीरमें भलीभाँति लग सकता था। इज्जतअली चाहता था कि वेगसे चढ़कर डेविसको पकड़ लूँ और भाला छीन लूँ। परन्तु वह ज्योंही आगे बढ़ा कि डेविसने खींचकर भाला मारा जो उसके कलेजेके पाससे निकला। छाती तो बच गयी परन्तु घाव बाहमें जा लगी। रक्तकी धारसे सीढ़ी रंग गयी। घाव लगते ही इज्जतअली उतर आया। नीचे कमरे में वजीरअलीके आदमी भरे थे। वे सब मनमानी तोड़-फोड़ कर रहे थे। अचानक गोलियोंकी आवाज सुनायी पड़ी। पता चला कि एक टुकड़ी सेना, जो कलक्टर और पोलिटिकल एजेण्टकी सुरक्षाके लिए वहाँ रहा करती थी, तैयार होकर आ गयी थी और दोनों पक्षमें जमकर गोलियाँ चलने लगी थीं जिससे वजीरअलीके सहायक सीढ़ियों द्वारा चढ़कर उसके ऊपर न जा सके। कुछ देर तक गोलियाँ चलती रहीं, लोथोंसे वह स्थान पट गया। ऊपर छतपर बैठी डेविसकी पत्नीने अपनी

पुर्तगाली धायसे कहा—'जरा बाहर झाँककर देख तो क्या हालत है।' धाय बाहरका दृश्य देखनेके लिए उठ खड़ी हुई। उसने सिर निकालकर नीचे मैदानमें हो रहे युद्धका विवरण बताना चाहा, परन्तु विद्रोही सिपाहियोंमेंसे किसीने उसे देख लिया और अपनी गोलीसे उसका सिर छेद दिया बेचारी धाय स्वामिभक्तिकी वेदीपर बलिदान हो गयी।

विद्रोही अब सीढ़ीके पाससे हट गये थे, क्योंकि डेविसके भाले और तंग घुमावदार गोल सीढ़ीके कारण उनका ऊपर चढ़ना संभव नहीं हो पाया था। अतः वे अब नीचे कमरेमें मनमानी लूट और तोड़-फोड़ करने लगे थे। डेविस ऊपर वाले कमरेमें चला गया और दरवाजा बन्द कर उसने भीतरसे उसकी सिटकिनी लगा दी थी। आधे घण्टे तक वह प्राण-रक्षाके लिए इसी प्रकार छिपा था। उसके बाद सीढ़ियोंपर फिर किसीके चढ़नेकी आवाज सुनायी पड़ी। डेविसने अपना भाला फिर उठा लिया। जब आवाज बिलकुल निकट आ गयी तो उसने दरवाजा खोलकर भाला मारना चाहा। परन्तु आगन्तुकके बोलनेकी आवाज उसने पहचान लिया। वह घरका बूढ़ा नौकर था—

जिसे विद्रोहियोंने हिन्दुस्तानी और बूढ़ा समझकर छोड़ दिया था। उसने कहा—'अब बाहर निकल आइये।'

'क्यों?'

'वे सब चले गये। डरनेकी कोई बात नहीं।'

परन्तु डेविसको अब अपने ही नौकरोंपर विश्वास न रह गया था। वास्तवमें उसे समस्त हिन्दुस्तानियोंपर सन्देह हो गया था। कहीं यह भी वजीरअलीसे न मिल गया हो जो धोखेसे मुझे बाहर ले जाकर मरवा डालना चाहता हो। तब तक बाहर कुछ और आदमी आ गये। वे सब भी बूढ़ेकी बातकी पुष्टि कर रहे थे कि वजीरअली अपने साथियों सहित चला गया है, लेकिन उसका विचलित हृदय विश्वास न कर सका। जब सहसा उसने अपनी कोठी के मैदानमें कोतवाल फैयाजअली खाँको कुछ सिपाही लेकर आते देखा और कुछ देर बीत जानेके बाद भी किसी गोलीके न चलने अथवा तलवारोंकी टकराहटकी आवाज न सुनी

तब उसे विश्वास हुआ कि शत्रु चला गया है। धड़कते हृदयसे नीचे उतरा। बारान्देमें आकर बाहरका दृश्य देखा—आस-पासके अंगरेज-बंगलोंमें आग लगा दी गयी थी। उनमें रहनेवाले अधिकांशतः मारे गये थे और कुछ भाग गये थे जो अब लौटकर घर वापस आ रहे थे।

फैयाज़अलीने अपने सिपाहियोंको डेविसके बंगलेके चारों ओर खड़ा करवा दिया। उनमें सबके पास बन्दूक थी। उन्हें देखकर डेविसके जीमें जी आया। उसने अपनी भी बन्दूक मँगाकर कंधेमें डाल लिया और पिस्तौल जेबमें रख ली। अब उसके जीमें जी आया तो कोतवालसे उसने पूछा—'अच्छा इन शैतानोंकी लीलाकी खबर बताइये। क्या-क्या उत्पात किया इन्होंने। गजबके बदमाश थे सब!'

'हमारे लायक और दयावान अफसर चेरी साहबको·····।'

'ऐं, क्या कहा? चेरीको····क्या किया, मार डाला?'

'जी हाँ, उन्हें तथा उनके बंगलेके तमाम आदमियोंको। कैप्टन कनवे और उसके सहायककी लाशें बाहर मैदानमें पड़ी हैं। सिकरौल बस्तीमें चारो ओर उन्होंने लूट मचाई, मारा और घरोंमें आग लगाकर शहरपर कब्जा करने गये हैं।'

डेविस चकराया। उसकी बुद्धि ठिकाने न थी। यद्यपि वह स्वयं बच गया था, किन्तु उसे सुझाई न पड़ता था कि क्या करे? कुछ ठहरकर बोला—'जब आपको यह खबर लगी कि बागी शहरपर कब्जा करने गये हैं तब आप कोतवाली छोड़कर यहाँ क्यों चले आये?'

'हुजूर के लिए; सरकारके बाल-बच्चोंकी हिफाजतके लिए·····।'

'डेविसने उसी प्रकार उन्हीं शब्दोंमें व्यंग किया—हुजूरके लिए··· खूब बहाना निकाला। डरकर भाग आये। जिस समय आपकी जरूरत शहरमें थी, उस समय आप यहाँ चले आये। इस वक्त वे शहरमें न जाने क्या गजब ढाते होंगे। कोतवालीपर कब्जा कर लेंगे तब हमारे लिए कठिन समस्या खड़ी हो जायगी। अच्छा, जो हुआ, सो हुआ। आप इसी वक्त एक हरकारा जेनरल अर्सकिन साहबके पास भेजें। मैं चिट्ठी लिख देता हूँ। वे तोप-गोला और चुने हुए सिपाहियोंके साथ

जल्द आकर स्थिति सँभाल लें। हरकारा फौजी छावनी चला जाय और आप कोतवाली। वहाँ आप तबतक डट रहें जबतक हमारी फौज वहाँ पहुँच न जाय···भले इस काममें आप मारे जायँ। कम्पनी इस त्याग और बलिदानके लिए आपके बच्चों और बीबीकी परवरिश करेगी। इसका जिम्मा मेरा। अब देर न कीजिये, जाइये।' कहकर। डेविसने फौजके प्रधान अफसर जेनरल अर्सकिन साहबको पत्र लिखा सारी कथा लिखकर उसने उन्हें तत्काल चले आनेको कहा। पत्र लेकर हरकारा चला गया। फैयाजअलीखाँ भी शहर कोतवालीको ओर चला।

इस समय करीब नौ बज रहा था। आकाशमें बदली छा गयी थी। हवा जोरोंसे चल रही थी। उसकी शीतलता बर्छीके समान चुभ रही थी। चारो ओर सन्नाटा छा गया था। सिकरौल बस्तीके बचे-खुचे अंगरेज डेविसके बंगलेमें चले आये। भयके कारण उनकी हालत खराब थी। एक बार आजसे अठारह वर्ष पूर्व राजा चेतसिंहने विद्रोह किया था; उस समय नासमझीके कारण बहुतसे अँगरेज शहरमें चले गये जिनमें एक भी जीवित न लौटा। उस बातका स्मरणकर अब कोई भी जान बचानेके लिए शहर न जाना चाहता था। कई योजनाएँ बनीं, परन्तु कुछ निश्चित न हो सका। डेविस अर्सकिनकी बाट देख रहा था। कुछ ठहरकर उसने चेरीकी लाश देखने चलना चाहा। उसके साथ सब लोग गये। जाकर देखा, चेरीका मुण्ड धड़से पृथक हो दूर पड़ा था। सारे कपड़े रक्त और धूलमें सनकर गन्दे हो गये थे। उसकी यह दशा देख डेविसका हृदय काँप उठा। उसने भगवान्‌का स्मरणकर उनकी मनही मन प्रार्थना की फिर कहा—'हतभाग्य! कितनी बार समझाया था कि उस लौंडेपर विश्वास न करो। परन्तु तुमने न माना। उस असावधानीका फल देखनेके लिए भी तुम न रहे···भगवान् तुम्हें शान्ति दें।'

सहसा एक सिपाही भागता हुआ आया। डेविसने पहचान लिया। वह सरकारी सिपाही था। डेविसको देखकर सलाम किया—सरकार

वजीरअलीने शहर भरमें दंगा करा दिया है। वह एक बड़ी सेना लेकर फिर इधर आ रहा है।'

फिर आ रहा है। अंगरेज पुरुषोंके वस्त्र सरकने लगे। डेविसने चेरीकी लाशको उसी प्रकार छोड़ दिया और भागा-भागा अपने घर आया। छतपर सिपाहियोंको चढ़ाकर छिपा दिया जहाँसे वे शत्रुओंपर भलीभाँति गोलियाँ चला सकें। कुछ अंगरेज अपना बंगला छोड़ बस्तीके बाहर एकान्त और अज्ञात स्थानोंकी ओर भागे। अब उन्हें डेविस पर भी विश्वास न रह गया जो स्वयं अपनी रक्षा कर पानेमें भी असमर्थ और व्यस्त था।

अचानक वजीरअलीके सिपाहियोंके ढोलकी आवाज सुनायी पड़ी जिसे सुनकर सिकरौलके अंगरेज स्त्री-पुरुषोंकी नसोंमें खून जम गया। उनकी आँखोंमें निराशाका अन्धकार छा गया। सिपाहियोंद्वारा ज्ञात हुआ कि शहरवाले विद्रोहियोंसे मिल गये हैं। दूरपर उनके पैरोंकी आहट भी सुनायी पड़ने लगी। अब ग्यारह बज रहा था। दिन काफी चढ़ आया था। पैरोंकी आहटके साथ नगाड़ेकी आवाज, घोड़ोंके टापोंकी ध्वनि स्पष्ट होने लगी। जब यह दल कुछ पास आ गया तो सबने पहचान लिया। सिपाही अंगरेजी सेनाके थे। मेजर पिगाट और थूब्रिक घोड़ोंपर सवार झण्डा लिये आगे-आगे चले आ रहे थे। उन्होंने दूरसे ही चिल्लाकर अपने आगमनकी सूचना दी। डेविसने हर्षसे उछलकर उनका स्वागत किया।

मेजर पिगाटने अपने दलको सड़कपर खड़ा कर दिया। कुछ सिपाहियोंको लेकर वह पहले पोलिटिकल एजेण्टके बंगलेमें गया। वहाँ मृत्युकी अखण्ड शान्ति विराज रही थी। न कोई उल्लास-हर्ष था, न कोई शोक-वियोग। बंगलेका मैदान स्तब्ध पड़ा साँय-साँय कर रहा था। चेरीका मकान किसी अटल निर्मोही योगी-सा चुपचाप खड़ा प्रातःकाल घटित घटनाकी कथा मूक भाषामें कह रहा था। सारी लीला समाप्त हो चुकी थी। कम्पनीके गौरवका एक स्तम्भ भू-लुण्ठित हो खंड खंड पड़ा था। पिगाटने लाशोंको देखा, फिर बाहर चला आया।

जब वह डेविसके बंगलेकी ओर बढ़ने लगा तो देखा सड़कपर राबर्ट ग्राहमकी लाश पड़ी थी। उसका सिर छटककर बीच सड़कपर जा गिरा था और शरीरके कई टुकड़े हो गये थे जो इधर-उधर छितराये थे। पास ही विलियम हिल मरा पड़ा था जो चौकका एक व्यापारी था। अंगरेजोंके मकान खुले पड़े थे। उनमें कोई न था। या तो वे जल रहे थे, अथवा उसमें रहनेवाले प्राण-रक्षाके भयसे भाग गये थे। यह भयंकर दृश्य देखते हुए वे डेविसके बंगलेमें घुसे।

पहले तो सबने मिलकर सुरक्षाकी योजना बनायी। यह तै हुआ कि जब तक छावनीसे पैदल सेना न आ जाय, तब तक यहाँसे कोई न हटे।

'इसीलिये'—डेविस बोला—'मैं हमेशा कहता था कि सिकरौलमें भी एक छोटी छावनी खोलो। मगर चेरीने न माना।'

'ठीक तो है! हमारी आबादी तो है सिकरौलमें और छावनी बेटाबर और कुण्डामें। तब हम मारे नहीं जायँगे तो क्या जीयेंगे?'—पिगाट बोला।

कुछ ही देरमें बाहर भीड़ एकत्र होने लगी। उन्हें देखकर कहा नहीं जा सकता था कि वे विद्रोही थे अथवा दर्शक नागरिक। शहरकी ओरसे बहुत अधिक संख्यामें लोग डेविसके बंगलेकी ओर चले आ रहे थे। उनमेंसे अधिकांश निहत्थे थे। उन्हें शस्त्रहीन देखकर ही डेविसने अनुमान लगाया कि वे नागरिक थे। उनकी परीक्षा लेनेके लिए जब उसने सिपाहियों द्वारा उनसे पुछवाया कि बाहर वे कौन लोग खड़े हैं, तब उनमेंसे कुछने बताया कि विद्रोहियों द्वारा लूट और हत्याकी खबर सुनकर वे देखने तथा सहानुभूति प्रकट करने चले आये हैं।

शहरमें कोतवाली तो थी ही, सिकरौलमें भी पुलिस विभागका एक दफ्तर नया खोला गया था। उसके लिए एक स्वतन्त्र भवन अलगसे लिया गया था। यह बंगला डेविसके बंगलेके ठीक बगलमें पूरबकी ओर था। इस बंगलेके चारों ओर नाले बहते थे और उनपर

नीम, इमली, आम, जामुन आदिके बहुतसे पेड़ लगे थे जिससे वह स्थान छिपनेवालोंके लिए बहुत उपयुक्त था। भीड़ इसी ओर बढ़ने लगी।

'पंडित !'—उनमेंसे एकने फुसफुसाकर कहा—'यहाँ सेना जुट रही है। साहबलोग अपनी सेना जुटाकर शहरपर हमला करेंगे। इससे अच्छा होगा कि हम यहाँ उनकी सेना आने न दें और रास्तेमें ही उसे फँसा लें।' यह शिवनाथसिंह था जो ब्रह्मनालका प्रसिद्ध तलवारिया था। पंडित जगतसिंहका सिपाही गंगाधर था। उसने उत्तर दिया—नरायनपुरके बाबू भवानीसिंह बेटाबरके रास्तेमें अपने आदमी लिये ····खड़े होंगे। एक चोट तो वह रास्तेमें देंगे ही।'

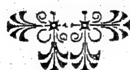
'तब भी इन्हें यहाँ अधिक सेना न जुटाने देना चाहिये। बाबूसाहब ने यही कहा है। सेना शहरमें न घुसने पाये।'

'तब क्या किया जाय ?' गंगाधरने पूछा।

'बहादुरसिंह कुछ जवान लेकर जाय और बेटाबर छावनीसे लेकर सिकरौल तकके रास्तेमें गाँववालोंको उभाड़कर साहबोंको वहीं रोक ले। शिवनाथसिंह बोला और अपने बगलमें खड़े एक बलिष्ठ पुरुषकी ओर मुँह फेर उसने कुछ संकेत किया। संकेत देखते ही दूसरा पुरुष वहाँसे चला गया।

अभी उसे गये पाँच-सात मिनट भी न बीते थे कि सामनेसे जेनरल अर्सकिन अपनी घुड़सवार सेनाके साथ आता दिखायी दिया। इस सेनामें दो सौ घुड़सवार सिपाही थे जिनमें पचास अँगरेज थे। उन्हें आते देखकर गंगाधरने शिवनाथको केहुनीसे इशारा किया। दोनों पासके गड्ढेमें छिप गये। उनकी देखा-देखी बहुतसे आदमी सड़कवाले पुलके नीचे छिप गये। वे सब छिप ही रहे थे कि दो-तीन आदमियोंने लपककर पासके एक गड्ढेके भीतरसे हथियार लेकर उनमें बाँट दिया। शस्त्रोंमें मुख्यतः बन्दूकें ही थीं। इस भीड़में बन्दूकोंका बँटना ड़ेविसने नहीं देखा और न उसके सिपाहियोंने। हाथमें बन्दूक आते ही गंगाधर

ने पुलिस-दफ्तरकी इमारतके बाहर खड़े सन्तरी पर गोली चलायी। बजीर अलीके साथियोंके आक्रमणके समय ही राबर्ट ग्राहम पुलिस अफसर मारा जा चुका था जिससे दफ्तरमें हलचल मच गयी थी और शेष कर्मचारी भाग खड़े हुए थे। गोली लगते ही सन्तरी जमीन पर गिर पड़ा। यह दृश्य देखकर डेविसके बंगलेके मैदानमें खड़ी सेनाके सिपाहियोंने भी जवाबमें गोलियाँ चलाना शुरू किया। देखते देखते दोनों पक्ष खुलकर लड़ने लगे। तबतक जेनरल अर्सकिन अपने घुड़सवारोंके साथ बगलसे गुजरा। पुल पार करते ही नीचे छिपे कई जवानोंने गोलियाँ चलायीं जिससे उसके अनेक सवार—पके जामुनकी भाँति चू पड़े। इस प्रकार लगभग आध घण्टेतक जमकर लड़ाई होती रही। ज्ञात होता था कि अँगरेज भाग जायँगे। विद्रोही अधिक थे और अधिकारी कम। किन्तु पैदल सेनाका एक भाग उसी बीच कुण्डा गाँवकी छावनीसे वहाँ आ पहुँचा जिससे अर्सकिन और पिगाटको बड़ी सहायता मिली। घुड़सवारोंमें अधिकांश खेत हो चुके थे और निकट था कि शिवनाथसिंह डेविसकी कोठीपर चढ़ जाता; परन्तु अब उन्हें पैदल सेनाका मुकाबला करना पड़ा जिससे कुछ ही देरमें वे शिथिल पड़ने लगे। पैदल सेनाके पास तोपखाना भी था जिसकी मारके सम्मुख खड़ा होना संभव न था। उनकी शक्ति टूटने लगी और अन्तमें उनके पाँव उखड़ गये। वे शहरकी ओर भागे। उनमेंसे बहुत भागते समय अँगरेजी-सेनाकी गोलियोंसे मारे गये और शेष इधर-उधर फुर्रसे उड़ गये।



१९

भेदिया रास्तेमें मिला

दोपहर बीत चुका था। आसमान कुछ साफ हो गया था। सूर्य कभी-कभी मेघ-खण्डोंके जालसे निकलकर संसारपर अपनी धूप फैला देते। कुछ देर तक विश्व एक दिव्य प्रकाशमें नहाता रहता, किन्तु शीघ्र ही कोई दुष्ट मेघ-खण्ड पुनः दिवाकरको अपनी ओटमें छिपा लेता जिससे वातायन मलिन हो जाता। वायु अब भी उसी गतिसे बह रही थी।

दिनमें लगभग दो बजेका समय था। वजीर अली सबेरेसे ही दौड़ते-दौड़ते थक गया था। उसने कभी युद्ध न किया था। आज जीवनमें सर्वप्रथम बार शौर्य प्रदर्शित करनेका अवसर आया था। उसे वह खोना नहीं, सफल कर यश और लाभ दोनो अर्जन करना चाहता था। उसके सलाहकारोंने उसे बताया कि शहरमें बलवा तो शुरू हो ही गया है, शीघ्र ही चलकर बेटाबरकी अङ्गरेज सेनाकी छावनीपर कब्जा कर लिया जाय। यह योजना उसे पसन्द आ गयी। अपने साथ डेढ़-दो सौ सिपाही लेकर वह मड़ुवाडीहके रास्ते बेटाबरकी ओर चला।

मील दो मील चलनेके बाद सड़कपर एक सिपाही वेगसे जाता दिखायी पड़ा। यद्यपि वह कलक्टरका खास सिपाही दीहासिंह था जिसे चिट्ठी देकर डेविसने जेनरल अर्सकिनके पास सेना भेजनेके लिए लिखा था, फिर भी उसे वजीर अली और उसके साथी पहचान न सके। कुछ तो इसलिए की उसने अपना वेष मुसलमानों जैसा बना लिया था जिससे किसीको उसपर सन्देह न हो सके और कुछ इस कारण भी कि वह स्वयं अपनेको राजा उदित नारायणसिंहका चोबदार बताता था।

'तुम्हारा नाम क्या है?'—वजीर अलीने पूछा।

'मेरा नाम? खादिमका नाम तो सरकार फरहत हुसेन है और गुलाम राजा साहब उदित नारायण सिंहका चोबदार है।'

'राजा साहबका चोबदार! तब तुम इधर क्या कर रहे थे?;

'क्या करूँ सरकार? आ रहा था घोड़ेपर। रास्तेमें अङ्गरेजी सेना-के एक सवार सिपाहीने मेरा घोड़ा मुझसे छीन लिया। पता चला कि शहरके सिकरौल मुहल्लेमें कुछ अङ्गरेज अफसर मारे गये हैं। उनकी मददके लिए पल्टन सिकरौल भेजी गयी। उसी सेनाका वह सिपाही था। क्या करता, चुप रह गया।'

'तुम्हें उस पाजीको मारना चाहिये था।'

'क्या करता गरीब परवर, अकेला जो था। मेरा घोड़ा लेकर वे सब बढ़ गये। अब मैं नवाब वजीर अलीकी खिदमतमें जा रहा हूँ।'

'नवाब वजीर अलीकी खिदमतमें जा रहे हो? क्यों?' चकित होकर वजीर अलीने पूछा।

'हमारे महाराजने उनसे पूछा है—कि उनका भावी कार्यक्रम क्या है? उनकी खुद मंशा है कि देशसे अंगरेजी हुकूमत मिट जाय।' वजीर अली इस व्यक्तिका भेद लेने आया था किन्तु स्वयं उसके जालमें फँस गया। दीहासिंहने वह गोटी फेंकी थी जिससे वजीर अली अपनी गुप्त योजनाएँ आप बता दे। यह वह युक्ति थी जिसे वजीर अलीका

अनुभव रहित और असावधान मस्तिष्क भी न भाँप सका। चाल काम कर गयी। वजीर अलीने कहा—'जब तुम राजा साहबके आदमी हो फिर क्या बात ? मैं ही हूँ····।'

'आप ही····आलम पनाह····नवाब····?' उस व्यक्तिकी आँखें विस्मय और भयसे फटने लगीं।

'हाँ, मैं ही नवाब हूँ। तुम राजा साहबके पास जाओ और उनसे मेरा पैगाम कहो।'

'हुजूर अगर एक घोड़ेका इन्तजाम करा सकें तो गुलाम इसी वक्त सरकारका हुक्म लेकर नामनगर चला जाय। जो कुछ कहना हो जहाँपनाह एक खतमें लिख दें। मैं राजा साहबको ही दे दूँगा और और वह जो जवाब लिखेंगे हुजूरकी खिदमतमें पेश कर दूँगा।'

'तब ठहरो'—वजीर अलीने कहा—और अपने एक साथीसे कहा—मियाँ, पासके गाँवसे रोशनाई और कुछ कागज तो लाओ। एक खत राजा उदित नारायणसिंहके नाम लिख दूँ। सिपाहीने सिर झुकाकर दावात-कलम लेने चला गया और कुछ ही देरमें सारी चीजें लिये चला आया। तब घोड़ेसे उतरकर कुएँकी जगतपर बैठकर वजीर अलीने राजाको पत्र लिखा—

वजीर अली खाँ की ओरसे राजा उदित नारायणसिंहको—

खुदाकी रहमत और शवाबसे बदजात चेरीकी जिन्दगी खतम हो गयी। चेरी, जिसने आपको तंग किया, मुझे बेइज्जत और परेशान किया, उसे इस्लामी सेनाके बहादुरोंने हमेशाके लिए न टूटनेवाली नींदमें सुला दिया है। आप मेरे खानदानके सच्चे व ईमानदार खानदानी सरदार रहे हैं। आपके पुरखा अपनी जान हथेलियोंपर लिए हमारे खानदानकी इज्जत, माल व जान बचानेके लिए हमेशा तैयार रहा करते थे। अब आपको अपनी तरक्कीका खयालकर उन पिछले रिश्तोंको जोड़ना चाहिये और आपसी नाता मजबूत कर लेना चाहिये। अगर हमारे मंसूबेमें आपने इमदाद की और मैं कामयाब रहा

तो सच कहता हूँ आपको वह सब इलाका उसी तरह सौंप दूँगा जैसे राजा बलवन्त सिंह और राजा चेतसिंह उनका इन्तजाम करते थे। इसलिए मैं चाहता हूँ कि मेरी खिदमतके लिए अगर आपके दिलमें तनिक भी खयाल हो तो आप फौरन अपने सिपाहियों सहित मुझसे मिलें और इस मुल्कसे अङ्गरेजोंको निकाल भगानेमें मेरी मदद करें। बनारस शहरको आनेवाली तमाम सड़कोंपर कड़ा पहरा बैठा दीजिये। साथ ही अपने सिपाहियोंको हुक्म दे दीजिये कि वे किसी भी विलायती आदमीको बनारस शहरकी हदसे न गुजरने दें। इस जातके तमाम मर्दोंको मार डाला जाय। उनपर किसी तरहका रहम करना गुनाह है। बिना मेरी इजाजत कोई गंगा पार न करने पावे। आप आज रात जरूर मिलें, कबीरचौरावाले माधव स्वामीके बागमें—
वजीर अली।

पत्र लिखकर वजीर अलीने अपनी अंगूठीकी मुहर उसपर लगायी और उसे उस व्यक्तिके हवाले कर दिया जिसने अपना नाम फरहत अली और अपनेको राजा बनारसका चोबदार बताया था। फिर अपने सहायक इज्जत अलीसे उसने कहा—'इन्हें एक घोड़ा अभी दिलवा दो जिससे वह रामनगर चला जाय।'

इज्जतने साथ ही के एक सिपाहीसे उसका घोड़ा ले लिया। उसे लेकर उस अपरिचितके हवाले करता हुआ बोला—'अब तुम सीधे इसी तिरछे रास्ते निकलो और गंगा पार कर रामनगर पहुँचो। हम तुम्हारी कामयाबीका इन्तजार करते रहेंगे।

'खुदा हाफ़िज़।' कहकर अपरिचित व्यक्तिने वजीर अलीको बड़े आदर-सम्मानसे फर्शी सलाम किया और उछलकर घोड़ेपर जा चढ़ा। बैठते ही उसने घोड़ेको एड़ लगायी। घोड़ा हवासे बातें करता हुआ पल भरमें दूर चला गया। वजीर अलीको पता भी न चला कि यह चोबदार जासूस था और डेविसका खास आदमी दीहासिंह था।

वजीर अली अपने साथियों सहित बेटाबर छावनीकी ओर बढ़ा

और दीहासिंह रास्ता बदलकर सिकरौल आया। उसने वजीर अलीका पत्र कलक्टर डेविसको दे दिया।

वजीर अली जब छावनीमें पहुँचा, उसके आगमनका समाचार सुनते ही वहाँ भगदड़ मच गयी। छावनीमें इस समय बहुत कम आदमी बचे थे; अङ्गरेज कोई था नहीं। हिन्दुस्तानी सिपाही थे, वे अपनी जान बचानेके लिए आसपासके गाँवोंमें जा छिपे। वजीर अलीने छावनी लूट ली और ढिंढोरा पीटकर उसने अपनेको नवाब बादशाह होनेकी घोषणा करानी आरम्भ कर दी।



२०

महल ढह गया

दो दिनों तक जिले और शहरके आसपासमें लूट, हत्या- अग्नि-काण्ड और विद्रोहके दूसरे रूपोंकी ज्वाला वेगसे धधकती रही। वजीर अलीने अपनेको बादशाह घोषित कर दिया था। आसपासके असंतुष्ट बाबू, जमींदार और अन्य सरदार जुटने लगे थे। विद्रोहियोंका एक अखाड़ा जौनपुरसे बनारस आनेवाली सड़क पर पिंडरामें था और दूसरा शहरके दक्षिण चितईपुरमें। राजा उदितनारायण सिंहकी प्रतीक्षा रातभर होती रही, परन्तु वह न आये। उन्हें मालूम ही कैसे होता जब कि पत्र डेविसके हवाले जा चुका था। हाँ, राजाके अनेक सरदार और बान्धव संगठित हो विदेशी शासनका जुआ उतार फेंकनेके लिए सन्नद्ध हो शहरमें आ जुटे थे।

जगतसिंहके आदमी चारों ओर दौड़ रहे थे। उन्होंने आस-पासके क्षेत्रके सभी शक्ति-सम्पन्न लोगोंको एकत्र किया। परन्तु हाथीके शरीर पर दस-पाँच मच्छरोंके काटनेसे होता ही क्या है? भारतवर्ष जैसे विशाल देशसे किसी राज्य शक्तिको निर्मूल कर देनेके लिए जिस व्यापक विद्रोहकी आशा की जा रही थी और जिसके लिए लोगोंने

वादे भी किये थे, वह न हो सका। न तो ढाकाके नवाबके भाई ही पहुँच सके और न बनारस के पड़ोसी जिलोंने ही बगावतका झगड़ा खड़ा किया। परिणामतः स्वतंत्रताकी आग धीरे-धीरे ठण्ढी पड़ने लगी।

अराजकताका तीसरा दिन था। वजीर अली अपनी कोठीमें बैठा मित्रोंसे परामर्श कर रहा था। किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँच पानेके कारण वह उठ गया। वास्तवमें बहुत थक गया था। जितना शिथिल उसका शरीर था, मन भी कुछ कम बोझिल न था। बगावतको आज तीन दिन हो चुके, लेकिन न तो कहीं अन्यत्र ही कोई विद्रोह हुआ और न बाहरसे कोई सहायता ही आयी। अकेले भूमिहारोंके बल पर, और वह भी बनारस शहरकी सीमामें ही बँधे रहकर उद्देश्य सिद्धि हो नहीं सकती। इसी चिन्तामें चूर हो उठ गया वह। सीधा ऊपर अपने कमरेमें चला गया और पलंग पर लेट रहा। आँखें कमरेकी छत पर नाचने लगीं। मन अनजान प्रदेशके असीम क्षेत्रमें व्याकुलभूत-सा भागने लगा था।

गौहरने उसकी यह हालत देखी तो वहाँ चली गयी। कमरेमें कोई न था। वह वजीर अलीके पलंग पर जा बैठी। उसकी इस दशासे ही गौहरने भाँप लिया कि आसार अच्छे नहीं, सफलताकी कोई आशा नहीं। किन्तु यह विचार सामान्य न था, इसके बादकी दुनिया और भी अन्धेरी थी। जिसके दिन अत्यन्त कष्टोंसे और रातें हाहाकारकी वेदनासे भरी थीं। कम्पनी सरकार बागियोंको कुचलनेका पूरा बन्दोबस्त करेगी। पकड़ लेने पर न जाने क्या-क्या सजाएँ दे। पेंशन जब्त होगी अलगसे! एक साथ दुश्चिन्ताओंका दल आकाशमें उठती सावन मासकी मेघ-घटाके समान मन पर छा गया। उसने अपनी हथेलियोंसे वजीर अलीका मस्तक छूआ, देह धधक रही थी। वजीर अली अचेत-सा पड़ा था। वास्तवमें इन तीन दिनोंकी कठोर साधनामें वह जर्जर हो रहा था। उसका सुकोमल शरीर आराम और विलासमें पला था। युद्धकी ज्वालामें झुलसना और घोड़ोंकी

पीठ पर बैठे बैठे संकटोंका व्यापार करना वह जानता न था। लखनऊमें उसने केवल रूपकी साधनाकी थी। बनारसमें आकर यहाँके विद्रोही वातावरणमें उसने स्वस्थ जीवनकी सरल साँस लेनी चाही, परन्तु उसके जैसे अनुभवशून्य, उद्धत, और विलासी युवकके लिए राज्यसत्ता वैसे ही अप्राप्य थी जैसे नपुंसकके लिए रतिकी सुखद अनुभूति।

'कैसी तबियत है?—गौहरने पूछा?

वजीर अलीने कुछ उत्तर न दिया। चुपचाप छतकी ओर ताकता रहा। गौहरने दो-तीन बार उसे पुकारा, बालों पर हाथ फेरा किन्तु वजीर अली उसी प्रकार चिन्ताओंके अगाध जलमें डूब-उतरा रहा था।

'मुझसे कहते क्यों नहीं? इतने निराश क्यों हो रहे हैं?'—गौहरने फिर पूछा। 'एँ क्या कहा? अब क्या होगा?' डूबते हुए वजीर अलीने कहा। उसके स्वरमें निराशाका चरम भाव भरा था।

'क्यों, आप घबरायें नहीं। खुदाकी रहमत पर यकीन करें। वह सब अच्छा करेगा। अच्छे कामका अन्त हमेशा अच्छा होता है।' गौहरने यद्यपि उसे समझाकर शान्त करना चाहा, परन्तु अपने ही उत्तरसे उसके हृदयमें छिपा हुआ सन्देह जागकर मचलने लगा—'अब क्या होगा?'

'जगतसिंहकी ताकत ही क्या है? चींटीको जब चाहे मसल दो। उसके काटनेसे होता ही क्या है? थोड़ेसे आदमियोंके बल पर कम्पनी जैसे पहाड़को खदेड़ना तो दूर, हिलाया भी नहीं जा सकता'—वजीर अली बुदबुदाने लगा। अन्धकारमय भविष्य आँखोंके सामने नाचने लगा जिसमें न जाने कितने अज्ञात विद्रोही नवाबों और राजाओंके कराहते स्वर अँतड़ियाँ चटखनेकी आवाजें, उनके भूख प्याससे तड़पती स्त्रियोंके हाहाकार और फिर दम तोड़ते बच्चोंकी आखिरी साँसका झटका,—सब कुछ साफ सुनायी पड़ने लगा। डरकर उसने आँख मूँद लीं।

गौहरने वजीरको इतना परेशान और चिन्तित कभी न देखा था। उसे प्रसन्न कर उसका मन दूसरी ओर फेरनेके विचारसे अपनी बाहें उसके गलेमें डालकर उसके वक्षस्थल पर झुक गयी। किन्तु आज वजीरमें न तो वह कम्पन था, न वह उल्लास जिससे प्रेरित हो वह गौहरके मादक कपोलों पर चुम्बनोंकी झड़ी लगा देता, आलिंगन पासमें आबद्धकर उसके केशोंको हाथोंमें लेकर उसकी स्निग्धताकी प्रशंसा करता। आज उसकी समस्त भावुकता सत्यके भीषण स्वरूपको निहार काँपकर छिप चुकी थी। गौहरकी आशाएँ निष्फल रहीं।

डेविसने कानपुर, लखनऊ और पटनासे फौजें मँगवायी हैं। दो-ही चार दिनोंमें उनकी सेनाएँ यहाँ आ धमकेंगी। लेकिन मेरे पास क्या है? ये भाड़ेके आदमी कब तक उनका सामना कर सकेंगे? वजीर अलीका दुर्बल मन अपनी ही भीरुतासे असंख्य ताने-बाने उलझाने लगा।

उसकी बेगम इधर बहुत उदास रहा करती थी। लखनऊसे बनारस आकर उसने हमेशा पतिको यही सलाह दी कि जो कुछ पेंशन मिल रही है, उसी पर गुजर कर लो। अंग्रेजोंसे लड़नेका वक्त नहीं है। किन्तु गौहर और उसके भाईने मिलकर वजीर अलीके असन्तोषको विद्रोहका जामा पहना ही दिया। वास्तवमें महत्त्वाकांक्षासे अभिभूत भाई-बहनोंमें राजनीतिक दूरदर्शिताका अभाव था जो वजीर अलीको भीषण आँधी-पानीमें नाव पर चढ़ाकर बीच धारमें ले डूबी। अब इस भयानक विपत्तिसे बच निकलना वजीर अलीके लिए असंभव दिखायी पड़ रहा था। दोनों प्रेमी पलंग पर अचेत पड़े ही थे कि बेगमने कमरेमें प्रवेश किया। गौहरको पतिके पलंग पर आसीन और उनके वक्ष पर झुकी देखकर उसकी आँखोंसे चिनगारियाँ छूटने लगीं। मनका क्रोध उबलकर फूट पड़ना चाहता था किन्तु उसे दबाकर उसने पूछा—'अब क्या कराने पर लगी हो? जो रोटी मिल रही है, उसे भी छिनवा लेना चाहती हो?'

बेगमके वाग्बाण असह्य हो गये। गौहर तिलमिला उठी। बेगम सदासे

ही उसका तिरस्कार, भर्त्सना और अपमान करती आयी थी जिसे दरिद्र-की कन्याने सहनकर, सपत्नी ईर्ष्याका विष पीकर भी मौन साधना की थी। आज जब समस्त विपत्तिका मूल उसे ही मानकर बेगमने अपना सहज द्वेष उतारना चाहा तब भी उसका दुर्बल नारी-हृदय संयत ही रहा। वातावरणको सरल बनानेके लिए मुस्कुराती हुई बोली—'आपको हर वक्त रोटयोंकी ही चिन्ता रहती है।' उसकी मुस्काननने गंभीर मेघ-मालामें मानो बिजली चौंका दी, किन्तु इसी बिजलीने बेगमका दिल झकझोर डाला—'ओः हो! बापके पास कितनी बड़ी जागीर है जो तुम्हें रोटियोंकी फिक्र नहीं। छोटे मुँह बड़ी बात।'

गौहर स्तब्ध रह गयी। फटी-फटी आँखोंसे सौतको चुपचाप निहारती रह गयी। इस प्रहारका क्या उत्तर दे? कुछ समझमें नहीं आया। किस अधिकारसे उत्तर दे? आह! प्रणयका सूत्र कितना हल्का और सुकुमार है। उसपर स्त्रीका स्वर्ग टिक सकता है किन्तु संसार नहीं, क्योंकि स्वर्ग पुण्यका और संसार अधिकारका क्षेत्र है। फिर आँखें मूँदे निश्चेष्ट वजीर अलीकी ओर देखा जिसने दोनों स्त्रियोंको देखते ही विपदकी आशंकासे उसी प्रकार आँखें बन्द कर लीं थीं जैसे आँधीके बीच रेगिस्तानका पक्षी।

सहसा बगीचेके बाहर सड़कपर जोरोंकी आवाज सुनायी पड़ी। बेगमने खिड़कीके पास खड़े होकर चिककी आड़से देखा, सड़कपर कुछ आदमी हाथमें हथियार लिये भागे चले जा रहे थे। वे कहीं ठहरे नहीं और न भीतर बगीचेमें आये। जैसे किसी भयसे वे भाग रहे थे। तब क्या कोई इन्हें खदेड़ रहा है? वह चुपचाप कुछ देर तक इसी प्रकार खिड़कीकी आड़में खड़ी बाहरका सन्नाटा देखती रही। वजीर अलीने रोगीकी भाँति कराहते हुए पूछा—'कौन गया है? यह कैसा हल्ला था?'

'कुछ सिपाही पश्चिमकी ओरसे भागते आये हैं और पूरबकी ओर गये हैं।'—बेगमने उत्तर दिया। कमरेमें फिर शान्ति छा गयी। सब मौन हो गये।

अभी इस घटनाको कुछ ही देर बीती थी कि कोलाहल फिर बढ़ा। इस बार हल्ला अधिक गंभीर था। बेगम और गौहर दोनों दो खिड़कियोंके पल्लोंकी आड़में खड़ी हो गयीं। देखा—हिन्दुस्तानी सिपाहियोंका दूसरा दल बेगसे भागता आया और पहले दलकी ही भाँति पूरबकी ओर भागा। इस बार आदमी ज्यादा थे, फिर भी वे बेतहाशा भाग रहे थे। अभी उनके जाते दो-चार क्षण भी न बीते थे कि कुछ अंग्रेज घोड़ोंपर सवार बन्दूकें लिये दिखायी पड़े। उन सबके हाथोंमें बन्दूकें थीं। वास्तवमें वे अंगरेजी सेनाके अफसर जेनरल असंकिनके सहायक मेजर पिगाट और उनके सिपाही थे। जो बागियों को खदेड़ रहे थे। माधव स्वामीके बागके फाटकपर आकर वे रुक गये।

'बदमाशोंके सरदारका यही घर है। हमें पहले यहीं निपट लेना चाहिये।' कहकर सबके आगे लाल मुँहवाले घुड़सवारोंने, जो स्वयं मेजर पिगाट था, गोली चलायी जो फाटकपर तैनात सन्तरीको लगी। गोलीकी आवाज सुनकर हल्ला मचा। नीचे वजीर अलीके अंग रक्षक सिपाही सजग हुए और अपनी बन्दूकें उठाकर वे भी इधर-उधर लुक-छिपकर बन्दूकें चलाने लगे। अंगरेजी सिपाही पहले से ही तैयार थे। देखते देखते गोलियोंकी बौछार होने लगी।

वजीर अली बड़बड़ाया। गौहरने उसकी ओर देखा और अचानक मनमें कुछ संकल्प कर नवाबकी बन्दूक उठा ली उसने। कारतूस चढ़ाकर गोली लगायी और खिड़कीमें से सिर निकालकर नीचे निशाना साधा। गोली छूटते ही नीचे एक अंगरेज सिपाही कटे वृक्ष-सा घोड़ेपरसे गिर पड़ा। अब गौहरने खिड़कीके दोनों पल्ले खोल दिये और चिक उठा दिया। सिर निकालकर वह बिलकुल सामने आ गयी और तान-तानकर गोलियाँ चलाने लगीं। खिड़कीसे गोलियाँ आते पहले तो किसीने न देखा, परन्तु यह कबतक छिप सकता था। शीघ्र ही एक गोली नीचेसे छूटी जो उसकी कनपटी को छूती हुई निकल गयी। वजीरअली घबराया। उसने दूसरी बन्दूक उठा ली और कूदकर नीचे आया। उसका रूप भयंकर हो गया था मानो मृत्यु उसके मुख मंडलपर

नाचने लगी थी। विकट स्वरमें गरजता हुआ नीचे फाटकपर चला गया और सिपाहियोंमें मिलकर गोलियाँ चलाने लगा। पिगाटने दूसरी गोली भरी और निशाना साधकर मारा। अबकी बार गोली ठीक लक्ष्यपर लगी और गौहरका मस्तक पारकर निकल गयी। आहत गौहर रक्तकी टपकती बूँदोंमें नहाती हुई गिर पड़ी। बेगमने उसकी यह दशा देखी तो दौड़कर सँभाला। गरीबकी कन्याने रोटीका मूल्य चुका दिया था। अब बेगमका नारी हृदय अपनी सहज दया और सहानुभूति छिपा न सका। वह उच्च स्वरमें फूट पड़ी।

नीचे कुछ देर तक गोलियाँ चलती रहीं। दोनों पक्षके काफी आदमी खेत रहे। जब अङ्गरेज घुड़सवार थोड़ेसे शेष रह गये तब वे जिधरसे आये थे उसी राह भाग गये। क्षणभरमें ही वजीर अलीकी कोठी गौहरकी करुण स्मृतिके विलापमें डूब गया। किन्तु रोनेका अवसर न था। अङ्गरेज फिर किसी भी समय आ सकते थे। वजीर अलीने गौहरके शवका अन्तिम संस्कार करनेके लिए प्रबन्ध किया और उसे पास ही के एक कब्रिस्तानमें नयी कब्र खोदकर गाड़ दिया गया। टूटे हृदयकी वेदना साँसोंमें छिपाकर वह लौट आया।

इज्जत अलीकी समस्त कामनाएँ ढह गयीं। उसका स्वप्नका संसार गौहरकी ही आशापर टिका था। यदि वजीर अली अपनी योजनामें सफल हो जाता तो गौहर उसकी बेगम होती। तब इज्जतको अवश्य अवधकी कोई बड़ी जागीर और ओहदा मिलता। परन्तु हे परमात्मा! तुम्हारी इस लीलाका रहस्य क्या है? जब नाव लक्ष्यकी ओर बढ़ने लगी—तब उसे अचानक डुबाकर तुमने किस दया का विधान रचा?

वजीर अलीने एक आदमी जगतसिंहकी कोठी पर भेजा कि शाम होनेके पहले ही ज्यादा से ज्यादा आदमी तैयार कर यहाँ भेज दें क्योंकि अङ्गरेज रातमें बागपर हमला कर सकते थे। सिपाही जगतगंज गया और उसने जगतसिंहसे नवाबकी बातें कहीं। जगतसिंहने शिवनाथ सिंहको अपना दल लेकर जानेकी आज्ञा दे दी। केवल गंगाधरको अपने पास रख लिया।

शाम होते ही वजीरअलीकी कोठीपर आदमियोंका जमाव होने लगा। सबको हथियार दे दिये गये। बगीचेके पीछे हिन्दुओं और बाहर मुसलमान सिपाहियोंका भोजन बनने लगा। पता नहीं अङ्गरेज कब आ धमकें। प्रतीक्षामें रात आँखोंमें ही कट गयी। सवेरा हुआ। सिपाही फिर स्नान-ध्यानमें लगे। अभी वे जलपान कर ही रहे थे कि अङ्गरेजी सेना आती दिखायी दी। इस बार यह पैदल सेना भी सेनाके आगे-आगे तोपखाना भी था। जिसमें तीन-तीन तोपें थीं। इस सेनाने आकर बागको घेर लिया परन्तु वे केवल बाग के फाटकपर ही छितराये रह गये। तोपखाना फाटकके सामने खड़ा कर दिया गया और तोपोंका मुँह कोठीकी मीनारों और दीवालकी ओर।

वजीरअलीने यह सारा दृश्य देखा। उसने इस दृश्यकी परिणतिका भी अन्दाज लगा लिया। तोपोंके सामने वह और उसके सिपाही कबतक टिक सकते थे। अब केवल मरना भर शेष था। उसने अपने आदमियों को बुलाकर सारी स्थिति समझा दी और कहा—मरना हर हालतमें है और मरनेसे हमें डरना न चाहिये। किन्तु अगर थोड़ी हिम्मत करो तो हम न केवल मरनेसे बच जायँगे बल्कि हारी बाजी फिर हमारे हाथ आ जायगी और हम फिर जीत सकते हैं। करना केवल इतना है कि कुछ आदमी कोठीकी छतपर चले जाँय और वहाँसे छिपकर वे तोपचियोंको गोली मारें। इधर नीचेसे कुछ आदमी बढ़कर तोपें छीन लें। फिर तो हमारी फतह है।'

योजना बड़ी सुन्दर थी। सबने सम्मति प्रकट की। परन्तु नीचे जाकर तोपें छीननेपर कोई तैयार न होता था, सभी ऊपर छतपर जाकर बन्दूक चलाना चाहते थे। अन्तमें वजीरअली खुद नीचे उतरा। उसकी देखा-देखी अनेक सिपाही नीचे उतरकर फाटकपर जमा हो गये। देखते-देखते युद्ध आरंभ हो गया।

कुछ बन्दूकचियोंने ऊपरसे गोलियाँ चलाकर दो-एक तोपची मारे भी, किन्तु इससे विशेष लाभ न हुआ। तोपोंके छूटते ही वजीरअलीके

सिपाही बालूके कणोंकी भाँति बिखर गये। कुछ ही देरमें कोठीकी दीवारें गिरने लगीं।

अब भीतर ठहरना खतरनाक था। नबाबके बूढ़े स्वामिभक्त सेवकोंने वजीरअलीके परिवारकी स्त्रियोंको कोठीके बाहर निकाला और पीछेके रास्तेसे छिपाकर गलियों ही गलियोंमें दूसरे स्थान पर पहुंचा दिया। जब कोठीका अगला भाग पूरी तरह भूमिसात् हो गया तो अँगरेज सेना भीतर घुसी। कोठीके फाटक पर लड़ते हुए सिपाही जान लेकर भाग खड़े हुए। सड़कपर सिवा लाशोंकी ढेर, घायल तड़पते हुए सिपाहियोंका पुंज और कम्पनीके जीवित सिपाहियोंके अतिरिक्त कोई न था।

विजयी सेना बागमें घुसी। भीतर कोठीमें सन्नाटा छा गया था। अंगरेज अफसरोंने वजीरअली और उसके साथियोंको ढूँढा, परन्तु उनकी कहीं गन्ध न मिली। कुछ देर पूर्व तक तो वे बागके फाटकपर लड़ रहे थे, तब क्या वे वहीं गिरकर मर गये? कोठीका कोना-कोना छान डाला गया, परन्तु न तो वजीरअली मिला, न उसके परिवारकी स्त्रियाँ और न उसके साथी।

रक्तरंजित कोठीपर कब्जा कर और अपने सिपाही पहरेपर तैनात कर कम्पनीकी सेना वापस लौट गयी।



२१

विषपान और समुद्र-समाधि

दिनभर तो शान्ति रही। शहरमें भी कोई वारदात न हुई। हाँ, देहातोंमें कम्पनीकी सत्ताका समूलोच्छेदन करनेके लिए बाबुओंका दल सक्रिय था। रात होते ही जगतसिंहने अपने आदमी भेजकर नवाबकी कोठीपर अधिकार करा लिया। जो सिपाही पहरेपर था, उसे उन लोगोंने मार डाला और वहाँ अपना सन्तरी खड़ा कर दिया। भीतर कोठीमें स्वतंत्रताके पुजारियोंने शरण ली। दो दिनोंतक शिवनाथसिंह अपने दलके साथ इस भवनमें टिका रहा। तीसरे दिन अँगरेजी सेनाके एक दस्तेसे लड़कर वह पराजित हुआ और शहरमें भाग निकला।

अब स्वतंत्रताके युद्धमें भाग लेनेवाले वीरोंकी खोज शुरू हुई। उन्हें कम्पनी बहादुरकी सत्ताके विरुद्ध विप्लव करनेका आरोप लगाकर अपराधी बताया गया। नगरकी पुलिस उनकी टोहमें लग गयी। ऐसे लोगोंमें भंगड़, भिक्षुक, शिवनाथसिंह, बहादुरसिंह, भवानीशङ्करसिंह उसका बेटा और अन्य लोग थे। चारों ओर जासूस छुटे, किन्तु उनका पता न लगा। पुलिसको खबर लगी कि वे जगतसिंहके आश्रयमें कहीं छिपे हैं। तलाश जारी रही।

शान्ति होते ही कचहरीमें अफसरोंकी बैठक हुई। मुगल साम्राज्ञी कुतलक सुलतानबेगमने अपने दोनों बेटोंको भेजकर डेविसके प्रति सहानुभूति दिखायी और अपनी मैत्रीका प्रमाण दिया। रामनगरके राजा उदितनारायणसिंहने भी अपनी निष्कपटता जाहिर की और बताया कि इधर तो वह चार-पाँच दिनोंसे शाहाबादके जंगलोंमें शिकार खेलने चले गये थे। वहीं उन्हें पता चला तो वह भागे-भागे आये। राज्यमें स्वामिभक्त सामन्तोंकी कमी न थी। उनकी सहायतासे अपराधी पकड़े जाने लगे। निश्चय हुआ कि सबसे पहले जगतसिंहको पकड़ लिया जाय क्योंकि वजीरअलीके बाद वही सबसे खतरनाक व्यक्ति है। इस निर्णयका ज्ञान वायुको भी न हुआ; देखते-देखते एक हलकी सेना लेकर डेविस जगतगंज जा पहुँचा।

दिनमें लगभग दो बजेका समय था। जगतसिंह अपने दीवानखाने में दुशाला ओढ़े फर्शी पी रहे थे। बाहर नौकर-चाकर अपना काम कर रहे थे। कचहरीमें बैठे मुनीमजी अपनी बहियाँ भर रहे थे कि अचानक गंजके फाटकके भीतर कम्पनीकी सेनाके सिपाही घुस आये। उन्हें देखकर जगतसिंह चकराये। उनका माथा ठनका। शत्रुका उद्देश्य समझते उन्हें देर न लगी। आज कई दिनोंसे वह बनारस छोड़ कहीं चले जानेकी सोच रहे थे। आलस्यवश न गये; आज पुलिस आ ही गयी। अब उन्हें अग्नि-परीक्षा देनी होगी।

डेविसको देखते ही वह उठे। सलाम कर उसे बैठाया। जब वह बैठ गया तो बोला—'वेल ठाकुर साहब, आप तो अच्छी तरह जानते हैं कि नवाब वजीरअलीकी मूर्खताभरी शरारतसे कम्पनीकी अमलदारीमें कितनी अराजकता और अशान्ति फैली? इससे कितना नुकसान हुआ। कितने आदमी मारे गये। तब भी वह बदमाश भाग निकला; वह माफी माँग लेता, हम उसे छोड़ देते। लेकिन भागकर उसने और भी बुरा किया।'

जगतसिंह समझ न सके, क्या उत्तर दिया जाय। चुपचाप उसकी ओर देखते रहे। डेविस फिर बोला—'पता चला है कि यह घटना

पूर्व नियोजित थी। इसके लिए महीनों पहलेसे तैयारियाँ होती रहीं। क्यों ठाकुरसाहब, क्या विचार है आपका ?।

'मैं क्या कह सकता हूं साहब। मैं तो अपना घर छोड़कर कहीं गया नहीं।'

'मगर मुझे पता चला है कि बलवेका समस्त सूत्र-संचालन आपकी ही बुद्धि द्वारा होता था।' जगतसिंह स्तब्ध रह गये। बात सही थी, किन्तु अब उसे छिपाना ही श्रेयस्कर था। उन्हें चुप देखकर डेविस बोला—बहुतसे कागज पत्र पकड़ गये हैं। उनसे सारा भेद खुल गया है।'

जगतसिंह ताड़ गये कि यह सब भूमिका इसलिए थी कि वह अपना रहस्य उगल दें। पर वह कच्चे खिलाड़ी न थे। जब डेविसने उन्हें अच्छी तरह हिलाकर देख लिया कि यह व्यक्ति सहज ही खुलनेका नहीं तब उसने कोठीकी तलाशी लेनेका हुक्म देते हुए कहा—'हमने समझा था ठाकुर साहब कि आप कम्पनीके विश्वासपात्र हैं। आपने जो दरख्वास्तें अपनी जागीर वापस करनेके मुतल्लिक कम्पनी को लिखी थीं, उनके आधारपर हम आपको अपना दोस्त समझ रहे थे।'

'हम तो आपकी दोस्तीके आज भी इच्छुक हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे पहले थे। अब हममें क्या हो गया है जिससे आपके मनमें सन्देह होता है।'

'फिर बताऊँगा, सबूतके साथ, इस समय तो हम आपकी कोठीकी तलाशी लेने आये हैं। आप हमारी हिरासतमें अपनेको समझें।

जगतसिंहका नैराश्य उच्छ्वास बनकर निकल पड़ा। शरीर थरथरा उठा। दो सिपाहियोंने उन्हें बाँध लिया और हाथोंमें हथकड़ी लगा दी। शेष सिपाही कोठीमें घुस गये। उनके सिपाहियोंने जनानखानेके दरवाजों पर खड़े होकर प्रार्थना की कि जनानी कोठियोंमें न जाया जाय। परन्तु सिपाही क्यों मानने के। उन्होंने कहा—'पर्दानशीन औरतोंको हटवा दो। हम भीतर भी तलाशी लेंगे।' घंटों तक तलाशी होती रही।

अन्तमें एक गाड़ी कागजात लादकर और जगतसिंहको गिरफ्तारकर पुलिस अपने साथ ले गयी। उनके जाते ही कोठीसे स्त्रियोंका रुदन निकलकर वातायनमें फैलने लगा।

उसके बाद जगतसिंह फिर कभी अपनी हवेली में न लौट सके। केवल आ सका उनका समाचार।

'क्या खबर है मुन्शीजी?' लक्ष्मीनारायणने पूछा जो अब स्थितिकी गुरुता समझने लगा था।

'क्या बताऊँ कुँवर साहब! लगता है अब हमारे दुर्भाग्यके दिन आ गये। कचहरीमें मुकदमा चलाया जा रहा है। तमाम बलवाइयोंपर राजद्रोहका जुर्म लगाकर सजा कर देते हैं।' जगतसिंहके मुनीम मुन्शी सीतारामने कहा—और मुकदमेंका समस्त विवरण विस्तारपूर्वक समझा दिया। सुनतेही घरमें स्त्रियाँ सिर धुनने लगीं।

हफ्तेभरमें ही फैसला हो गया। जगतसिंह और चितईपुरके भवानी शंकरसिंहको आम जनताको उपद्रवके लिए भड़कानेके आरोपमें अपराधी सिद्ध किया गया और उन्हें विद्रोहियोंका सरगना मानकर फाँसीकी सजा सुनायी गयी।

दूसरे दिन भवानीशंकर और उसके बेटे शिवदेवको फाँसी दे दी गयी। फाँसीपर चढ़ते समय यद्यपि देखनेवाले रो रहे थे, परन्तु वे मुस्कुरा रहे थे—'रोते क्यों हो भइया?—भवानीशंकरने कहा—हमारे बलिदानका फल व्यर्थ न जायगा। हिन्दुस्तानकी भूमि खूनकी प्यासी रहती आयी है। इसे अपने रक्तसे सींचना पड़ता है, तब इससे स्वाधीनता और धर्मके फूल फूलते हैं। हम तो इस फूलकी सुवास लेनेके लिए नहीं रह जायेंगे, परन्तु तुम लोग उसे देखना, उसका आनन्द लेना। हमारी आत्मा स्वर्गसे तुम्हारा सुख देखकर प्रसन्न होगी।'

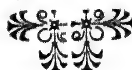
जल्लादोंने फन्दा खींचा और ढील दिया। क्षणभरमें साँसोंका बाजार उठ गया।

जगतसिंहको फांसी दो दिनों बाद होनेवाली थी; किन्तु राजवंशका

आदमी होनेसे राजा उदितनारायणने उनके लिए सिफारिश की। सजा घटा दी गयी। फांसीका दण्ड देश निष्कासनकी सजामें बदल गया। अगले सप्ताह वह नाव द्वारा कालेपानीके लिए रवाना कर दिये गये। गंगाकी धारापर लहराती हुई नावकी छतपर बँधे उन्हें हजारों स्त्री-पुरुषों ने देखा; अपने दुपट्टे और आंचलसे बहते हुए आंसुओंको पोंछ लिया।

अगले ही मास लौटती खबरों द्वारा मालूम हुआ कि स्वदेश-त्याग, परदेश-गमन, धर्म-पतन तथा म्लेच्छ-स्पर्शके भयसे गंगासागरके तटपर जगतसिंहने विष खा लिया। अंगरेज सिपाहियोंने उनकी लाश उठाकर समुद्रमें फेंक दी।

सुनकर काशीवासियोंने कलेजेपर पत्थर रख लिया। बँधी हुई भुजाएँ फड़कीं, किन्तु बन्धनमें हिल-डुलकर फिर शान्त हो रहीं।



२२

शिवनाथ सिंह-बहादुर सिंहका बना खूब जोड़ा

जगतसिंहके देश-निकाला होते ही भूमिहार सरदारोंमें आतङ्कवश शान्ति छा गयी। दूसरे दिन खबर मिली कि जिलेके तमाम कोटों और डीहोंपर पहरा बैठा दिया गया है; धर-पकड़ जारी हो गयी। तोपखानेके साथ एक टुकड़ी पैदल सेना और सौ घुड़सवार पिण्डरा भेजे गये। दो-तीन दिनोंके झंझटके बाद कोट खाली हो गया। बाबुओंने घुटने टेक दिये। स्थान-स्थानपर तलाशियों और गिरफ्तारियोंका बाजार गरम रहता। जो तनिक भी अकड़ता उसका उत्तर संगीनकी नोकों और किर्चसे दिया जाता। फाँसीके फन्दे हर गाँवमें लटकते दिखायी पड़ते।

बाहर शान्ति छा गयी, किन्तु शहरके पक्के महल्लोंमें अब भी कुछ न कुछ आग शेष थी। ब्रह्मनाल मुहल्लेमें शिवनाथ सिंहके घरके आसपास कोतवालीके सिपाहियोंको भी जानेका साहस न होता। दिन-दहाड़े वहाँ कम्पनीके सैनिक और सिपाही मार डाले जाते थे। अन्तमें जब कोतवाल फैयाज अली खाँ उन्हें गिरफ्तार करनेमें असमर्थ हो गया तो पल्टनसे मिर्जा पाँचूको भेजा गया। मिर्जा पाँचू पल्टनका नायब

सूबेदार था। उसे मददमें पाँच सौ जवान दिये गये जिन्हें लेकर वह ब्रह्मनाल मुहल्लेमें घुसा।

नीलकण्ठ महादेवसे जो संकीर्ण रास्ता उतरकर वाराह भगवान वाली गलीसे होता ब्रह्मनालकी ओर जाता है, वहीं नेपाली खपड़ाकी ओरसे भी एक पतली गली सीधी आती है। इन्हीं दोनों गलियोंकी नुक्कड़से दस कदमपर शिवनाथ सिंहका घर था। उसके शत्रुओं और पुलिसके दलालोंने शोर कर रखा था कि वे भाड़ेके हत्यारे हैं। यही नहीं दिन-रात जुआ खेलाकर नालका पैसा उतारना इनका पेशा है। पर मुहल्लेवाले जानते थे कि शिकायत करनेवालोंमें केवल वे ही थे जो पुलिसके गुप्तचर थे और अफसरोंकी एकान्त कामनाको तृप्त करनेमें ही अपना अहोभाग्य समझते थे।

पाँचू ठीक सात बजे सबेरे पहुँचा। गलीमें नहाकर आने-जाने वाली बूढ़ी महिलाओं और गंगा-जल भरनेवाले कहारोंमें आतङ्क छा गया। सब जान लेकर भागे। पहले तो पाँचूने शिवनाथ सिंहका दरवाजा खटखटाया। परन्तु दरवाजा लोहेका था और मजबूतीके साथ भीतरसे बन्द था। जब कोई उपाय कारगर न हुआ तो उसने सीढ़ी मँगायी; सिपाही उसपर चढ़कर मकानमें उतरने लगे। जब कुछ सिपाही सीढ़ियोंसे ऊपर चढ़ चुके तो आसपास के घरोंकी खिड़कियोंसे कुछ लम्बे बाँस निकल आये, जैसे उन्हें कोई भीतर बैठा मारनेके लिए निकाले हो। बाँसोंकी मारसे पाँचूके सिपाही सीढ़ीपरसे गिरने लगे। हताश हो वे नीचे उतर आये।

कुछ देर इसी प्रकार बीता। पाँचू नीचे खड़ा भद्दी गालियाँ और अपशब्द कहने लगा—'अरे ओ गीदड़ो, मर्द हो तो बाहर निकल आओ।' उसके ललकारनेपर ऊपर दूसरी मंजिलकी खिड़की खुली और एक-एककर दो मर्द नीचे कूद पड़े। वे शिवनाथसिंह और बहादुरसिंह थे।

मृत्युका बाजार लग चुका था। दोनों मित्रोंके हाथोंमें उनकी चिरसंगिनी तलवारें थीं जिनके कारण वह प्रख्यात थे। कुछ क्षणोंके

लिए मिर्जा पाँचूके दलमें सनसनी छा गयी। उसके सिपाही दहल उठे, केवल दो वीरोंने उनमेंसे दर्जनोंको बातकी बातमें मूलीकी तरह काट डाला। छपाछप तलवारें चल रही थीं। गलीमें लाशोंपर लाशें गिर रही थीं। रक्तसे गलीके पत्थर रंगीन हो गये थे। पाँचूके सिपाहियोंने भी जी तोड़कर प्रयास किया, पर वे पकड़े न जा सके। वे जिधर जाते थे, हाय-हाय मच जाती थी; मानो मौतकी लहर उनकी तलवारोंसे निकल रही थी।

कुछ देर तक उस सँकरी गलीमें यमका अट्टहास होता रहा। शिवनाथ सिंह और बहादुर सिंह, दोनोंके शरीरसे खूनके फव्वारे छूट रहे थे। घावोंसे उनके शरीर छिद चुके थे। आँखोंसे स्फुलिंग निकल रहे थे। देह यद्यपि काँप रहे थे, परन्तु हाथोंमें मानो बिजली कौंध रही थी। जिधर गिरती वहीं प्रलय कर देती। घबराकर कोई पास न आता। परन्तु धीरे-धीरे दीपककी शिखा मन्द होने लगी। लड़ते-लड़ते शरीर शिथिल होते गये, बाहें निस्पन्द पड़ने लगीं। मुट्ठियोंमें तलवार पकड़ने की शक्ति घटने लगी। साहस जवाब देने लगा। आँखोंके सामने तितलियाँ उड़ने लगीं। ज्योंही उन्हें पाँचूने पकड़नेका प्रयास किया कि उनकी भुजाएँ उठीं। तलवारें चमकीं। सहसा कई सिपाहियोंने उन्हें पीछेसे दौड़कर पकड़ लिया। शिवनाथ सिंह पहले पकड़ा गया। उसे पटककर सिपाही उसकी छातीपर चढ़ गये। यह देख बहादुर सिंह तड़प कर गरजा। उछलकर उन सिपाहियोंपर कूदा। किन्तु उसे भी पाँचूके सिपाहियोंने पकड़ लिया। आखिर दो आदमी पाँच सौ सिपाहियोंका मुकाबला कबतक करते? पाँचूने उन्हें अपनी तलवारकी नोकसे सदाके लिए विश्राम करा दिया। युगोंतक प्रसिद्ध तलवारियोंकी कला कहानी बन गयी।

मिर्जा पाँचू जब वहाँसे चला तो उसने देखा, उसके पचास साथी काम आ चुके थे। उसके जाते ही कुछ देरमें रास्ता चालू हो गया। धीरे-धीरे घटना-स्थलपर हजारोंकी भीड़ उपस्थित हो गयी। घण्टेभर बाद लोग उनकी लाशोंको उठा ले गये और एक ही चितापर उन्हें

जला दिया। जीवन भर प्रत्येक कार्यमें साथ रहनेवाले बाँकोंने शरीरके अन्तिम कार्य तक मैत्री निबाह दी। बहुत दिनों बाद शहरवालोंने उनकी यादमें उनके घरके दरवाजेपर, जहाँ वे चिरनिद्रामें सोये थे, पत्थरकी पक्की चौरी बनवा दी जो कालान्तरमें देवी-देवताओंकी मूर्त्तियों-सी पूजी जाने लगी।

२३

आगमें फूल खिला

स्वतन्त्रताके पुजारियोंमें अब भी यदि कोई बचा था तो वह था भंगड़। दाताराम नागरका साथी होनेसे उसपर कोतवालकी हत्याका जुर्म तो था ही, जगतसिंहका साथी होने, विद्रोहमें भाग लेने, बागियों को अपने अखाड़ेमें टिकाने आदिके कई आरोप उसपर लगाये गये थे। पुलिस इधर कई दिनोंसे उसकी टोहमें थी, परन्तु वह मिलता न था।

ऐतरनी-बैतरनीके नालेका चप्पा-चप्पा छान डाला गया। भंगड़की गन्ध न मिली। तब उसके अखाड़ेपर पुलिसका पहरा बैठा दिया गया। उसकी कुटी खोद डाली गयी, किन्तु दो-दो दिन उपवास कर केवल जल पीकर दिन काट लेनेवाले उस निर्विकार योगीकी कुटीसे एक चुहिया भी न मिली। हाँ, कुछ कटार, कुछ तलवार और लाठियाँ अवश्य मिलीं जिन्हें सिपाहियोंने अपने कब्जेमें कर लिया।

कई दिन बीत गये। भंगड़का कहीं पता न था। पुलिस खोजकर हार गयी। अन्तमें पता चला कि वह गङ्गाके तटपर त्रिलोचन घाटकी किसी मढ़ीमें रहता है। इस सूचनापर त्रिलोचन घाटकी मढ़ियोंके ताले तोड़-तोड़कर देखे गये। परन्तु भंगड़ न मिला।

अगले सप्ताह एक छोटी खुली नाव गङ्गाकी धारापर लहरा रही थी। एक व्यक्ति अकेला नावमें बैठा डाँड़ चला रहा था। वह गमछा पहने था। उसकी आकृति और वेश-भूषासे पहचाननेवालोंने बताया—वह देखो, भंगड़ उसपार निबटने जा रहा है।' फिर क्या था। बात हवामें फैल गयी। सिपाहियोंका दल घाटपर चक्कर काटने लगा।

भंगड़ उस पार गया। खेतोंके पार निकलकर जब वह गाँवमें पहुँचा, जहाँ वह ग्वालेसे दूध लेकर पीता था, देखा तपे कञ्चनके वर्णकी एक अधेड़ नारी। शरीर यद्यपि सूख गया था, परन्तु मुखमण्डलपर अनोखी दीप्ति व्याप्त थी। आँखोंके नीचे काले गढ़े पड़ गये थे, परन्तु पुतलियोंमें न जाने कैसी मर्मभेदी शक्ति लहरा रही थी। उसने पहले तो ध्यान न दिया, परन्तु देखते ही चौंका—मङ्गलागौरी। पलक मारते जैसेलमेरका वह गाँव याद हो आया जहाँ युग बीते वह एकबार पीले कपड़े पहनकर, दूल्हा बनकर गया था। उस दिन भी इन्हीं आँखों, इसी कान्ति और इसी नारीको देखा था। सहसा पुराणपुरीके वचन याद हो आये। वह अपनेको सँभाल न सका। पीछे हटा और वापस जाने लगा।

मङ्गलागौरीने भी उसे देखा। आँखें मिलीं। हृदयकी भाषा लोचनोंने पढ़ ली। अब कुछ बताना शेष न था। जिसे अभिमानवश लाख यन्त्रणा सहकर भी जिह्वा कहना न चाहती थी, उसे ही आँखोंने पलभरमें पढ़ लिया। उसके अधरोंसे निकली हलकी ध्वनि वातायनमें घुल गयी—'स्वामी!' किन्तु भंगड़ दूसरे क्षण वहाँ ठहर न सका।

बाहर आया तो मन स्वयं ही उसे फटकारने लगा। मूर्ख, कितने वर्षों बाद आज वह दिखायी भी पड़ी तो अभिमान लेकर क्यों चले आये? जिसके वियोगमें रातोंकी अँधियारी भयंकर शून्यता लेकर उसके अनेक चित्र गढ़ती, उसके मिलनमें अहंकार कैसा?

उस दिन भंगड़का चित लग न सका। वह प्रसन्न भी था, आहत भी। कभी वृश्चिक-दंशनसे संतप्त प्राणीकी भाँति पीड़ासे भर जाता तो कभी प्रिय-मिलनकी माधुरीसे उन्मत्त हो जीवनकी चरम सुखानु-

भूतिसे लहर उठता। रात सो न सका; चुपचाप राजघाट किलेके खण्डहरमें चला गया और एक भूमिधरामें गमछा बिछाकर पड़ रहा, परन्तु आँखोंमें नींद कहाँ ? मङ्गलासे कल वह अवश्य मिलेगा।

दूसरे दिन उसने नाव खोली और गंगाके उस पार चला। आज सिपाहियोंने उसे देख लिया। भंगड़ अभी बीच धारामें पहुँचा ही था कि उसने अपने पीछे कई नावोंमें भरे सिपाहियोंको आते देखा। चट भाँप गया। उसने वहींसे नाव मोड़ी और दूसरी दिशामें खेने लगा। सिपाही दूर-दूर थे। उन्हें भय था कहीं पास जानेपर गड़ास न तौल दे। क्या विश्वास इस शैतान का ?

भंगड़ चटपट इस पार लगा। पंचगङ्गा घाटपर आया। यहाँसे सीढ़ियाँ चढ़कर गली-गली त्रिलोचन घाटपर आया। सिपाही उसे वहाँ भी ढूँढ़ रहे थे। भीड़में घुसकर छिपता-छिपता वह अपनी मढ़ीके पास आया। भीतर घुसना ही चाहता था कि लोगोंने उसे देख और पहचान लिया। उनके हल्ला मचाते ही वह लपकपर मढ़ीमें चला गया।

मढ़ी पत्थरकी बनी थी। संभवतः गहड़वाल अथवा प्रतिहारोंके युगकी कीर्ति थी। अनेक युगोंके ध्वंसकारी परिवर्तनोंका साक्षी वृद्ध होकर भी अभी मजबूत थी। दस-बारह हाथ लम्बी-चौड़ी कोठरी थी। मढ़ीमें घुसनेका एक ही दरवाजा था। भंगड़ दरवाजेके बगलमें छिपकर खड़ा हो गया। उसके पास कोई अस्त्र न था। ध्यानमें आया, मढ़ीकी घोड़ियापर खाँड़ा उसने रख छोड़ा था। चट उसे उठा लिया और हाथोंमें दृढ़तासे पकड़कर सिपाहियोंके भीतर घुसनेकी प्रतीक्षा करने लगा।

बाहर दरवाजेके सामने सिपाहियोंकी भीड़ जुट गयी। कुछ देखने वाले तमाशाई भी थे। किन्तु किसीको मढ़ीके भीतर जानेका साहस न होता। न जाने शैतानका बच्चा भीतर क्या करे ? बहुत देरतक 'तुम जाओ—तुम-जाओ'का बखेड़ा चलता रहा। अन्तमें एक सिपाही

हिम्मत बाँधकर भीतर घुसा। सामने कोई न था। भंगड़ बगलमें दुबका छिपा था जिसे बिना सामना हुए बगलसे मारना सरल नहीं था। सिपाहीने भीतर घुसते समय दरवाजेमें अपना सिर डालकर बढ़ाया ही था कि अचानक भंगड़का खाँड़ा उसके गले पर आ गिरा। गला कटकर छटक गया और दूर जा गिरा। धड़ दरवाजे पर गिर पड़ी। उसे गिरते देख दूसरा सिपाही घुसा। भंगड़के खाँड़ेने उसे भी यमपुरीका मार्ग धरा दिया। तब तीसरा आया। उसकी भी यही गति हुई। कुछ देरतक इसी प्रकार वह अपनेको बचाता रहा। सिपाही भीतर जाना न चाहते थे। तब उनके प्रधानने कहा—'यह साला यों न पकड़ा जा सकेगा। अब इसे मार ही डालना होगा। पाँच सौ रुपये मिलते इनाम, मगर देखता हूँ किस्मत खोटी है। लाओ लकड़ीके गट्ठर। दरवाजेपर लकड़ियाँ जुटाकर इसके बाहर निकलनेका रास्ता मूँद दिया जाय और तब लकड़ियोंमें आग लगा दी जाय। सूअर भीतर ही भीतर जलकर मर जायगा।'

कैसी भयानक योजना थी! सब प्रसन्न हो उठे। लगता है इस लीलाके नियोजक प्रस्तावसे भी भयंकर थे। हाय री! नौकरी वृत्ति तू कितनी नारकीय है, कितनी अधम। केवल अपने अस्तित्वकी रक्षाके लिए तू अपने ही एक बन्धुको जीवित जला देने तकके राक्षसी कृत्यपर उद्यत हो गयी। प्रस्ताव मान लिया गया और कार्य रूपमें परिणत होने लगा। लकड़ियोंके गट्ठरोंसे मढ़ीका दरवाजा बन्द होने लगा। बहुतसे गट्ठर दरवाजेके भीतर जमा हो गये। जब लकड़ियोंका अम्बार लग गया और मढ़ीका दरवाजा बिलकुल बन्द हो गया तो उनपर तेल छिड़ककर आग लगा दी गयी। देखते-देखते धुँएका विशाल पुंज उठकर आसमान में छाने लगा।

मढ़ीके भीतरसे भी धूँआँ उठकर बाहर आने लगा। लगता जैसे वह छोटी मढ़ी धूमकी उस अपार राशिको अपनी संकीर्ण कक्षामें बाँध न सकी। भीतर ज्वाला और अन्ध कुप्प धूएँके कारण अभागे भंगड़को

क्या दशा हुई होगी, भगवान जाने। कुछ देर तक 'हर-हर महादेव' के नारे भीतरसे आते सुनायी पड़ते रहे; किन्तु धीरे-धीरे वे शान्त होते गये और फिर आवाज एकदम बन्द हो गयी।

बाहर घाटपर आगकी लपटोंने चतुर्दिक फैलकर अपनी क्रूरताकी कहानी आसमान तक फैला दी। जिसने भी सुना, कलेजा थाम लिया। हे प्रभु! इस नृशंसताको किस प्रकार देख रहे हो? कहाँ चला गया तुम्हारा वज्र? कहाँ गया तुम्हारा चक्र? लोग छाती पीटकर रो सकते थे, किन्तु किसीका साहस नहीं होता था कि सिपाहियोंको मारकर गंगामें डाल दें और भंगड़को मौतके गालसे बाहर निकाल लें।

खबर उस पार भी जा पहुँची। मंगलागौरीने भी सुना। एक बार अपनी बड़ी बड़ी आँखोंको और भी फाड़कर उसने आकाशकी ओर देखा। उसका मुखमण्डल भीषण क्रोधसे तमतमा उठा था। आँखोंमें न जाने कैसी ज्योति नाचने लगी। उसने किसीसे कुछ न कहा। चुपचाप ऊपरकी मंजिलमें अपने कमरेमें चली गयी। नीचे मुहल्ले-टोलेकी स्त्रियाँ भंगड़के इस दिव्य बलिदानके समाचारपर टीकाएँ कर रही थीं; उन्होंने उसका ऊपर जाना न देखा। किसीको पता भी न लगा कब वह भीड़मेंसे निकल गयी।

कमरेमें जाकर मंगला गौरीने दरवाजा भीतरसे बन्द कर लिया। स्वामीकी पवित्र स्मृतिमें बिछायी दुग्ध-धवल शैय्याके पास एक आसन बिछाकर बैठ गयी। पलंगके सिरहाने ही भगवान श्रीकृष्णकी वंशी-धारिणी मूर्त्ति रखी थी जिसकी वह नित्य पूजा किया करती। उन्हींके बगलमें घीका दीपक जल रहा था। उसने धीरेसे अपना आँचल दीपककी लपटकी ओर बढ़ा दिया। उठते उछ्वासों और फूटती व्यथाको लाख दबाना चाहा, किन्तु वेदनाकी बाढ़ रुक न सकी कुछ देर तक कोठीके ऊपर धूएँकी लहरोंके साथ मीराकी एक पंक्ति करुण स्वरमें डूबी सुनायी पड़ती रही—'हेरी मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दर्द न जाने कोय।' दो-चार क्षणोंमें गीतकी अन्तिम करुण रस-लहरी

भी छतकी बाँसों और छाजनको जलाकर ऊपर उठनेवाली लपटोंकी विभीषिकामें विलुप्त हो गयी। शायद किसीने देखा हो अथवा नहीं, किन्तु मनुष्यकी लोक-सीमाके उस पार, बहुत दूर निस्सीम व्योममें गंगाके दोनों तटोंसे उठते धूएँकी व्याकुल लहरियाँ पागलों-सी कुछ काल तक इधर-उधर भटक कर एकाकार हो गयीं।



२४

लोहेके पिंजड़ेमें

डुग····डुग····डुग····डुग··· !

लोगोंने चौंककर देखा। सड़कपर चार घुड़सवार सिपाही आ खड़े थे—दो अँगरेज और दो मुसलमान। फरमान खोलकर एक मुसलमान सिपाही पढ़ने लगा—'ईनाम····बीस हजार रूपयोंका ईनाम।'

लोग चकपका गये। कुछ खड़े हो गये; कुछ तेज कदमोंसे आगे निकल भागे।

दिनमें लगभग दस-ग्यारह बजेका समय था। चारो घुड़सवार सिपाही कोतवालीके बाहर रुके। उन्हें देखकर राह चलनेवाले किसी अज्ञात अनिष्टकी आशङ्कासे भयभीत हो वेगसे निकल जाते थे। सड़क-पर चलनेवाले बहुत कम थे। कोतवालीके बाहर कूएँके बगलमें बरगद वृक्षकी छायामें बहुतसे इक्केवान अपने घोड़ोंको सजा-सँवारकर उन्हें सहलाते और किसी शौकीन सवारीकी प्रतीक्षा कर रहे थे, परन्तु डौल जमती न थी।

माघ मासका सूर्य जाड़ेसे लड़ता-लड़ता आकाश में सिरपर आ पहुँचा था। चारो सवार कुछ देरके लिए अपने घोड़ोंपरसे उतर कर

भीतर कोतवालीमें गये। कुछ देर वे भीतर रहे। जब बाहर आये तो उनके हाथमें एक फरमान था। एक सिपाहीने नगाड़ा बजाया और दूसरेने कुछ क्षणोंके बाद पढ़ना आरंभ किया—'शहर बनारसके तमाम बाशिन्दगान तथा बाहरके रहनेवाले हर आम व खासको इत्तला दी जाती है कि वजीर अली अवधका पदच्युत नवाब कम्पनी बहादुरकी सरकारका बागी करार दिया गया है। जो भी शख्स उसे अपने घरमें छिपायेगा, किसी तरहकी मदद देगा या उसके मंसूबोंको आगे बढ़ाने की सोचेगा, उसे राजद्रोहके जुर्ममें गिरफ्तार किया जायगा और उस-पर मुकदमा चलाया जायगा। इसके खिलाफ वजीर अलीको जिन्दा या मुर्दा, किसी भी हालतमें गिरफ्तार करा देनेवाले शख्सको कम्पनी बहादुरकी सरकार बीस हजार सिक्कोंका नगद ईनाम अता करेगी। बहुक्म गवर्नर जेनरल साहब बहादुर यह फरमान सारे मुल्कमें जारी किया जा रहा है।'

सुननेवाले स्तब्ध रह गये। जब सवार घोषणा सुनाकर आगे बढ़ गये तो कोतवालीके सामने वाले मनिहारने अपने पड़ोसी पटहारेसे कहा—'सुनलऽ भइया हुक्म ?'

पटहारा सामनेसे आते हुए सिपाहीको देखकर दुबक रहा। बोला कुछ नहीं, आँखोंसे संकेत कर दिया। मनिहारने उस दिशामें देखा तो उसके भी देवता कूच कर गये। सौभाग्यवश सिपाही कूचा खदेरनमल की ओर निकल गया। उसे कूचेके फाटकपर खड़े होकर फिर वहीं घोषणा दोहरायी—ईनाम...बीस हजारका ईनाम। वजीरअलीको जिन्दा या मुर्दा, किसी हालतमें गिरफ्तार करा देनेवाले शख्सको कम्पनी बहादुरकी सरकार बीस हजार सिक्कोंका नकद ईनाम अता करेगी....।

वे गलीके भीतर चले गये। उनके जानेके बाद उसी ओरसे एक भिखारिन निकली। शायद वह पगली थी। गुदड़ियोंमें लिपटी थी, हाथोंमें फटे चिथड़े और कोई हड्डी थी। सिरके बालोंमें लट पड़ गये थे जैसे साधुओंकी जटा हो। शरीरपर गर्दकी मोटी तह थी। कलाइयोंमें दो-

एक चूड़ियाँ। हाँ नाक और कानमें अब भी गहने थे जो देखनेमें जड़ाऊ और मूल्यवान प्रतीत होते। लगता था जैसे पगलीने उन्हें उतारा न था अथवा उन्हें बिलकुल भूल गयी थी। जब वह पास आ गयी तो साफ दिखायी देने लगी। उसकी अवस्था लगभग सत्रह-अठारह वर्षकी रही होगी। शरीरका वर्ण गोरा था, किन्तु विपत्तियों और दुर्भाग्यने अब उसकी वह स्वर्ण कान्ति छीन ली थी। आँखोंके नीचे गढ़े पड़ गये थे। गलेकी हड्डियाँ उभड़ आनेसे दिखायी देने लगी थीं। दोनों बाहें सूखकर पतली हो गयी थीं जिनकी चमड़ीपर नसोंका जाल उभड़ आया था।

उसकी आँखोंमें एक अजीब तीव्र ज्योति थी। उसकी ओर सीधे देखनेका साहस न होता। शायद यही उसका अन्तिम शस्त्र था जिसके सहारे वह नारी-जीवनकी अपनी पवित्रताकी रक्षा करती थी। उस विपन्न अवस्थामें भी उसके गलित स्वास्थ्य और उध्वस्त बीमार शरीरका उपभोग करनेवाले अनेक कामी लफंगे सड़कोंपर उसे घेरते, परन्तु उसके देखते ही वे भाग खड़े होते, जैसे उसकी पैनी दृष्टिसे त्रिशूल छूटते। लम्पटोंकी धोती सरक जाती, दिल दहल उठता।

पगली कुछ दूर आकर चुपचाप खड़ी हो गयी। एक बार उसने पीछे गये हुए घुड़सवार सिपाहियोंकी ओर देखा, फिर घृणा-व्यंजक मुद्रा बनाकर बड़बड़ाने लगी—'कम्पनी बहादुरकी सरकार! बनिया राजा हो गया। राजा रंक हो गया....नवाब भाग गया!'

इधर कुछ दिनोंसे यह पगली चौक और शहरके दूसरे मुहल्लोंमें अधिक दिखायी देने लगी थी। तीर्थस्थान होनेसे काशीमें भारतवर्षके यात्री आते और इस प्रकार यहाँ हर प्रान्तके पागल मिलते हैं। परन्तु यह बिलकुल नयी पगली थी। उसकी बोलीसे लगता जैसे वह मुसलमान हो और आस-पासकी ही रहनेवाली हो।

पगली गाती, भीख माँगती और अचानक रूठकर वेगसे एक ओर दौड़ती और चिल्लाती हुई भागती—'वह भागा....वह भागा....देखो वह भागा।' कौन भागा? यह किसे कह रही है? लोग हैरान थे। अन्तमें

दर्शकोंने यह निर्णय कर सन्तोष कर लिया कि इसका कोई प्रिय स्वजन इसे छोड़कर भाग गया है। उसी आघातसे इसका मस्तिष्क विकृत हो गया जिससे यह रह-रहकर 'वह भागा, वह भागा' कहा करती है और उसी पागलपनमें उसे पकड़नेके लिए जोरसे दौड़ा करती है।

दिन आते और बीत जाते। ऋतुओंके क्रमानुसार वर्ष बीत गया। फिर ऋतुएँ आयीं और चली गयीं, परन्तु वजीर अली न पकड़ा गया। एक दिन कोतवालीमें खबर लगी कि जयपुरमें वह गिरफ्तार कर लिया गया है और लोहेके एक पिंजरेमें बन्दकर कलकत्ता भेजा जा रहा है। रास्तेमें जाते समय वह बनारस भी लाया जायगा।

उस दिनसे शहरमें अजीब हलचल मच गयी। शहरके लोग इस समाचारसे जितने दुखी थे, उनसे अधिक व्याकुल थी पगली। उसके शरीरपरकी साड़ी तार-तार थी जिससे उसका असमयमें ही सूखा यौवन भिखारीकी भाँति दीन हो बाहर निकल पड़ता; किन्तु भिखारीकी निर्लज्जता भी अपनाकर जैसे उसका यौवन अब समस्त गौरव खोकर करुणा और तिरस्कारका अभ्यस्त हो चुका था। पक्के महल्लेमें जानेपर ऊँचे-ऊँचे मकानोंकी खिड़कियोंके पल्ले खोलकर बहुएँ उसकी आवाज सुनते ही खड़ी हो जातीं। कोई उसे रोटी फेंक देती, कोई धोती। पगली सिर उठाकर ऊपर देखती। उसकी आँखोंमें न जाने किस महासागरकी अनन्त गहराई थी जिसके तलमें पहुँचनेमें प्रवीण कुशल गृह-देवियाँ भी थककर निराश हो जातीं।

गर्मियोंके दिन थे। वैशाखका महीना। धूप कड़ी हो चुकी थी। सड़कोंपर दिनमें दस बजते ही चलना-फिरना कम हो जाता था। दूकानोंके आगे लोग टाटके पर्दे डालकर आरामसे सोते, फिर भी वह निराश्रिता विक्षिप्ता आकाशमें टूटे हुए ग्रह-सी भटकती और वेगसे किसी दिशामें बड़बड़ाती हुई दौड़ती दिखायी देती।

कलसे ही शहरमें बड़ा शोर था। वजीर अली लोहेके एक पिंजड़ेमें कैदःकर बनारस लाया गया था। उसे कलकत्ता, मेटियाबुर्ज, भेजा जा रहा था। अवधके युवक नवाबका दुर्भाग्य अपनी चरम रेखा लाँघ रहा

था। संभवतः वजीर अलीका शनि अपनी महादशाकी अन्तर्दशामें पहुँच चुका था और अब अपनी प्रचण्ड लीला दिखा रहा था।

पिंजड़ा कोतवाली के फाटकपर खड़ा था। उसके भीतर वजीर अली बन्द था। जिसके विवाहके अवसरपर लखनऊ शहरमें मुहरोंकी वर्षा हुई थी, स्वयं नवाब आसफुद्दौला बारातके आगे पैदल चल रहे थे, जो कुछ महीनोंके लिए अवधके तख्तका स्वामी था, आज वह दीन पशु-सा गिरफ्तार था, निरुपाय और निस्तेज।

भीड़ उसे देखनेके लिए टूट पड़ती। सिपाही लाठी-डंडोंसे मारकर लोगोंको खदेड़ देते, फिर भी अपने नगरमें रहनेके कारण उत्पन्न स्वाभाविक ममत्वके कारण लोग उसे देखनेको दौड़े जाते। सिपाही उसी प्रकार उनपर टूट पड़ते।

वजीर अली पिंजड़ेमें बैठा था। पिंजड़ा सात-आठ हाथ ऊँचा और चार हाथ चौड़ा था। उसके चारो ओर लोहेके छड़ लगे थे जिनमें कई नोकीले काँटे भीतर निकले थे। तनिक भी असावधान होनेपर काँटे बन्दीके शरीरमें चुभ सकते थे। जयपुरसे बनारस तक आनेपर वजीर अलीका शरीर क्षत-विक्षत हो चुका था। घावोंसे देह भरी थी। सोनेकी काया मिट्टीकी ढेर बन रही थी जिसमें रोग घर बना चुका था।

देखनेवाले देखते, चुपचाप दीर्घ श्वाँस छोड़ते, लौटते समय मुँह फिराकर पगड़ीसे आँसू पोंछ लेते। कुछ जोरसे हाय-हाय कर उठते। तीन दिनोंतक यही व्यापार चलता रहा!

वजीर अलीको कलकत्ता जानेमें एक दिन बाकी था। शामका समय था। झिटपुटा हो चुका था। सूर्य डूब चुके थे, परन्तु कुछ प्रकाश शेष था। कोतवालीके पास लोहेका पिंजड़ा रखा था जिसमें वजीर अली खड़ा था। अभी-अभी वह सोकर उठा था। सिपाही उसे पानी देनेके लिए आ रहा था कि उसने देखा, पगली बड़े वेगसे पिंजड़ेपर झपट रही है। जोरसे हाँक लगायी उसने—'कौन है रे, भाग जा।

परन्तु पगलीने जैसे न सुना। वह पिंजड़ेके पास खड़ी हो गयी और

घूर-घूरकर बन्दी नवाबको देखने लगी। वजीर अलीने उसकी ओर देखा, कुछ देर तक देखता रहा, फिर कुछ पहचाना। सन्देह हो रहा था, इसलिए पूछा—गौहर !

पगलीके रोम-रोम खिल उठे। आँखोंमें गंगा-यमुनाकी बाढ़ समा गयी। झपटकर सिकचा पकड़ लिया और छड़ोंके भीतर हाथ डालकर वजीर अलीका स्पर्श करते हुए बोली—'तुम्हारी बाँदी''''तुम्हारी लौंडी ....गौहर।'

सिपाहीने डाँटा—'अरी ओ बाँदीकी बच्ची ! हट जा, नहीं खाल खींच लूँगा।'

'शायद यह इनकी सुरैतिन रही हो !'—दूसरे सिपाहीने कहा। कहकर:उसने पगलीको धक्का दिया—'चल भाग, हरामजादी।'

परन्तु पगली न टली। सिपाहीने एक हाथ तानकर मारा। पगलीका सिर पिंजड़ोंसे टकराया और खुल गया। रक्तकी धार फटे चीथड़ोंसे होती पृथ्वीपर गिरने लगी।

'भाग नहीं और मारूँगा'—सिपाही गरजा।

लेकिन पगलीने उसकी ओर ध्यान न दिया। जैसे उसने कुछ सुना ही न हो। वह पूर्ववत् नवाबके बगलमें खड़ी हो आँखोंकी राह अपना स्नेह लुटाती रही। संभवतः इस समर्पणके समय उसे अपने सिर फटनेकी व्यथाका भान भी न हुआ, कौन जाने।

उसकी उद्दंडता, निर्भीकता और अपनी आज्ञाकी अवज्ञापर सिपाही जल उठा। क्रोधसे एक लात उसने पगलीकी पीठपर मारा—वह जमीनपर जा गिरी। गिरनेपर उसके दाँत फर्शकी ईंटसे टकरा गये। मुँहसे खून आने लगा।

'मत मारो, मर जायगी कुतिया। लगता है नवाब साहब उसके पुराने प्रेमी हैं। पड़ी रहेगी, आप चली जायगी कुछ देर बाद'—पहले सिपाहीने कहा और एक बर्तनमें कुछ जल लाकर वजीर अलीको दे गया।'

सिपाही चले गये। पग़ली उठी; आकर फिर पिंजरेके पास बैठ गयी। फाटकपर सन्नाटा हो गया। कोई आसपास न था। चारो ओर अन्धकार छा गया था। पगली पिंजड़ेके पास सट गयी। कैदीने छड़से अपना मुँह लगाया जिससे वे परस्पर चुपचाप बातें कर सकें और उनकी बातोंकी आवाज कोई सुन न सके।

'कैसे....यह क्या हो गया ?' पगलीने पूछा।

'जयपुरके राजा साहबने....तुम चली जाओ। यहाँ मत रहो। यह क्या सूरत बना रखी है ? किसी रिश्तेदारके घर चली जाओ....।' वजीर अलीका गला भर आया। वह अधिक बोल न सका। चुपचाप रोने लगा।

'रोओ मत, जो खुदाको मंजूर है, वह होकर रहेगा। उसमें कोई चारा नहीं। जब तुम्हीं चले गये तब शेष क्या रह गया ?'

'नहीं गौहर ! तुम्हारी उम्र ही क्या है ? मैं तो एक ऐसा जिन्दा गुनाह था जो पास आनेपर सबसे अजीजको भी छा लेता था। मुझसे किसीका भला न हो सका, सबका बुरा जरूर हुआ।'

'खैर जाने दो, बेगम कहाँ हैं ? और लोग़ कहाँ हैं ?'

'हैं, सब छिपे हुए हैं। पता चल जानेपर अँगरेज सबको मार डालेंगे। चुप रहो। दीवालोंको भी कान होते हैं। कोई कुत्ता सुनता होगा....।'

पगली चुप हो गयी।

कुछ रात गये जब पिंजड़ेके पहरेदार सिपाही कैदीका खाना लेकर आये तो देखा, पगली अब भी वहाँ बैठी थी—'तू गयी नहीं हराम-जादी !' सिपाही गुर्राया—'उठ, भाग यहाँसे, नहीं हुलिया बिगाड़ दूँगा।'

'रहने दो भाई। तुम्हारा क्या बिगाड़ती है ? यह मेरी अजीज है।' वजीर अलीने सिपाहीसे नम्र स्वरमें कहा। सिपाही मन ही मन हँसा। 'पिंजड़ेमें कैद होनेपर भी यह हविश !'

दूसरा बोला—'कैदीको पगली न मिलेगी तो क्या बेगम मिलेगी ?'

वजीर अलीने सुना। सुनकर उसने उस दो रुपये महीने वेतनवाले सिपाहीकी ओर देखा। यदि वह खुला होता, मुक्त होता तो वह इस बातपर सिपाहीकी आँखें निकाल लेता, परन्तु वह मजबूर था। सिपाही उसके मुँहकी ओर अँधेरेमें न देख सका। बोला—'खैर लीजिये, छोड़े जाता हूं उसे।'

जब सिपाही चला गया तब गौहरने धीरेसे कहा—'इन टुकड़खोरों-को नौकरीमें ही सब कुछ है। अपने मुल्ककी आजादीके लिए मर मिटनेवाले लोगोंके लिए इनके दिलमें इज्जत कौन कहे, घृणा और व्यंग भरा है।'

'नौकर हैं न; नौकरको अपना हृदय कहाँ ? वह तो अपने वेतनपर अपना हृदय, कर्म और ईमान सब मालिकके हाथ बेंच देता है। गौहर, हमारी जातिसे बढ़कर सच्चा नौकर और कहाँ मिलेगा ?

रात घनी हो गयी। पिंजड़ेमें बन्द वजीर अली मानो आज संसार की कोई मूल्यवान निधि पाये था; फिर भी उसने कहा—'तुम अब चली जाओ। मेरी आँखोंके सामने न रहो। तुम्हें देखकर मेरे पुराने दिन आँखोंके सामने नाचने लगते हैं। तुम चली जाओ, नहीं मैं अपना गला घोंटकर मर जाऊँगा।'

पगली जाती न थी। परन्तु वजीरअलीके बहुत कहनेपर जाने लगी—'कलकत्ता कब जा रहे हैं ?'

'कल, किसी समय।'

'तब कल फिर आऊँगी।'

'नहीं, अब यहाँ मत आना। मेरी और तुम्हारी दोनोकी बदनामी होती है।'

'कैदियों और रास्तेके गदाई पागलोंकी भी कोई इज्जत होती है ? सांसारिक इज्जतको हमने उसी दिन हमेशाके लिए छोड़ दिया जिस दिन सिरपर कफन बाँधकर बगावतका झण्डा बुलन्द किया। नवाबी गयी,

वैभव-ऐश्वर्य गया, स्वतंत्रता और सम्मान गया, अब सिवा इस प्रताड़ित व्याकुल हृदयोंकी तृषाके शेष क्या है?'

'नहीं गौहर! तृषा तो तुममें कभी न थी। मेरे जगानेपर भी नहीं, आज तुम यह क्या बहकी-बहकी बातें कर रही हो?'

'ठीक कह रही हूँ। मैंने अपना भाई खोया, भाभी खोयी, प्रियतम खोया। स्वप्नोंका महल खो दिया, मेरा संसार मिट्टीमें मिल गया। मेरे दुर्भाग्यपर उठते कहकहोंसे भयभीत न हो। मैं आज भी वही गौहर हूँ। मेरा भौतिक स्वरूप अवश्य विकृत हो गया है, किन्तु मेरा मन आगमें जल-जलकर और भी निखर गया है।'

वजीर अलीने बातें बढ़ाना उचित न समझा। कुछ देर बाद भग्नहृदया गौहर आशाओंकी राख बटोरे चली गयी। उसके जाते ही वजीर अली लुढ़ककर पीछे गिर पड़ा। लोहेका एक काँटा बगलमें चुभ गया। एक चीत्कार उठी—'आह!' फिर सन्नाटा छा गया।

दूसरे दिन सबेरे ही वजीर अलीको कलकत्ता ले जानेकी तैयारियाँ शुरू हुई। रवानगीका हुक्म होते-होते दस बजा। सड़कपर हजारोंकी भीड़ रास्ता रोके थी। सिपाहियोंने घोड़े दौड़ाये, डण्डे चलाये, तब कहीं रास्ता मिला।

आगे-आगे सेनाकी एक टुकड़ी थी जिसमें तीन-चार सौ गोरे और देशी सिपाही थे। साथमें एक हल्की तोप भी थी। हृष्टपुष्ट बैलोंवाली एक बैलगाड़ीमें पिंजड़ा जोड़ दिया गया। आगे-आगे बैलगाड़ी और पीछे पीछे घरघराता हुआ वह विशाल-लौह पिंजर चलने लगा। अभी वह कुछ ही दूर बढ़ा होगा कि पगली वेगसे दौड़ती आती दिखायी पड़ी—'मैं भी आ रही हूँ, मैं साथ चलूँगी, साथ चलूँगी।'

'चल भाग यहाँसे—सिपाहियोंने डाँटा। परन्तु वह न हटी, जैसे संकल्प कर आयी हो। उसे हटाकर भगानेके जितने प्रयत्न होते उतना ही वह हठ पकड़ रही थी। अपने प्रयासमें उसे चोट आयी, लुहलुहान हो उठी, किन्तु खून पोंछकर वह फिर पिंजरेके पीछे-पीछे चलने लगी।

अन्तमें उसकी कारुणिक अवस्था और मार्मिक रूप देखकर कुछ सिपाहियोंमें दया उपजी—'चल भाई, हमारा क्या बिगड़ेगा ? परन्तु तू कहाँ तक पैदल चलेगी ?'

'खुदा जहाँ तक लिवा जाय'—उसने उत्तर दिया। सन्तोषकी एक दीप्त रेखा उसके पाण्डुर मुखपर नाच उठी

दल शहरके बाहर हो गया। पता नहीं वे कब कलकत्ता पहुँचे। कुछ वर्षों बाद वजीर अली तो मद्रासके वेल्लौर किलेमें स्थानान्तरित कर दिया गया, परन्तु पगली गौहर काशीमें फिर न दिखायी पड़ी। लोग उसके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी कहानियाँ कहा करते हैं।

प्रकाशक—

आनन्द पुस्तक भवन

पहड़िया, वाराणसी–२

कार्यालय

—कौसानगंज, वाराणसी—१